श्री व० ह० पिटके की अमर कृति

क्रान्ति-काल

(सामाजिक उपन्यास)

अनुवादक

आर० आर० सर्वटे

प्रकाशक

आनन्द पुस्तक भवन

पहड़िया, वाराणसी–२

प्रकाशक—
सम्पूर्णानन्द एम० ए०
आनन्द पुस्तक भवन
पहड़िया, वाराणसी–२

प्रथम संस्करण
साढ़े तीन रुपया
३=५०
१९५७

मुद्रक—
काशी मुद्रणालय
ब्रह्मेश्वर गंज, वाराणसी–१

प्रकाश्य

मराठी भाषा के वर्तमान लेखकों के अनुवाद प्रकाशित करने का मेरा यह चौथा प्रयास है। इसके पूर्व 'जमींदार की बेटी' 'मुक्त नारी' और 'कीर्तिमन्दिर' का प्रकाशन हो चुका है। हिन्दी-जगत ने इन पुस्तकों का जो समादर किया है वह स्तुत्य है। प्रस्तुत पुस्तक मराठी भाषा के तरुण उपन्यासकार श्री व० ह० पिटके के 'क्रान्ति-काल' का हिन्दी रूपान्तर है। इसकी सीधी सादी कहानी मनोरंजक कथानक, और स्वाभाविक प्रसंग है। घटनाएँ और चरित्र चित्रण आदि के कारण इस कला-कृति की ओर आकर्षण स्वभावतः बढ़ जाता है। श्री पिटके कोल्हापुर शूगर मिल के कर्मचारी हैं अस्तु इस उपन्यास में कथानक के साथ-साथ व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियाँ अपना विशेष स्थान रखती है।

अन्त में आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि मेरे अन्य प्रकाशनों की भाँति पाठक इसका भी आदर करेंगे।

—सम्पूर्णानन्द एम० ए०

निवेदन—

'क्रांति-काल' मराठी भाषा का एक नवीनतम उपन्यास है। मानव-जीवन में नित्य नगण्य घटनाएँ घटित होती रहती हैं; परन्तु वे अपना कितना मनोवैज्ञानिक महत्व रखती और किस प्रकार अपनी असीम शक्ति द्वारा उसकी उद्दाम धारा को अकल्पित रूप से मोड़ देती हैं—इसी पर प्रकाश डालना 'क्रांति-काल' का मूलोद्देश्य है और यही इसकी प्रमुख एवं दर्शनीय विशेषता है; जो हमारे सामने कला की 'सत्यं शिवं सुन्दरं' से परिपूर्ण मनोरम अभिव्यक्ति करती है।

वास्तव में 'क्रांति-काल' की पृष्ठ-भूमि अत्यन्त साधारण है। जनता एक लम्बे समय से स्वाधीनता की विरुदावली सुनती आती और अपने मस्तिष्क में तज्जन्य सुख-स्वप्न सँजोती जाती थी। अन्त में पराधीनता ने प्रयाण किया और उसके स्थान में स्वाधीनता का पदार्पण हुआ। जनता ने सोल्लास अपनी चिर-पोषित शुभाकांक्षाएँ लेकर उसकी पूजा एवं बन्दना की। परन्तु शीघ्र ही उसे अनुभूति हुई कि स्वाधीनता के इस स्वर्णिम प्रभात में उसके सम्पूर्ण सुख-स्वप्न बड़ी द्रुत गति से तिरोहित हो रहे हैं। पूर्वापेक्षा धनवान् विशेष सम्पन्न और निर्धन विशेष निष्पन्न हो रहे हैं। इस विषमता की प्रति-क्रिया स्वरूप जनता पर जो दारुण विह्वलता छा गई, वही 'क्रान्ति-काल' की जन्म-दातृ है। इसीलिए 'क्रान्ति-काल' जन-साधारण का प्रतिनिधित्व करता और उनकी भावनाएँ सँभालता सँवारता अपने लक्ष्य पर जा पहुँचता है।

जिस प्रकार 'क्रान्ति-काल' की पृष्ठ-भूमि सरल और स्वच्छ है; उसी प्रकार इसकी कथा वस्तु भी सीधी-सादी है—चमत्कार पूर्ण उलझनों से सर्वथा रिक्त; परन्तु आन्तरिक सौंदर्य से ओत-प्रोत। 'क्रान्ति-काल' का यह आन्तरिक सौंदर्य सर्वत्र घात-प्रतिघात अथवा मानसिक द्वन्द्व पर अवलम्बित है और उसमें ऐसे जीवन का प्रादुर्भाव करता है, जो रसमय तो है ही, आनन्द-मय भी है। इतना

ही नहीं, उसमें यह प्रमाण भी सन्निहित है कि प्रतिभा का सामर्थ्य साधारण वस्तु के माध्यम से कितनी अपूर्व रचना कर डालता है।

'क्रान्ति-काल' की यह भी एक उल्लेखनीय विशेषता है कि उसके पात्र संख्या में स्वल्प है। अत: उन्होंने अपने विकास का यथेच्छ अवसर पाया है। वास्तव में 'क्रान्ति-काल' चन्द्रकान्त का सत्य-मूलक अथवा कल्पना मूलक जीवनोपाख्यान है। उसके अन्य पात्र तो जैसे चन्द्रकान्त के कार्य-कलाप को पूर्ण करने के साधन-मात्र हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से वे सभी भली-भाँति खरे उतरे हैं और अपनी अकृत्रिम गति से आगे बढ़ते रहते तथा औचित्य की सीमा पर पहुँचते-पहुँचते विराम करने लगते हैं। यद्यपि उनमें मानवी स्वभाव के गुण-दोष विद्यमान हैं तथापि वे निस्सन्देह 'सुन्दर' विशेषण के अधिकारी हैं।

चन्द्रकान्त लगभग सर्व-लक्षण-युक्त धीरोदात्त नायक है। वह कर्तव्य के प्रति ईमानदार रहने और असन्तोष में आस्था रखनेवाले निर्धन माता-पिता का पुत्र है तथा विरासत में उनके सम्पूर्ण गुण ग्रहण कर कर्म-क्षेत्र में अवतरित होता है। उच्च शिक्षा प्राप्त करना उसके जीवन का प्रथम और निश्चित ध्येय है; परन्तु पिता के आकस्मिक अवसान से उसकी इस आशा-लता पर तुषार-पात हो जाता है और अपने तथा माता के उदर-पोषण का दारुण प्रश्न उसे झकझोर डालता है। फिर भी वह मनोनिग्रह-पूर्वक इस उग्र स्थिति से लोहा लेता है। ज्यों-त्यों मैट्रिक की परीक्षा देता, अपना पैतृक निवास-स्थान पीपजगाँव छोड़ता, लक्ष्मीनगर में पहुँचता और वहाँ अपने बहनोई के साहाय्य से शुगर-मिल में में एक साधारण क्लर्क के पद पर कार्य करने लगता है।

हमारे देश में क्लर्क का पद मानव-जीवन के लिए एक अभिशाप के समान माना जाता है। परन्तु चन्द्रकान्त उस अभिशाप को जैसे एक तीक्ष्ण चुनौती देता है। वह कुशाग्र बुद्धि, परिश्रम-शील, कर्तव्य-निष्ठ और आदर्श का पुजारी युवक है। यदि एक ओर क्लर्क को थकानेवाला उत्तर-दायित्व सँभालता है, तो दूसरी ओर निरन्तर अध्ययन एवं मनन में प्रवृत्त रहता है। इसके साथ ही साहित्यिक अभिरुचि रखता और प्रकृति कवि होने से समय-समय पर ऐसी कविताएँ रचता

है, जो जनता के मर्म में पैठती एवं उसका यश तथा मान बढ़ाती हैं। अन्तत: उसे मराठीसंसार के नवीन कवियों में शीर्ष स्थान प्राप्त हो जाता है।

शुगर-मिल में चन्द्रकान्त श्रमिक-जनों का अभाव-ग्रस्त जीवन निकट से देखने का अवसर पाता है। वह स्वयं अभाव-ग्रस्त जीवन भोग चुका है और भोग रहा है; अत: श्रमिक-जनों की करुण स्थिति से सहज ही द्रवित हो उठता है। ऐसे ही अवसर पर उसके गाँव का एक नवयुवक किसान शंकर भी अभाव की मार से तिलमिला कर, अपनी पत्नी पार्वती सहित श्रमिक बनकर सुगर-मिल में आ पहुँचता है। चन्द्रकान्त पूर्ण परिचय के कारण शंकर को भाई के समान और पार्वती को बहिन के समान मानता तथा उनके परिवार में आत्मीय के सामान घुल-मिल जाता है। शंकर का दैन्य शनै: शनै: उसे इतना उद्वेलित करता है कि उसके मन में श्रमिकों का सुधार करने की लालसा बलवती होने लगती है। फलत: वह उनके लिए एक रात्रि-पाठशाला को स्थापना करता और स्वयं उनको विद्या का दान देता है। इसके पश्चात् जब समाज-वादी नेता साथी प्रकाश रात्रि-पाठशाला के वार्षिकोत्सव में पधारते हैं तब चन्द्रकान्त पर उनके व्यक्तित्व का विशेष प्रभाव पड़ता है। वे श्रमिकों के आवास-स्थान का निरीक्षण करते समय उनकी दयनीय स्थिति से अत्यधिक विकल होते और चन्द्रकान्त को प्रेरणा देते हैं–'अक्षर-ज्ञान मात्र से श्रमिकों की समस्या न सुलझेगी। ऐसा प्रयत्न करो, जिससे वे अपने स्वत्व समझने लगें। यही युग की—क्रान्ति की पुकार है।' चन्द्रकान्त एक परम श्रद्धालु शिष्य के समान उनकी यह प्रेरणा चुपचाप अपनी गाँठ में बाँध लेता है।

इस घटना के पूर्व ही शुगर-मिल के व्यवस्थापक बाबा साहब की पुत्री हेमलता अचानक चन्द्रकान्त के सम्पर्क में आ जाती है। वह कॉलेज में विद्याध्ययन करती, साहित्यिक अभिरुचि रखती और कविताएँ भी रचती है। जब चन्द्रकान्त और हेमलता की पारस्परिक भेंट होती है, तब उनमें पहले काव्य-चर्चा ही चलती है। शीघ्र ही वे एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते और उनके हृदय में प्रेम के अंकुर फूटने लगते हैं। इसके पश्चात् चन्द्रकान्त 'प्रतिभा' मासिक पत्रिका द्वारा प्रदत्त काव्य प्रतियोगिता में प्राप्त प्रथम पुरस्कार ग्रहण करने के लिए पूना के

साहित्य सम्मेलन में पहुँचता है। इस यात्रा में हेमलता भी चन्द्रकान्त के साथ रहती और सम्मेलन के अधिवेशन में अपने कलित कण्ठ से उसकी कविताओं का गायन करती है। फल-स्वरूप चन्द्रकान्त के सम्मान में मानो चार चाँद लग जाते हैं। बस, वह उल्लसित हृदय से एक उद्यान में हेमलता के समक्ष अपनी सम्पूर्ण प्रेमल भावनाएँ उड़ेल देता है और हेमलता हर्ष के उन्मेष में उनको इस प्रकार स्वीकार कर लेती है, जैसे वे उसी की अन्यतम भावनाएँ हैं।

पूना से लौटने पर चन्द्रकान्त देखता है कि बोनस के प्रश्न को लेकर शुगर-मिल के श्रमिकों में घोर असन्तोष भड़क उठा है। इधर कण्ट्रोल समाप्त हो जाने से शुगर-मिल के संचालक अन्धाधुन्ध रूपये की फसल काट रहे हैं; परन्तु अपने दीन-हीन श्रमिकों के हितार्थ उसका एक अल्पांश देते हुए भी सौ-सौ बहाने बनाते और अश्रु-पात करते हैं। उधर जन-नेता एवं राज-नेता पत्थर के भगवान बने बैठे हैं। अवश्य ही उनके पास श्रमिक-जनों को देश और स्वाधीनता के नाम पर उपदेश करने अथवा धमकाने के लिए शब्दों का कोई अभाव नहीं है। इस स्थिति से चन्द्रकान्त भली-भाँति समझ लेता है कि इसी सुअवसर पर गुरुवर्य प्रकाश की प्रेरणा को मूर्तिमान रूप दिया जा सकता है। बस, वह तत्परता पूर्वक श्रमिक जनों का संगठन करने लगता है। परन्तु हेमलता उसके समक्ष एक एक बाधा के समान प्रकट होती है।

चन्द्रकान्त निस्सन्देह भावुक युवक है और हेमलता को चाहता है। परन्तु जब हेमलता उसकी श्रमिक-आन्दोलन-सम्बन्धी रुचि का विरोध करती है, तब उसके अन्तर में एक प्रबल द्वन्द्व उठ खड़ा होता है। हेमलता अपने को मुझसे समरस नहीं कर सकी—यह सोचते-सोचते वह विषाद में डूब जाता है। परन्तु वह प्रेम की संकुचित और कर्तव्य की विस्तृत सीमाओं से भली-भाँति परिचित है। अतः इस अन्तर्द्वन्द्व में प्रेम की अपेक्षा कर्तव्य को ही श्रेय देता है। अभिप्राय यह कि अपने सिद्धान्त से पीछे नहीं हटता। निष्ठा-पूर्वक उसका पालन करता और श्रमिक आन्दोलन में व्यस्त रहता है। यद्यपि चन्द्रकान्त की यह वृत्ति अनैसर्गिक अथवा मनोविज्ञान के विरुद्ध प्रतीत होती है, तथापि संसार में ऐसे व्यक्तित्व तो पाए ही जाते हैं, जो निश्चय-पूर्वक कर्तव्य की तुलना

में प्रेम को ठुकरा देते हैं। फिर चन्द्रकान्त की इस कर्तव्य-शीलता के महत्व को अपवाद-स्वरूप स्वीकार करने में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है ?

नारी निश्चय ही पुरुष की शक्ति है और उसके सहयोग से वह असंम्भव को भी सम्भव कर दिखाता है। कदाचित् हेमलता की विरक्ति चन्द्रकान्त को क्षीण-बल कर देती, परन्तु इसी समय के आस-पास श्यामा उसके जीवन में प्रविष्ट होती है। यद्यपि वह हेमलता के सदृश सुन्दरी तथा सुशिक्षित नहीं है, तथापि कर्तव्य की विभूति से भरी-पूरी है और निस्संकोच भाव से तन्मयता-पूर्वक चन्द्रकान्त के कार्य-क्रम में हाथ बँटाती है। उसकी यह वृत्ति चन्द्रकान्त को वशीभूत कर लेती है और वह सोचने लगता है—निस्संशय यह मेरे हृदय के निकट और मेरे जीवन से समरस है। फिर तो उसे अलक्षित भाव से जो शक्ति प्राप्त होती है, वह मानों श्रमिक-आन्दोलन में सन्जीवनी ही फूँक देती है।

श्रमिक-आन्दोलन की प्रगति देखते ही शुगर-मिल के सञ्चालक भय-भीत हो उठते हैं। वे चन्द्रकान्त को समझाते-बुझाते, ललचाते-फुसलाते और डाँटते-धमकाते हैं। भला जो व्यक्ति अपने आदर्श पर हेमलता जैसी दिव्य सम्पत्ति निछावर कर चुका है, वह पूँजीवाद के थोथे प्रलोभन में कैसे फँस सकता है ? अन्त में उसे पुलिस के आदेश पर लक्ष्मीनगर त्यागने के लिए विवश होना पड़ता है। परन्तु सरिता के उद्दण्ड प्रवाह के रोकने में कब कौन समर्थ हुआ है ? श्रमिक-वर्ग अपने निश्चय पर अडिग रहता और निश्चित समय पर शान्ति-मय हड़ताल का डङ्का बजा देता है। चन्द्रकान्त यद्यपि लक्ष्मीनगर से निर्वासित है, तथापि उसका हृदय श्रमिक-वर्ग से विलग नहीं है। हड़ताल होते-होते वह एक सन्यासी—महात्मा किरण बाबू के छद्म वेश में लक्ष्मीनगर में आ पहुँचता है और अपने प्रवचन की ओट में श्रमिक-वर्ग का पथ निर्दिष्ट करता है। परन्तु शुगर-मिल के हेडक्लर्क बबनराव की कुटिलता से पुलिस द्वारा गिरफ्तार हो जाता है।

शुगर-मिल के व्यवस्थापक बाबा साहब की एकलौती पुत्री हेमलता 'क्रान्ति-काल' की नायिका है। वह कॉलेज में पढ़ने, साहित्यिक अभिरुचि रखने तथा कविताएँ रचनेवाली युवती है। अतएव चन्द्रकान्त की कृतियों के विषय में बहुत-

कुछ जानती है और जब उसे प्रथम बार अपने बँगले पर देखती एवं उसका नाम सुनती है, तब उस पर सहज ही अनुरक्त हो जाती है। फिर तो जिज्ञासा के आवेश में पार्वती से उसके सम्बन्ध की लगभग सभी ज्ञातव्य बातें पूछ डालती है। इसके पश्चात् बाबा साहब से उसका साक्षात् परिचय पाती है। फल-स्वरूप पारस्परिक भेंट का अवसर आते ही उससे बहुधा काव्य-चर्चा चलाती और नित्य-प्रति अपने अनुराग का रंग गाढ़ा करती जाती है।

हेमलता के इस प्रेम-मय व्यापार के मध्य ही सुरेश आ पहुँचता है। वह शुगर-मिल के मुख्य सञ्चालक का भाञ्जा तथा वैभव की गोद से पला हुआ उच्च शिक्षा प्राप्त युवक है। अतएव उसे प्रारम्भ में बाबा साहब के आवास-स्थल पर ठहरने का अवसर मिलता है और ज्योंही हेमलता पर उसकी दृष्टि पड़ती है त्यों ही वह उसके अनूप रूप-रंग पर लुब्ध हो जाता है। इसके पश्चात् समयानुसार बड़े कौशल से उसपर डोरे डालने लगता है। यद्यपि हेमलता प्रत्यक्ष तो उसके प्रभाव से मुक्त ही रहती है, तथापि अज्ञात भाव से उसे अपने हृदय के एक कोने में अवश्य कुछ स्थान प्रदान कर देती है। उसका यह व्यापार मनोविज्ञान के एक ऐसे सूक्ष्म तन्तु से ग्रथित है, जो चुपचाप सबल होता रहता और अन्त में कथा के सम्पूर्ण उपादान को कहीं से कहीं खींच ले जाता है—इस प्रकार, मानो उसकी गति परम स्वाभाविक है और उसके विस्मय के लिए कोई स्थान ही नहीं है।

वास्तव में हेमलता भावना-सम्पन्न युवती है। वह चन्द्रकान्त को चाहती है—उसे एक महान् तथा यशस्वी साहित्यिक एवं कवि के रूप में देखने की अभिलाषा रखती है; परन्तु उसके राजनैतिक विश्वास, और विशेषकर श्रमिक-प्रेम से विरक्ति ही रहती है। तथ्य यह है कि उसने सुखी घर जन्मलिया है और कभी अभाव-जन्य कष्ट का कोई अनुभव ही नहीं किया। फलतः उसकी दृष्टि में श्रमिक-वर्ग का आन्दोलन निस्सार और उनकी माँग तिरस्कार-योग्य है। समय आने पर वह अपने विचार निस्सङ्कोच भाव से चन्द्रकान्त के सामने रख देती और उसके श्रमिक-संगठन सम्बन्धी कार्य का विरोध भी करती है। परन्तु जब चन्द्रकान्त अपने ध्येय से पराङ्मुख नहीं होता, तब हेमलता के स्वाभिमान

पर जैसे एक चोट पड़ती है और चन्द्रकान्त के प्रति उसका प्रेम शिथिलता की ओर ढलने लगता है।

हेमलता इसी मानसिक उथल-पुथल की अवस्था में सुरेश द्वारा यह समाचार पाती है कि चन्द्रकान्त का चरित्र सन्दिग्ध है—वह पार्वती से अनुचित सम्बन्ध रखता है और अब तो श्यामला भी उसके सम्पर्क में आ गई है। बस, हेमलता के अन्तर में नारी की सहज-सुलभ ईर्ष्याग्नि धधक उठती है, और वह क्या प्रत्यक्षत:—क्या परोक्षत: चन्द्रकान्त से दूर हटती जाती है। जब सुरेश देखता है कि अब लोहा यथेष्ट उष्ण हो चुका है, तब कौशल-पूर्वक उसपर घन-प्रहार करता है। वह हेमलता के समक्ष अपनी सम्भावित विदेश-यात्रा की चर्चा चलाता और फिर उसके साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखता है। हेमलता नैराश्य और ईर्ष्या के संघर्ष में तो पिस ही रही है; वह सुरेश की बातों में अपना गुरुत्व भूल जाती है। चन्द्रकान्त को दिया हुआ अपना वचन भूल जाती है और प्रसन्न मन से न सही, विषण्ण मन से ही सही, उसके प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति दे देती है। पतन का यह ऐसा मर्म-स्पर्शी चित्रण है, जो क्लाइमेक्स की उचित सीमा पर पहुँच गया है और बरबस हमारी सारी सहानुभूति पर अधिकार जमा लेता है। वास्तव में इसी स्थल पर 'क्रान्ति-काल' की सफलता सन्निहित है।

सुरेश 'क्रान्ति-काल' का ऐसा पात्र है, जो हेमलता के सम्बन्ध में चन्द्रकान्त का प्रतिस्पर्द्धी है। उसमें अपनी उच्च स्थिति और उच्च शिक्षा के लिए कुत्सित दम्भ है और अपने मनोद्वेगों पर अधिकार रखने की कोई क्षमता नहीं है। अतः चरित्र के विचार से वह सामान्य स्तर से भी गिरा हुआ है और प्राप्त सुविधाओं से सदैव अनुचित लाभ उठाने की चेष्टाओं में निरत दिखाई देता है। पार्वती और हेमलता से उसकी एक समान कुदृष्टि लगी रहती है। वह अपने डेरे पर पार्वती की दयनीय स्थिति से सहानुभूति प्रकट करता और उसे अपनी मिथ्या उदारता से ललचाता है। परन्तु पार्वती की मर्यादा इतनी जाग्रत, इतनी सक्षम और इतनी तीक्ष्ण है कि उसका स्पर्श करते-करते सुरेश का सारा प्रलोभन पाश खण्ड-खण्ड हो जाता है।

परन्तु इस लज्जा-जनक पराजय के उपरान्त भी सुरेश अकुण्ठित भाव से अपने निन्दनीय व्यापार में अग्रगामी रहता है। वह अपना सारा ध्यान हेमलता पर केंद्रीभूत रखता है; क्योंकि वही तो उसका मुख्य शिकार है। वास्तव में उच्च श्रेणी की भौतिक सम्पन्नता में बड़ा बल—बड़ा आकर्षण होता है। सुरेश के पास यथेष्ट सम्पत्ति, उच्च शिक्षा की डिग्री, स्वर्णिम भविष्य की निश्चित सम्भावना और चपल बुद्धि तो विद्यमान है ही, बस, वह इन्हीं सबके भरोसे बाबा साहब के बँगले पर पहुँचता और हेमलता की दुर्बलता पर लगातार प्रहार करता है, तथा अन्त में विजय पाता है। आह, पुरुष की धूर्तता से अपरिचित भोली-भाली हेमलता कितनी सरलता से अपना सर्वनाश कर बैठती है। सुरेश के चरित्र का यह अंश इतना घृणित है कि उसपर हमारे हृदय का समस्त धिक्कार अनायास ही बौछार के रूप में जा पड़ता है।

श्यामला 'क्रान्ति-काल' में भारत की अभागिनी कन्या का प्रतिनिधित्व करती है। यद्यपि वह जन्म-जात अतीव बुद्धिमती है; तथापि कन्या होने के अपराध में प्रबल आकांक्षा रखने पर भी अपने मूर्ख भ्राताओं की तुलना में—उच्च शिक्षा पाने के वरदान से वञ्चित रहती है। इसके साथ उसका एक अपराध यह भी है कि वह संसार में रूप-रंग की माधुरी लेकर नहीं आई है। अतएव सुरुचि की दृष्टि में सर्वत्र गृहलक्ष्मी-पद के अयोग्य समझी जाती है। कन्या की इस दयनीय सामाजिक स्थिति से उसके मृदुल स्वाभिमान को शत-शत वृश्चिक-दंशन जैसे पीड़ा पहुँचती है और वह निरावलम्ब भविष्य जीवन की कल्पना-मात्र से काँप-काँप उठती है। अन्त में अपने पैरों पर खड़े होने के विचार से पूना जाती, वहाँ 'नर्सिङ्ग' की शिक्षा प्राप्त करती और फिर लक्ष्मीनगर माता-पिता के पास लौट आती है।

परन्तु नियति ने श्यामला के लिए कुछ और ही व्यवस्था कर रखी है। एक दिन सहसा पार्वती का गर्भ-पात हो जाता है। बस, योग्य चिकित्सिका के अभाव में श्यामला निस्वार्थ भाव से आगे बढ़ती और चन्द्रकान्त की माता सत्यभामा के साथ उसकी सेवा-शुश्रूषा करती है। वह स्वयं मध्य स्थिति के माता-पिता की पुत्री है और साधन-हीन जीवन की विपन्नता भोग रही है। अतः

श्रमिक-वर्ग की दयनीय स्थिति के प्रति उसकी सहानुभूति सहज ही जाग उठती और वह अयाचित भाव से तत्परता-पूर्वक चन्द्रकान्त के प्रत्येक कार्य में हाथ बँटाने लगती है। उसके इस व्यापार से चन्द्रकान्त निष्प्रभ-सा रह जाता और मानसिक संघर्ष की अवस्था में सोचने लगता है—यदि हेमलता रूप-श्री से सज्जित है, तो श्यामला गुण-श्री से मण्डित है परन्तु रूप-श्री सर्वथा क्षयशील है—आज है और कल नहीं! इसके विरुद्ध गुण-श्री सर्वदा अक्षय है—आज भी और कल भी। फिर हेमलता मुझसे कभी समाप्त न होने वाले अन्तर पर है और श्यामला जैसे वह सारा अन्तर पार कर मेरे निकट—बहुत निकट आ गई है।

इसके उपरांत जब शुगर-मिल में हड़ताल होने पर चन्द्रकान्त पुलिस के हाथों गिरफ्तार होता है, तब मुसकिरा कर अपनी दुखियारी माता से कहता है—'माँ कातर होने की क्या आवश्यकता है? मेरे बदले श्यामला तो तुम्हारे पास है! तुम मुझे अब तक दबाने लगती थीं कि एक ऐसी बालिका ले आ; जो मेरे पास रहे मेरी सेवा करे, और मेरा मन बहलाए। श्यामला ठीक वैसी ही बालिका है। अब यह तुम्हारे पास रहेगी, तुम्हारी सेवा करेगी और तुम्हारा मन बहलायेगी।' बस, श्यामला उनके इन शब्दों में अपने हृदय की समस्त अभिलाषाओं के साक्षात दर्शन तो पा ही जाती है, बलात् हमारे आशीर्वाद भी अपनी ओर खींच लेती है।

शंकर, बबनराव, सत्यभामा और पार्वती भी 'क्रान्ति काल' के उल्लेखनीय पात्र-पात्रियाँ हैं। शङ्कर भारत के उस अभागे श्रमिक का प्रतीक है, जो दरिद्रता में जन्म लेता, दरिद्रता में ही जीवित रहता और देश के नाम पर अपना खून-पसीना एक करते-करते कीड़े-मकोड़े को नाई मर-खप जाता है। परन्तु इसके विरुद्ध बबनराव वह शिक्षित भारतीय व्यक्ति है, जो केवल अपनी कुटिलता से सम्बलित होकर फूलता-फलता और दूसरों के स्तत्व नोचता-खसोटता सदा चैन की बाँसुरी बजाता है। सत्यभामा वह भारतीय ममता-मयी माता है, जो अभाव के असह्य वातावरण में भी सन्तोष की साँसें लेती और अपनी सन्तान का मुँह देखते-देखते अपना जीवन पञ्च-तत्व में मिला देती है। पार्वती वह महिमामयी भारती गृहलक्ष्मी है, जो आजीवन छाया के समान अपने पति के

पीछे-पीछे चलती, उल्लास के आवेश में हँसते-हँसते भूख-प्यास और ताप-शीत की दारुण पीड़ाएँ झेलती; परन्तु अपने देवता के पवित्र निर्माल्य को अक्षय निधि के समान अपनी जर्जर काया में सँजोये रहती है। 'क्रांति-काल' में इसका जो चित्रण है, वह इतना दिव्य—इतना प्रभा-पूर्ण है कि उसके समक्ष हमारा मस्तक स्वयमेव श्रद्धावन्त हो जाता है।

'क्रान्ति-काल' का अन्त इतने मनोहर ढंग से हुआ है कि उससे कलात्मक सौंदर्य छलक पड़ता है। जब पार्वती अपने आहत पति शंकर को पीपलगाँव ले जाने लगती है, तब शिष्टाचार के नाते हेमलता से भेंट करने चली जाती और उससे सरलता-वश कह बैठती है—'सुना है, सुरेश बाबू से आपका विवाह होनेवाला है। चन्द्रकान्त दादा के साथ तो बड़ा प्रेम था आपका!'

पार्वती की यह बात हेमलता के हृदय में शूल के समान चुभ जाती है। उसकी ईर्ष्याग्नि वेग से भड़क उठती है और वह उसे घृणा-व्यञ्जक शब्दों में उत्तर देती है—'अरी, जब उन्हें तुझ जैसी प्रेम करनेवाली मिल गई है, तब उन्हें मेरे प्रेम की क्या आवश्यकता है!' इसी प्रसंग में वह यह भी प्रकट कर देती है—'मुझे तो सुरेश बाबू से विदित हुआ है, और सुरेश बाबू को बबनराव से तथा बबनराव को मञ्जुला से पता चला है, जो तेरे ही घर के पास रहती है।'

इस पर पार्वती, मञ्जुला को हेमलता के पास बुला लाती है। वह शपथ-पूर्वक हेमलता से कहती है—'चन्द्रकान्त तो गङ्गा के समान पवित्र और निर्मल है। भला उनसे ऐसा गर्हित कार्य कैसे हो सकता है? इस लाञ्छन में बबनराव की कुटिलता के अतिरिक्त और कोई तथ्य नहीं है। वह मुझसे डाह रखते हैं। इसीलिए उन्होंने मेरे नाम से इस दुष्काण्ड की रचना कर डाली है।'

यह सुनते ही जैसे हेमलता के सामने से अन्धकार का आवरण छिन्न-भिन्न हो जाता है। वह विषाद और पश्चात्ताप के कशाघातों से विह्वल हो उठती है। इसी अवसर पर उसे चन्द्रकान्त का पत्र मिलता है, जिसमें वह लिखता है—'तुमने मेरे अन्तर के कवि से प्रेम किया था; परन्तु मैं उससे अपने दीन-हीन श्रमिक को विलग न कर सका। क्या करूँ, यह मेरे लिए यह सम्भव ही न हुआ।

बस, तुम मुझ से दूर-दूर रहीं। अस्तु, जिस कवि चन्द्रकान्त से तुमने प्रेम किया था, उसका यह अन्तिम स्मृति-चिह्न स्वीकार करो !'

पत्र पढ़ते-पढ़ते हेमलता जैसे आत्म-विस्मृत हो जाती हैं और अश्रु-मुक्ताओं से उसका अभिषेक करने लगती है। इस प्रकार वह एक बार फिर हमें करुणा से विभोर कर देती है और हम चुपके-चुपके उसपर अपनी सारी सहानुभूति लुटा बैठते हैं।

'क्रांति-काल' में कुल मिलाकर आदर्श-वाद, यथार्थ-वाद प्रगतिवाद का अतीव सुन्दर सम्मिश्रण, हुआ है। सत्यभामा, चन्द्रकान्त, शंकर, पार्वती, हेमलता और श्यामला के चित्रण कुछ-न-कुछ आदर्श लेकर ही हमारे सामने उपस्थित हुए हैं। परन्तु ये आदर्श ऐसे हैं, जो यथार्थ से भली भाँति समन्वित हैं, देव-लोक के नहीं इसी मानव-लोक के हैं, फिर सरल हैं, सम्भव हैं, शिष्ट हैं; अतएव सर्वथा प्रेरणा-प्रद हैं और सर्वदा ग्रहण करने योग्य हैं। सुरेश और बबनराव के चित्रण यद्यपि आदर्श-विहीन हैं, तथापि खरे यथार्थ से पूर्ण हैं, और हमें उन जैसे विषैले व्यक्तित्व से सावधान रहने के लिए संकेत अवश्य देते हैं। अब रहा प्रगति-वाद, सो वह अपने विशुद्ध रूप से चन्द्रकान्त और श्यामला के चित्रण में परिव्याप्त है।

वास्तव में चन्द्रकान्त एक ऐसा युवक है, जो अपने को अथ से लेकर इति तक श्रमिक-समस्या से सम-रस रखता है। वह मार्क्स-वादी विचार-धारा का अध्ययन अवश्य करता है, परन्तु श्रमिक समस्या का हल समाज-वादी विचार-धारा में ही ढूँढ़ता और अपने आन्दोलन को शान्ति-मय रखता है। एतदर्थ अत्यधिक त्याग करता, 'उषा काल की फिल्म-कम्पनी' द्वारा प्राप्त नियन्त्रण-पत्र को ठुकरा देता, हेमलता जैसे परम आकर्षक नारी-रत्न का मोह छोड़ देता और दृढ़ता-पूर्वक अपने व्रत पर डटा रहता है। श्यामला जैसी भोली-भाली बालिका पर भी उसके इस गुण का—इस त्याग का समुचित प्रभाव पड़ता है। वह प्रगति-वाद से सर्वथा अपरिचित होने पर भी प्रगति-वाद के प्रवाह में बह जाती और तदनु-कूल ही कार्य करने लगती है।

'क्रान्ति-काल' साहित्यिक दृष्टि से भी सफल रचना होने का दावा कर सकता है। उसमें वर्णित प्राकृतिक दृश्य अपनी निराली विशेषता रखते हैं। वे अतिक्रम या व्यतिक्रम से रहित, मनोरम छटा से निहित हैं और मानों किसी विदग्ध कवि के नपे-तुले कलित शब्दों अथवा कुशल चित्रकार के ललित भावों से विहित हैं। फिर उसके पात्रों में रूप-रंग ही नहीं, जीवन भी है। वे हमारे आपके समान बँधी हुई सीमा के अन्तर्गत अपने निश्चित कार्य करते और समय-समय पर अन्तर्द्वन्द्व में निमग्न दिखाई देते हैं—ऐसे अन्तर्द्वन्द्व में, जो एक ओर नैतिकता का भार सँभालते और दूसरी ओर मानवता की शोभा बढ़ाते हैं। उनके साथ विविध प्रकार के विचार तो चलते ही रहते हैं। वे कभी व्यक्ति-मूलक, कभी व्यष्टि-मूलक और कभी समस्या मूलक होते हैं; परन्तु सर्वदा शान्त और शिष्ट-उग्रता और उद्दण्डता से एकान्त परे। फिर भी उस भावना का निदर्शन करते हैं, जिससे इस उपन्यास का नाम 'क्रान्ति-काल' रखा गया है, और जो इस उपन्यास के पृष्ठ-पृष्ठ से मुखरित हो रही है। निस्सन्देह यह इसकी सफलता का पुष्ट प्रमाण है।

'क्रान्ति-काल' श्री व. ह. पिटके महोदय की सन्तुलित लेखनी से निसृत हुआ है। मराठी भाषा की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कहानियाँ और कवि-ताएँ स्थान पाती हैं। सुना है, 'क्रान्ति-काल' उनका पहला ही उपन्यास है। अतएव हमें उनकी इस अद्भुत सफलता पर विस्मय होता है। यह भी सुना है, वे कोल्हापुर की शुगर-मिल में कर्मचारी हैं। अतएव हमें स्वभावतः सन्देह होता है कि 'क्रान्ति-काल' में कहीं वे ही तो चन्द्रकान्त का रूप धारण कर नहीं उतर आए हैं। जो हो, वे समर्थ कलाकार अवश्य हैं, और उन्होंने 'क्रांति-काल' द्वारा युवकों तथा युवतियों को एक प्रेरणा-प्रद अथच उपादेय पथ दिखाया है। एतदर्थ हम हृदय से उनका अभिनन्दन करते हैं।

'क्रान्ति-काल' का यह हिंदी रूपान्तर बन्धुवर्य श्री रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे ने प्रस्तुत किया है। यद्यपि उनकी मातृ-भाषा मराठी है, तथापि वे जन्म से ही राष्ट्र-भाषा हिन्दी के पुजारी हैं और लगभग पैंतालीस वर्ष से उसकी पूजा अर्चना में

में संलग्न है। वे सदा यशोलिप्सा की उपेक्षा करते हैं; इसीलिए हिन्दी-संसार में अभी तक उनकी ठोस सेवाओं का कोई मूल्याङ्कन नहीं हुआ है। यह वास्तव में बड़े खेद की बात है। अस्तु। सर्वटेजी ने 'क्रान्ति-काल' के इस रूपान्तर द्वारा हिन्दी-भाषा के भण्डार में एक सुन्दर वस्तु की अभिवृद्धि की है और हमें उसके सम्बन्ध में यह निवेदन लिखने का जो सौभाग्य प्रदान किया है, उसके लिए हम हृदय से उनके कृतज्ञ हैं।

सागर (म० प्र०) निवेदक
२८ फरवरी, १९५६ ई० **जहूर बख्श**

टन्-टन्-टन् !

दीवाल पर लगी घड़ी ने तीन बजाए। आज शनिवार था, और "लक्ष्मी शुगर मिल्स" का दफ्तर शनिवार को तीन बजे ही बन्द हो जाता था।

चन्द्रकान्त ने अपने सामने खुली पड़ी, कम्पनी की मोटी लेजर-बुक खट से बन्द की, दावात, क़लम आदि चीज़ें दराज़ में रखी, कुरसी की पीठ पर टँगा हुआ कोट पहन लिया और यह देखकर कि उसके दूसरे साथी अभी तक या तो इधर-उधर घूम रहे हैं, या अपनी चीज़ें यथास्थान रखने में व्यस्त हैं, वह अकेला ही झट-से दफ्तर से बाहर निकल पड़ा।

चन्द्रकान्त की चाल में अधीरता थी और चेहरे पर ख़ुशी उमड़ रही थी। उसकी आँखें, जो जन्म से ही पानीदार और बड़ी थीं, आज हर्ष से और भी अधिक प्रफुल्लित दीख रही थीं। कारखाने के निकट कर्मचारियों के रहने के लिये एक 'लक्ष्मीनगर' नामक बस्ती थी। उसी की एक चाल में चन्द्रकान्त का घर था। उसी ओर चन्द्रकान्त के पैर उसे द्रुत गति से ले जा रहे थे।

उसकी यह अधीरता और प्रसन्नता अकारण न थी। ऐसी एक बात भी हो गई थी।

'प्रतिभा' जैसी प्रसिद्ध मासिक पत्रिका की ओर से उसकी कविता पर प्रथम पारितोषिक प्राप्त हुआ था, जिसकी घोषणा आज ही हुई थी 'प्रतिभा' मराठी-साहित्य की एक सुप्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ मासिक पत्रिका थी। चार महीने पहले उसके

सम्पादक ने उत्तम कविताओं के लिये एक प्रति-योगिता की घोषणा की थी और उसी में सर्वश्रेष्ठ आने वाली दो कविताओं के लिये क्रम से १००रुपए और ५० रुपए के दो पारितोषिक घोषित किए थे। इसी प्रतियोगिता का १०० रुपए का प्रथम पारितोषिक आज चन्द्रकान्त के नाम पर घोषित हुआ था।

चन्द्रकान्त काव्य-क्षितिज पर एक नवोदित तारा था। पिछले साल-डेढ़ साल से उसकी कविताएँ 'प्रतिभा' तथा अन्य पत्रों में प्रकाशित होने लगी थीं। उन कविताओं का अभिनव और आकर्षक सौन्दर्य देखकर कविता प्रेमियों ने मन-ही-मन समझ लिया था कि साहित्याकाश में कभी-कभी चमक जाने और फिर सहसा लुप्त हो जाने वाले सैकड़ों साधारण तारों की तरह न होकर, यह शुक्र का तारा है; और आज जो निर्णय प्रकाशित हुआ था, वह उन सब पाठकों का जैसे एकमुखी मत था।

फिर ऐसे समय चन्द्रकान्त की तरह उच्चश्रेणी के कवि का हृदय न भर आता और उसकी भावनाएँ न उमड़ आतीं—यह कैसे हो सकता था?

देहली के भीतर कदम रखते ही झट चप्पलें उतारीं और वह सीधा चौके में चला गया। वहाँ उसने चुल्हे के पास बैठी हुई अपनी माँ—सत्यभामा से कहा—

"माँ, मुझे इनाम मिला है! मैंने तुमसे पहले कहा था न, कि कविताओं पर इनाम मिलने वाला है और उसके लिए मैंने भी एक कविताभेजी है। उस कविता पर सौ रुपए का पहला इनाम मिला है। आज ही पता चला है। हय देखो 'प्रतिभा' का वह अंक, जिसमें मेरी कविता छपी है और पुरस्कार की घोषणा है। संपादक ने अलग से मुझे बधाई का पत्र भी भेजा है, यह देखो।"

वह बहुत जल्दी-जल्दी बोल रहा था, जिससे मालूम होता था कि उसे कितना आनन्द हुआ है।

अपने पुत्र का यह पराक्रम और गौरव सुनकर माँ के मुँह से 'सच!' शब्द ही बाहर निकला और उसकी आँखें सजल हो गईं।

'आज वे होते, तो उन्हें कितनी खुशी होती—' सत्यभामा बुद-बुदायी।

परन्तु शीघ्र ही उसने अपने मन को और साथ ही आँखों में भर रहे आँसुओं को रोक लिया। वह आँचल से आँखें पोंछती हुई बोली—

'इसी तरह अपने कुल का नाम उज्ज्वल करते रहो बेटा! माँ दुर्गा, इसी तरह बड़ी-बड़ी विजय प्राप्त होने दो मेरे राजा बेटा को—'

इसके बाद वह थोड़ी देर ठहर कर बोली—

'चन्द्र, थोड़ा ठहरो बेटा, जिससे चाय के साथ तुम्हारी पसंद का नाश्ता तैयार कर दूँ या पहले सिर्फ चाय ही बनाकर लाऊँ?

'नहीं, कोई जल्दी नहीं है, मैं ठहरता हूँ!''—कहकर चन्द्रकान्त बाहर बैठकखाने में आया। उसने अपनी कविताओं की कापी निकाली और वह आराम कुरसी में लेट उसके पन्ने पलटने लगा।

+ + +

सत्यभामा चूल्हे के पास बैठकर कढ़ाई में आटा उलट-पलट रही थी। उसी के साथ मन में भूतकाल की स्मृतियों को भी पलट रही थी।

चन्द्रकान्त की सफलता का समाचार पाते ही उसे अपने पति कृष्णाजी पंत की याद तीव्रता से हुई और 'वे आज होते तो...' ये शब्द उसके मुँह से निकल पड़े, जो स्वाभाविक ही थे।

कृष्णाजी को चन्द्रकान्त की होशियारी पर कितना नाज़ था—कितना अभिमान था! वे हमेशा कहा करते थे—"मेरा विचार है कि मैं चन्द्रकान्त को उसकी इच्छानुसार खूब ऊँची शिक्षा दिलाऊँ, प्रोफेसर बनाऊँ।

वैसे देखा जाय, तो वह पीपलगाँव जैसे देहात में रहते थे, जहाँ उन्हें शहरों की तरह अधिक खर्च न था; पर, उनकी आमदनी भी बहुत साधारण थी।

अपने विगत जीवन का चित्रपट सत्यभामा की आँखों के सामने से जल्दी-जल्दी सरकने लगा...

कृष्णाजी पंत पीपलगाँव के ज़मींदार के यहाँ नौकर थे। वह उनके मुनीम-दीवानजी थे। दादाजी ज़मींदार की ज़ायदाद काफ़ी बड़ी थी। सारी ज़ायदाद को ठीक तरह से देखना दादाजी जैसे वैभव में पले व्यक्ति के लिए संभव नहीं

था और ऐसा करना एक: ज़मींदार की शान के ख़िलाफ़ भी था। बस उन्होंने कृष्णाजी को अपना दीवान नियुक्त कर रखा था इसके लिए कृष्णाजी को छः सौ रुपये वार्षिक वेतन मिलता था। कृष्णाजी यद्यपि पीपलगाँव के ही निवासी थे, तथापि वहाँ उनके पास एक टूटा-फूटा मकान और दो बीघा ज़मीन के सिवा और कोई ज़ायदाद न थी। कृष्णा जी पंत के पितामह के समय उनके मालिकी की बहुत-सी ज़मीन कृष्णाजी के भाई-बंदों ने उस भोले-भाले बूढ़े को फँसाकर अपने कब्ज़े में कर ली थी, ऐसा लोग कहते थे। कृष्णाजी के पिता तीस वर्ष की आयु में ही परलोक सिधार गए थे। इसलिए कृष्णाजी का लालन-पालन उनके पितामह ने किया था। पितामह वृद्ध हो गए थे बहुत थक गए थे और कृष्णाजी पंत की उम्र उस समय सिर्फ आठ साल की थी। अतः यह स्वाभाविक ही था कि उनके दूसरे भाइयों ने इस अवसर से पूरा-पूरा लाभ उठाया। आज वे सब भाई बड़े-बड़े ओहदों पर थे और उन्हें लम्बी तनख़ाहें मिल रही थीं। पीछे रह गए थे तो कृष्णाजी पंत। कृष्णाजी पंत का स्वभाव सीधा-सादा और गरीब था और वृत्ति ऐसी थी कि वे फूँक-फूँक कर पैर रखते थे। क्या मजाल कि किसी के सूखे घास फूस पर भी उनका पैर पड़ जाय! इतनी प्रामाणिकता थी उनमें। उनकी शिक्षा मराठी मिडिल तक हुई थी। इतनी शिक्षा से वे किसी प्राथमिक शाला में आसानी से शिक्षक हो सकते थे। परंतु उस समय प्राथमिक शाला के शिक्षक पाँच छः रूपये माहवारी वेतन पर शुरू होते थे। इसलिए पितामह को यह बात न जँची कि इतने थोड़े रूपयों के लिए उनका नाती गाँव-गाँव भटकता फिरे। कृष्णाजीने भी सोचा कि गाँव छोड़कर जाना उचित नहीं; क्योंकि ऐसा करना अपने शिथिल-गात्र पितामह के हाथ से लाठी छीन लेने की तरह होगा। इसलिए उन्होंने भी गाँव छोड़ने का विचार त्याग दिया और वे गाँव में अपने वृद्ध पितामह के साथ रहने लगे। उसी समय पता चला कि दादाजी ज़मींदार को जो पीपलगाँव के भी ज़मींदार थे एक चतुर और होशियार दीवान की जरूरत है। पितामह ने दादाजीसे कृष्णाजी के बारे में बात की और उन्होंने उनकी बात मंजूर कर ली। इस तरह कृष्णाजी काजीवन पीपलगाँव में ही दूसरे की ज़मींदारी के लिए खपने में व्यतीत होने लगा।

सच पूछा जाय, तो इस जीवन में भी यदि कोई दूसरा व्यवहार-कुशल और धूर्त व्यक्ति होता, तो वह स्वयं अपना मतलब गाँठकर घर भर लेता—फिर दादाजी जैसे अपने काम में अधिक ध्यान न देने वाले ज़मींदार की दीवानगिरी में बहुत से दीवान इस काम को ऐसा समझतेहैं जैसे मालिक ने हमें हरी घास का मैदान दे दियाहै, जहाँ हम मनमाना चर सकते हैं। यही वृत्ति अकसर सभी दीवानों की होती है। परन्तु कृष्णाजी इस साँचे में नहीं ढले थे। ऊपर कहे गए उनके सीधे-सादे और निर्लोभी स्वभाव के कारण ही, अथवा उनपर पड़े पूर्वजों के संस्कार के कारण ही उन्होंने जमींदार से मिलने वाले वार्षिक वेतन के सिवाय कभी एक तिनके की भी आशा नहीं रखी। उन्हें खेतों की देखभाल के लिए ज़मींदारी के गाँवों में भी बार-बार दौराकरना पड़ता था। जब किसी गाँव से लौटते, तो वहाँ के काश्तकार उन्हें कुछ साग-भाजी, फल आदि दे दिया करते थे। परंतु कृष्णाजी पंत उनसब चीजों को ज़मींदार की कोठी में पहुँचा देते थे और फिर यदि ज़मींदार साहब बहुत आग्रह करते, तो उनमें से कुछ अपने घर ले आते थे।

उनकी शादी हुई। गृहस्थी का विस्तार बढ़ने लगा, फिर भी उनका यही स्वभाव बना रहा।

सारांश यह कि यदि इस तरह नेकी से रहने वाले मनुष्य के घर लक्ष्मी ने निवास करने से इन्कार कर दिया, तो यह कोई अचरज की बात न थी।

यह बात न थी कि कृष्णाजी को अपनी परिस्थित पर कभी दुख न होता हो। खासकर समय बदलने और गृहस्थी का विस्तार बढ़ जाने पर उनके मन को अस्वस्थ कर देने वाले प्रसंग बार-बार आने लगे।

उन्हें कुल मिलाकर नौ बच्चे हुए। उनमें लड़के तो दो ही थे और बाकी लड़कियाँ थीं। दो लड़कियाँ और चन्द्रकान्त के बाद वाले लड़के को छः महीने में ही काल ने सत्यभामा बाई की गोद से छीन लिया। दूसरी दो लड़कियाँ भी एक-एक कर चल बसीं—बारह साल की यमुना चेचक से और चार साल की कमल डिब्बे के रोग से। पीपलगाँव से करहाड़ सात-आठ मील फासले पर है। वहाँ डॉक्टर रहते हैं, जो आसानी से पीपलगाँव आ सकते हैं फिर

भी गाँववाले उनसे लाभ नहीं उठाते। डाक्टर और वैद्यों के बदले, जहाँ तक हो सकता है, वे घरेलू दवाओं से ही अपना काम चला लेते हैं। जब रोग बहुत बढ़ जाता है, तभी गाँववालों को डाक्टर की याद आती है। परन्तु उस वक्त या तो बहुत देर हो जाती है, या फिर उनकी जेब ख़ाली रहती है।

चन्द्रकान्त उनका तीसरा लड़का था और गोदावरी तथा शान्ता उसके पीठ की थीं। चन्द्रकान्त बचपन से ही बड़ा चुस्त और तीव्र बुद्धि था। इसलिए सभी उसको चाहते थे। शिक्षक भी उस पर बेहद खुश रहते थे। वह मराठी चौथे दरजे में था। उसके अध्यापक का नाम था दंडवते। यह उनका उपनाम था और गाँव के लोग उन्हें 'दंडवते गुरुजी' कहते थे। दंडवते गुरुजी ने अपनी निगरानी में चंद्रकान्त से स्कालरशिप-परीक्षा में बैठने की तैयारी कराई। एक तो स्वयं विद्यार्थी ही होशियार था और ऊपर से उसे उत्साही शिक्षक मिल गया। सोने में सुगंध सरीखा संयोग था यह। फिर सफलता कैसे दूर भागती? दंडवतेजी ने जितने उत्साह से चन्द्रकान्त से अध्ययन करवा लिया था उतने ही परिमाण में चन्द्रकान्त ने भी परिश्रम कर पूरे जिले में परीक्षा में पहला नंबर प्राप्तकर उनके श्रम को सार्थक कर दिया। गुरुजी को बड़ा सन्तोष हुआ। उस समय बाटी गई मिठाई से दण्डवतेजी गुरुजी की हँसी उड़ानेवाले दूसरे शिक्षकों के मुँह आप-ही-आप बन्द हो गए और ऐसे दिखने लगे, जैसे उनकी जिह्वा को कोई कड़वी चीज़ चखने को मिली है।

चन्द्रकात के द्वारा अर्जित इस यश-मात्र ने ही कृष्णाजी को उसे अंग्रेज़ी पढ़ाने के विचार से किसी शहर में भेजने के लिए मज़बूर कर दिया। करहाड़ नज़दीक-क़रीब आठ मील पर था। इसलिए चन्द्रकान्त को अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए वहीं भेजना तय हुआ। परन्तु दस-ग्यारह साल के एकलौते बेटे को इतनी दूर कैसे रखें? वह भी कैसे रहेगा? परन्तु काणे मास्टर के कारण यह समस्या हल हो गई। वहाँ के हाई स्कूल में 'काणे' उपनाम के एक गणित-शिक्षक थे। उनके कोई संतान न थी। पति-पत्नी दो ही घर में रहते थे। वे बड़े दयालु थे, और होनहार, परन्तु गरीब विद्यार्थियों को अपने घर भोजन देने या रुपयों द्वारा मदद करने के लिए उनकी ख्याति थी। उन्होंने चन्द्रकान्त को बड़ी खुशी से अपने घर रख लिया। शीघ्र ही चन्द्रकान्त पर उस स्नेहशील दम्पति का स्नेह

हो गया। चन्द्रकान्त का मन भी उस घर में खूब रम गया। पढ़ाई, परीक्षा और पारतोषिक में वह व्यस्त रहने लगा। करहाड़ के बाजार में पीपलगाँव से बैल-गाड़ियाँ आती-जाती रहती थीं। उन गाड़ियों से वह महीने में एक-दो बार पीपलगाँव हो आया करता था। घर जाकर वह काणे-दम्पति के प्रेम-पूर्ण स्वभाव की कितनी ही बातें अपनी माँ को बताता था। गोर वर्ण और समान मुखाकृति के कारण चन्द्रकान्त मास्टरनी बाई का भाई-सा लगता था। वे घर आने-जाने वाले लोगों से कह देती थीं कि यह मेरा भाई है और उनके प्रेम के कारण सुनने वालों को भी वह असत्य न लगता था। यह सब, जब चन्द्रकान्त अपनी माँ से कहता, तब वह गदगद हो जाती थी।

वर्ष पर वर्ष बीत रहे थे। चन्द्रकान्त हरसाल परीक्षा में पहले नंबर पास होता और पारितोषिक प्राप्त करता था सिर्फ पढ़ाई में ही नहीं, बल्कि निबन्ध-लेखन की स्पर्धा में और वक्तृत्व की प्रतियोगिता में भी। जब छुट्टी में घर आता तो अपनी पारितोषिक की पुस्तकें और पदक आदि अपने माँ-बाप को दिखाता था। गोदू और शान्ता के पोलकों पर पदक लटका देता था। यह सब देखकर माँ और बाप दोनों के हृदय आनन्द से भर जाते थे। अपने पिछड़े हुए घर का नाम अपना चन्द्र उज्ज्वल करेगा, ऐसे मधुर आशा-स्वप्न उन्हें दिखने लगते थे। परन्तु......

कभी किसी के एकसे उत्कर्ष के दिन रहे हैं क्या !

इसी सत्य का अनुभव उस परिवार को भी हुआ।

चन्द्रकान्त मैट्रिक में पढ़ रहा था। यह वर्ष उसका बड़े महत्व का था। उसकी पढ़ाई ज़ोरों से चली थी। अब छुट्टियों में भी उसने पीपलगाँव जाना छोड़ दिया था। यदि कभी जाता भी, तो साथ में पढ़ाई की पुस्तकों का गट्ठा ले जाता और पुस्तकों से सिर ऊपर न उठाता था।

जनवरी का महीना था। ठंड के दिन थे। एक दिन साँझ को कृष्णाजी पंत दो मील दूर बेलवाड़ी के खेतों से लौटकर घर आए और उन्हें कुछ हरारत-सी मालूम हुई। इसलिए वे बिना भोजन किए ही बिस्तर पर लेट गये। कटनी

का मौसम था। उन्हें लगा, शायद थकावट के कारण यह हरारत हो गई हो, इसलिए किसीने भी उस ओर कोई विशेष ध्यान न दिया। दूसरे दिन सुबह कुछ अच्छा लगा, इसलिए एक दूसरे गाँव चल दिये। वहाँ फसल की कटनी शुरू करनी थी। सत्यभामा बाई ने बहुत रोका, पर वे न माने, चल ही दिए। बदन में थोड़ी हरारत थी ही, यह निमित्त काफी था। दो दिन के बाद उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया। ज्वर उतरता ही न था। आसार कुछ दूसरे ही नज़र आने लगे। सत्यभामा बाई घबड़ा गई। दादाजी ज़मींदार ने अपनी गाड़ी भेजकर करहाड़ से डॉक्टर को बुलवाया। चन्द्रकान्त भी आ गया। डॉक्टर ने अपने प्रयत्नों की पराकाष्ठा कर दी। पर.........

नवें दिन रात के करीब दस बजे कृष्णाजी पंत का घर करुण-क्रंदन से भर गया। मृत्यु ने अपना काम कर दिखाया। चन्द्रकान्त मूर्छित होकर अपनी माँ की गोद में गिर पड़ा और उसने फूट-फूट कर रोना शुरू कर दिया। गोदू और शान्ता चीखकर माँ के पास दौड़ीं। सत्यभामा बाई के अपार दुःख का वर्णन कैसे किया जाय?

इस दुःखद घटना के बाद सत्यभामा बाई की गृहस्ती का नया अध्याय आरम्भ हुआ।

गोदू उस समय बिल्कुल विवाह योग्य हो गई थी। उसके हाथ जल्द पीले कर देने की आवश्यकता थी। कृष्णाजी की मृत्यु के बाद चन्द्रकान्त बहुत दिनों तक अपनी माँ के पास पीपलगाँव में ही रहा। अब पढ़ने में उसका चित्त नहीं लगता था। एक तो उसके ऊपर से पिता की छाया हट गई थी, दूसरे वह यह भी सोचता था कि घर का बड़ा पुत्र होने के कारण गृहस्थी सम्हालने की ज़िम्मेदारी उसी पर है। चन्द्रकान्त की आयु उस समय केवल १८ वर्ष की थी। अभी तक शाला के बाहर की दुनिया उसने नहीं देखी थी। घर की आर्थिक स्थिति भी बिल्कुल खराब थी। सिर्फ गोदावरी के विवाह के लिए कृष्णाजी पंत ने बड़ी कठिनाई से जैसे-तैसे २०० रुपए बचाकर रखे थे। इन्हीं रुपयों में किसी भी तरह गोदावरी का विवाह निपटा दिया गया। उसका पति उस समय लक्ष्मी शुगर मिल्स में ही टाइपिस्ट था।

चन्द्रकान्त को भी अब बिना कहीं नौकरी किए चारा न था। अपने सारे उच्च ध्येय, सारी महत्वाकांक्षाएँ, सारे उच्च विचार उसे दूर कर देने पड़े। उन सब बातों का उसने बड़े कष्ट से, परन्तु निग्रह से त्याग किया—बिल्कुल अपने कवच-कुण्डल दे देने वाले उदार-मूर्ति राजा कर्ण की तरह। इस मनस्ताप के कारण उसे मैट्रिक की परीक्षा में भी अच्छी सफलता प्राप्त कर लेना रहा। पहले वर्ग में आने के लिए उसे थोड़े नम्बर कम पड़ गए।

केवल एक साल पहले कॉलेज में जाने का विचार करने वाला चन्द्रकान्त जून महीने में ही अपने नए बहनोई की सिफ़ारिश से लक्ष्मी शुगर मिल्स के आफिस में नौकर हो गया। अपने दामाद के घर के नज़दीक ही सत्यभामा बाई अपनीबारह साल की बेटी शान्ता और चन्द्रकान्त के साथ एक, दो कमरे वाले घर में रहने लगी। आगे चलकर चन्द्रकान्त का बहनोई लक्ष्मी शुगर मिल्स की नौकरी छोड़कर दूसरी नौकरी पर पूना चला गया। जब कारखाने के मालिकों ने अपने कर्मचारियों के लिये पत्थर की पक्की नई चाल बनवाई, तब चन्द्रकान्त को भी उसमें रहने के लिये दो कमरे मिल गए। वही उसका आज का घर था।

यद्यपि हीरा घूरे पर पड़ा हो, तथापि वह लोगों की आँखों को चौंधियाये बिना नहीं रहता। चन्द्रकान्त के विषय में भी यह बात चरितार्थ होने लगी। शीघ्र ही वह अपनी होशियारी के कारण अधिकारी-वर्ग में प्रिय हो गया। विद्यार्थी जीवन से ही उसे काव्य रचना का शौक था। इस शौक के साथ जब अध्ययन का मेल हुआ, तो वह अच्छा लिखने लगा। गत एक-दो वर्षों से उसकी कविताएँ अच्छी-अच्छी मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं थीं और आज तो उसे अपनी कविता पर पहला पारितोषिक प्राप्त हुआ था। सत्यभामा बाई के निस्तेज मुख पर प्रथम बार आशा की चमक आई और उनके मुँह से निकल पड़ा—"इसी तरह अपने कुल का नाम उज्ज्वल करो बेटा!

उनके ये उद्‌गार जैसे पिछली सारी स्मृतियों के सार-स्वरूप ही थे।

२

चन्द्रकान्त ने कविताओं की कापी बन्द कर दी और अपनी लेखन-सामग्री से दूसरी, एक छोटी-सी, पर सुन्दर काली जिल्द वाली नोटबुक उठाई। उसे खोलते ही पहले पृष्ठ पर सुन्दर अक्षरों में लिखे "मेरी साहित्य-साधना" शब्दों पर उसकी दृष्टि थोड़ी देर के लिये ठहर गई। लिखना एक कला है और चन्द्रकान्त का यह प्रामाणिक मत था कि कोई भी कला बिना साधना के सिद्ध नहीं होती। इसलिए जबसे उसने कविता लिखना प्रारम्भ किया था, तब से लेकर आज तक उसे जो कड़वे और मीठे अनुभव हुए, पठन-पाठन और मन के मंथन से जो विचार रत्न उसने एकत्रित किए, उसकी जो आशा-आकांक्षाएँ रहीं, और प्रगति के पथ पर उसने कितना मार्ग तय किया, इन सब बातों का नोट उसने अपनी डायरी में लिख रखा था। उसे लिखते समय वह कुछ भी नहीं छिपाता था। सब बातें ज्यों-की-त्यों बिना किसी संकोच के लिख दिया करता था। मनुष्य के हृदय के बिल्कुल भीतरी कोने में कुछ ऐसे विचार होते हैं, जिन्हें दूसरों पर प्रकट करने में उसे संकोच होता है। पर, साथ ही उनमें किसी दूसरे को सहभागी बनाने की भी एक प्रकार की आकांक्षा उसके मन में लगी रहती है। इसलिए वह अपनी डायरी को ही अपनी सहचरी मानकर उसमें अपने मन की सारी बातें लिख देता है और इससे उसे एक प्रकार का संतोष मिलता है

कम-से-कम चन्द्रकान्त की तो यही कल्पना थी।

और इस समय उसकी दृष्टि "मेरी साहित्य-साधना" शब्दों पर गई, इसलिए नहीं कि वे शब्द उसके अपरिचित थे, या उसने उन्हें वहाँ पहले लिखा हुआ नहीं देखा था, बल्कि इसलिए कि आज उसे उन शब्दों का वास्तविक अर्थ प्रतीत हो रहा था। उनकी सत्यता को उसके अन्तःकरण ने पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया था। आज उसकी दृष्टि में वे तीन शब्द साधारण नहीं थे; बल्कि वह एक महान् सत्य था—ऐसा अनुभव था, जिसका अन्त मीठा होता है।

नोट-बुक के पन्ने पलटते हुए, उसकी नज़र उनमें लिखे मज़मून पर दौड़ने लगी। किसी ऊँचे पर्वत-शिखर पर चढ़ते-चढ़ते मनुष्य बीच-बीच में थोड़ी देर ठहर कर जब मुड़कर पीछे देखता है कि वह कितना मार्ग तय कर चुका है, तब उसे जिस प्रकार का सुख होता है, उसी प्रकार का सुख उन पन्नों को उलटते समय चन्द्रकान्त को हो रहा था। एक-दो पन्ने पलटने के बाद वह रुका। काव्य-रचना के आरंभ-काल की एक याद थी—

"कल रात को मैंने एक कविता लिखी। उसकी रचना में जो निमित्त हुआ, वह प्रसंग सचमुच कितना करुणाजनक था! कल सायंकाल में घूमकर लौट रहा था तब मैंने देखा कि एक आठ-दस साल के बालक को हाथ में हथकड़ियाँ पहनाकर दो सिपाही जेल ले जा रहे थे। उसके कपोलों पर बह रहे आँसू सूख गये थे। उसका चेहरा अत्यन्त दयनीय दिख रहा था। शरीर पर एक भी वस्त्र न था उसके। सिर्फ एक पुराने गंदे कपड़े की लंगोटी-भर थी। लगता था, जैसे वह किसी गोंड या भील का लड़का हो। आठ-दस साल की उम्र—वह क्या चोरी करेगा? और मान लो, उसने कुछ चुराया भी हो, तो इस बाल्यावस्था में उसपर यह मौका क्यों आना चाहिए? यह तो उसके लिखने-पढ़ने की उम्र है। दुनिया के नीति-व्यवहार की चिन्ता न कर हँसने-खेलने के दिन हैं ये उसके। उसके ये सुख—ये अधिकार किसने छीन लिये? क्यों छीन लिए? और ऊपर से यह सज़ा? मैं बेचैन हो गया। बिस्तर पर लेटा, पर आँखों में नींद कहाँ? आख़िर जब मैंने यह कविता लिख डाली, तब मुझे कुछ हलका लगा।"

चन्द्रकान्त ने और भी कुछ पन्ने पलटाये। फिर वह एक पृष्ठ पर रुक कर पढ़ने लगा..,........

"चार-पाँच दिन पहले एक मासिक पत्रिका के सम्पादक के पास एक कविता भेजी थी। विषय था—'एक साधारण पारिवारिक दृश्य का वर्णन। माँ अपनी तीन-चार साल की लड़की को भोजन के लिये बिठाकर किसी काम के निमित्त कहीं बाहर चली जाती है। भोजन कर चुकने पर बालिका अपनी माँ की तरह जूठन उठाकर चौका लीप लेती है। जब वह यह काम करती होती है, तभी उसकी माँ आ जाती और यह सारा दृश्य वात्सल्य-भरी आँखों से देखती रहती है।' यही वर्णन उस कविता में है। कविता पूरी करने के बाद मैंने अपनी माँ को पढ़कर सुनाई। वह उसे बहुत पसंद आई। खासकर उस लड़की का वर्णन तो उसे बहुत ही अच्छा लगा। वह मुग्ध हो गई उसपर। परन्तु मजा यह कि इतनी अच्छी कविता उस पत्र के संपादक ने आज "धन्यवाद-पूर्वक वापिस कर दी। साधारण पाठकों और सम्पादकों की रुचि भिन्न-भिन्न होती है क्या ?"

चन्द्रकान्त ने आगे का पन्ना पलटा........

"कल यहाँ के गणेशोत्सव में मेरा काव्य-गायन हुआ। मैं इच्छा न होते हुए भी उत्सव के मन्त्री का आग्रह टाल न सका। मेरी कविताओं से श्रोताओं का जितना मनोरंजन होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ। वे आवाजें कसने लगे। कहने लगे, ढंगदार कविता कहिये। हृदय फड़क उठे—ऐसी कविता सुनाइए। तब मैंने साफ कह दिया—"माफ कीजिए, आप जिन्हें पसंद करते हैं, वैसी ढंगदार और हृदय फड़का देनेवाली कविताएँ मेरे पास नहीं हैं। यदि आप लोगों को मेरी ये रचनाएँ पसंद न हों, तो अपना कविता-पाठ बन्द किए देता हूँ।" और मैं एकदम मंच से नीचे उतर पड़ा।

"आज 'प्रतिभा' के अंक में मेरी कविता छपकर आई। मैं बार-बार 'प्रतिभा' का वह पृष्ठ खोलता और उसके नीचे छपे हुए अपने नाम को बड़े ध्यान से देखता था। जैसे कि मैं अपना यह संदेह दूर कर रहा था कि वह कविता और उसके नीचे छपा हुआ नाम मेरा ही है या किसी दूसरे का ? इसी मासिक पत्रिका

में पहले "यशवंत", "कुसुमाग्रज", "केशवसुत" आदि मराठी के सुप्रसिद्ध कवियों की रचनाएँ पढ़ते हुए मुझे लगता था कि क्या इस पत्रिका में मेरी भी रचनाएँ कभी स्थान पाएँगी ?"

पन्ना उलटकर चन्द्रकान्त पढ़ने लगा...

अब मेरी कविताएँ भिन्न-भिन्न मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही हैं। बीच-बीच में मेरे पास कविता-प्रेमियों और पत्र-सम्पादकों के उत्तेजना देने वाले पत्र भी आते रहते हैं, जिनसे मुझे साहस मिलता है और मेरा उत्साह बढ़ता है। फिर भी मुझे अभी बहुत उन्नति करनी है।

इसी समय......

'कविराज, ! अजी कवि महाऽऽशय'—इस पुकार से वह होश में आया। गरदन ऊपर उठाकर उसने द्वार की ओर देखा। उसके दफ्तर के दो-तीन सहकारी आए हुए थे। 'आइए, साहब !'—कहकर उसने उनका स्वागत किया और अपनी नोट-बुक बन्द करके जहाँ-की-तहाँ रख दी। उनमें से एक सहकारी एकाक्ष था। पोशाक और चाल से वह थोड़ा सभ्य और गम्भीर दिखता था। उसकी चेष्टा आराम कुरसी पर लपक कर बैठने की दिख रही थी। परन्तु उनके दूसरे साथी ने, जो सींकिया पहलवान था और कुछ लड़कपन जैसा वर्ताव करता था, बड़ी चालाकी से पहले ही हथिया ली। तब उस व्यक्ति ने, जिसका उपनाम 'दर्शने' था, अपने चेहरे पर बनावटी हास्य दर्शाकर और अपनी कानी आँख मिचकाकर खाट पर अपने दूसरे मित्र के निकट आसन जमा लिया।

'क्यों महाशय जी, आज हम लोगों की राह न देखकर ठीक तीन बजते ही अकेले घर सटक आए ? क्या पारितोषिक की चाय डुबाना चाहते थे ?' आराम कुरसी पर बैठे मित्र ने यह कहते हुए अपनी जेब से बीड़ी निकाली और हाथ से दियासलाई जलाने का अभिनय कर चन्द्रकान्त से माचिस माँगी। इस मित्र का उपनाम था-पावगी। बड़ा विचित्र व्यक्ति था वह। बीड़ी के लिए तो जैसे बिल्कुल मरा जाता था। परन्तु मज़ा यह था कि, स्वयं उसके पास बीड़ी शायद ही कभी मिलती। दफ्तर में भी किसी से बीड़ी और किसी से माचिस लेकर हज़रत अपना शौक पूरा किया करते थे। और उसके माँगने का तरीका भी

ऐसा होता था; जैसे, दूसरे से बीड़ी माँगकर पीने का उसका जन्म-सिद्ध अधिकार हो। उसके विनोदी स्वभाव के कारण यह उससे जम भी जाता था। पर, इस समय उसकी जेब से बीड़ी निकली, यह ज़रूर अचरज की बात थी।

'अजी, चाय डुबाने की क्या बात है! अभी तुम्हें ही चाय में डुबोए देता हूँ। बस होगया!—हँसते-हँसते उसकी बात का उत्तर देते हुए चन्द्रकान्त माचिस लाने के लिए भीतर चल दिया।

'अरे पावगी, चन्द्रकान्त कवि है। शब्दों के खेल में तुम उससे नहीं जीत सकते। ये लेखक लोग शब्दों की मार से ही लोगों को ठण्डा कर देते हैं।'—आराम कुरसी पर बैठने की कोशिश में पराभूत हुआ दर्शने कानी आँख मिचकाता हुआ बोला।

'पहले चाय से तो गरम करने दे उसे। फिर शब्दों से ठण्डा होने की बात सोचेंगे...'—चन्द्रकान्त के द्वारा लाई गई माचिस को हाथ में लेते हुए पावगी ने कहा।

थोड़ी देर बाद भीतर से माँ ने ख़बर दी कि चाय तैयार है। चन्द्रकान्त भीतर गया और चाय ले आया। सब लोग चाय पर बैठे। साथ में नाश्ता भी था। कुछ समय के लिये गप्पें थम गईं। पावगी ने अपनी अधजली बीड़ी को बुझाकर माचिस की डिब्बिया पर रख दी और फिर वह चाय तथा नाश्ते पर पिल पड़ा। उसके बाद शायद वही एक बीड़ी शेष रही थी; क्योंकि चाय पान के बाद इधर-उधर की बातें आरम्भ होते ही उसने पुनः वही बीड़ी जलाई और कश खींचने लगा।

फिर वह मित्र-मण्डली चन्द्रकान्त के साथ घूमने जाने के लिये बाहर निकली।

चन्द्रकान्त जिस चाल में रहता था, वह कारखाने से कलापुर जाने वाली सड़क के किनारे इसके समानान्तर बनी थी। चाल का पिछवाड़ा सड़क की तरफ था। चाल के सामने लोगों ने साग-भाजी, फूल और लताएँ आदि लगाई थीं। वे शीघ्र ही मुख्य सड़क पर आ गए। सड़क से दो फर्लाङ्ग आगे दाहिनी ओर टेकड़ी पर जाने के लिये पगडंडी मिलती थी। वहाँ से टेकड़ी क़रीब फर्लाङ्ग

अर दूर थी। सड़क के दाहिनी ओर 'लक्ष्मी नगर' था, फिर टेकड़ी तक थोड़ा-सा मैदान था। और सड़क के बायीं ओर गन्ने की हरी फसल दूर तक फैली हुई थी। चलते समय गन्ने के खेतों से आने वाली ठंडी हवा उन्हें स्पर्श करती हुई निकल गई। अक्टूबर की गरमी को शान्त करने वाली वह हवा उन्हें आल्हादकारिणी लगी।

टेकड़ी पर जाने से ऐसा लगता था जैसे कारखाने की चहल-पहल, कोलाहल और यंत्रों की घबराहट से दूर आ गए हैं। चन्द्रकान्त घूमने के लिये नित्य यहीं आया करता था—यही उसका प्रिय स्थान था। जब वह अकेले जाता, तो बहुत देर तक आसपास के दृश्य देखता था। उसके मन में अनन्त विचार उठने लगते थे। और मस्तिष्क में अनेक कल्पनाएँ चक्कर काटने लगती थीं। उसे लिखने की स्फूर्ति भी यहीं मिली थी।

आज भी वह टेकड़ी पर आया, तो बैठते-बैठते उसने चारों ओर नज़र दौड़ाई। सामने जहाँ तक दृष्टि जाती, वहाँ तक गन्ने की ऊँची-नीची फ़सल दिखाई देती थी। पूरी बढ़ी हुई फ़सल के तुर्रेनुमा फूल जब मन्द वायु के झोकों से डोलते, तो उन्हें देखकर किसी प्रचण्ड सभा में वक्ता के भाषण का बीच-बीच में अनुमोदन कर गरदन हिलाने वाले सभ्य श्रोताओं का स्मरण हो आता, और जो फ़सल अभी हरी और कम ऊँचाई की थी, वह उसी मन्द वायु के झोंके से अपनी हरी पत्तियों के अंगों को अल्हड़ता से मथ डालती, और तब सायंकाल के समय खेल के मैदान पर हँसने-खेलने वाले अल्हड़ बालकों की याद आ जाती। यह देखकर चन्द्रकान्त के मन में विचार उठा—मानवी सृष्टि की भाँति क्या वनस्पति-सृष्टि में भी प्रौढ़ों में सभ्यता और बालकों में अल्हड़ता की प्रवृत्ति होती है ?' और इस विचार के आते ही उसके चेहरे पर प्रफुल्लता की रेखाएँ उमड़ उठीं।

'आज का यह मधुर कार्य-क्रम तुम्हारी एक 'फरमास' कविता से पूरा होने दो, चन्द्रकान्त।''—बीड़ी का शौकीन पावगी उत्तम वस्तु को अपनी उत्तम 'फरमास' नामक बीड़ी का ही विशेषण देता था। उसने चन्द्रकान्त की एकाग्रता को भंग करते हुए कहा।

'अरे भाई, अपना यह 'फरमास' विशेषण अपनी पसन्द की बीड़ी के लिये रख छोड़ो, पावगी !'—दर्शने ने आँख मिचकाते हुए रिमार्क कसा।

'अच्छा भाई 'फरमास' को धता बताओ। 'भावमधुर' 'रसपूर्ण', 'मन को मोहने वाली' कहो।'—पावगी ने अपनी गलती दुरुस्त की।

'सच चन्द्रकान्त, वही कविता कहो न जिस पर 'प्रतिभा' ने तुम्हें पुरस्कार दिया है। कविता को कवि के मुख से ही सुनने दो जरा। एक बार सुनें तो ! —दर्शने ने समर्थन किया।

चन्द्रकान्त ने विशेष आगा-पीछा न किया और कविता कहना शुरू कर दिया। न उसकी आवाज मीठी थी और न उसे संगीत की विशेष जानकारी ही थी। फिर भी कविता कहने का उसका ढंग सकम्प और भावानुसारी था। अच्छे चरण को वह दो तीन बार मथकर कहता। कविता सुनते हुए पावगी हाथ नचाकर अभिनय करता जाता और जहाँ एकाध अच्छी कल्पना होती, तो एक रसिक व्यक्ति की तरह 'वाह वाह' क्या कहने, 'जीते रहो पट्ठे' आदि मुँह से कहकर कवि को दाद देता जाता था।

कविता समाप्त होने पर थोड़ी देर तक सब लोग स्तब्ध बैठे रहे। अँधेरा होने लगा था। चन्द्रकान्त ने लक्ष्मीनगर की ओर देखा। विद्युत-दीप जल गए थे। उसे भ्रम हुआ कि आकाश के नक्षत्र-समूह से स्पर्द्धा करने वाला कोई दूसरा नक्षत्र-समूह किसी ने निर्माण कर दिया है क्या ?

चलो, अब चलें ! कहकर दर्शने उठकर खड़ा होगया। दूसरों ने भी उसका अनुकरण किया।

"कुछ भी हो चन्द्रकान्त, पर, यार तुम्हारी लेखनी चूमने की इच्छा होती है।" विनोदमय वातावरण को गम्भीरता की पलटी देते हुए दर्शने कहने लगा—"सचमुच यह कितनी अपूर्व बात है कि हमारे साथ दफ्तर में कलम घसीटने वाले क्लर्कों में से एक अच्छा कवि तो निकला। कितने गौरव की बात है यह; कम-से-कम हमारी दृष्टि से तो ! नहीं तो एक हम हैं; घिस रहे हैं कलम और जी रहे हैं—जी रहे हैं शरमिन्दगी की ज़िन्दगी। न उसमें कोई

आशा है, न उत्साह है। शाम को गिरा मन लेकर घर लौटना—फिर दूसरे दिन सुबह जैसे-तैसे दो कौर पेट में ठूँसकर बदन ढकेलते हुए दफ्तर में जाना। वही-वही फाइलें पलटना—उन्हीं-उन्हीं लेजरों को काले करना। यह है हमारा जीवन! जीवन में कुछ नवीनता होनी चाहिये—ध्येय चाहिये। मनुष्य को कुछ शौक चाहिये— रुचि चाहिये।"

"अजी कहाँ का शौक और कहाँ की रुचि! मान लो, शौक भी है, रुचि भी है, फिर भी उसे पूरा करने योग्य परिस्थिति भी तो होनी चाहिये!"—पावगी कहने लगा,—"जब मैं कलापुर हाई स्कूल में पढ़ता था, तब मुझे संगीत का बड़ा शौक था और वहाँ के संगीत-शिक्षक के आग्रह से मैंने संगीत-विद्यालय में अपना नाम भी लिखा लिया था। पर, आगे शादी हुई और इस कारखाने में नौकरी लगी। बस, फिर क्या था, संगीत तो रहा दर-किनार; रोज नून-तेल लकड़ी की फिक्र में व्यस्त रहने लगा। बच्चे हुए, तो आज बेबी का सिर दर्द करता है, रामू को बुखार आ गया है। अरे जाओ, डाक्टर को लाओ—इसी फिक्र में रोज दिन जाते हैं। ऐसी हालत में बताओ, संगीत कहाँ से सूझे? परन्तु हाँ, चन्द्रकान्त के बारे में ऐसी बात न हो शायद!

"चन्द्रकान्त का साहित्य-प्रेम और साहित्य-साधना बहुत भिन्न प्रकार की है, पावगी!"—दर्शन ने कहा।

"वह तो है ही। इसके साथ ही कवि प्रेम का उपासक होता है। विवाह होने पर प्रिय सहचरी के साथ उस मधुर वातावरण में गृहस्थी और कविता दोनों पर एकदम बहार आने में कितनी देर लगेगी?"

"चन्द्रकान्त की कविता पर जब बहार आएगी, तब आएगी। परन्तु जबसे तुमने चन्द्रकान्त के घर की चाय चखी है, तबसे तुम्हारी वाणी पर जरूर खूब बहार आ गई है।"

"फूल के साथ मिट्टी भी सुगन्धित हो जाती है।"—अभी तक प्रायः मौन धारण कर श्रोता बने बैठे तीसरे मित्र ने अपने कविता-ज्ञान का परिचय दिया।

आज के इस संग से तीनों को लाभ हो रहा था।

"मैं कह रहा हूँ वह असत्य है क्या ? तुम्हें चन्द्रकान्त मणि की कथा मालूम है न ! कहते हैं वह मणि चन्द्र के प्रकाश में घुलने लगता है। चन्द्रकान्त को कोई चन्द्रमुखी तो मिल जाने दो, फिर देखना यह भी कैसे घुल जाता है। तब जँचेगी तुम्हें मेरी बात।" पावगी के इस कथन का चन्द्रकान्त के मित्रों ने शाबास पट्ठे, खूब कहा कहकर स्वागत किया ही। पर, अपनी प्रशंसा के गीत गाए जाते समय इतनी देर तक साधारण उदासीन रहने वाले चन्द्रकान्त के मुख पर भी स्मित की दो-चार हल्की रेखाएँ खिंच गईं। इस विचार के कारण उसकी देह में एक मीठी सिहरन संचरित हो उठी।

पावगी की बात बहुत देर तक उसके मस्तिष्क में घूमती रही। कौन जाने, भविष्य के गर्भ में क्या छिपा था ?

३

पूना छोड़ते समय हेमलता को बड़ी चिन्ता थी कि लक्ष्मीनगर जैसी मज़दूर बस्ती में उसका मन कैसे लगेगा ? जब उसने अपने कालेज की सहेलियों से यह बात कही कि वह लक्ष्मीनगर जाकर रहेगी, तो उन्होंने उसका उपहास किया था।

एक ने कहा था—"हेमलता, और मजदूर-नगरी में रहेगी ! यह क्यों नहीं कहतीं कि कल से सूर्य पश्चिम में उदय होगा ?"

"अरी, उसके पिताजी फैक्टरी के मैनेजर हैं वहाँ ! उनके रहने के लिए एक सुन्दर बंगला है वहाँ।"—दूसरी ने उसे टोका था।

"अकेला एक बंगला है, तो उससे क्या होता है ? वहाँ की मशीनों का शोर-गुल, कृष्ण-वर्ण और गन्दे मजदूरों की सीटियाँ और उनकी दौड़-धूप, गन्ने की गाड़ियों द्वारा सर्वत्र मची हुई गन्दगी और दुर्गन्ध,—ओफ, भगवान बचाये ऐसी जगह से ! मैं एक बार अपने बापू के साथ शक्कर का एक कारखाना देखने गई थी। वहाँ के वातावरण से मेरा तो दिमाग घूम गया था, बहिन ! ऐसा लगा कि कब वहाँ से बाहर निकल भागूँ और ऐसी जगह कोई हमेशा रहने के लिये कहे, तो अरे बापरे—इस विचार मात्र से ही मेरा तो कलेजा धड़कने लगता है। न बहिन, कम-से-कम मुझसे तो यह कभी न होगा ! और सचमुच उन मज़दूरों के साथ रहने से हमारी कवियित्रीजी के काव्य का तो नाश ही हो जायगा। वहाँ के अधिकांश निवासी अपढ़, गँवार, इञ्जन पोंछने वाले और अँगूठा-छाप होते हैं। कहने को कलापुर में एक कालेज जरूर है। पर, वह लक्ष्मीनगर से

काफी दूर है। हेम रोज उसी कालेज में जाया करेगी। कालेज में रहते समय तक ही कविता से इनका थोड़ा-बहुत सम्बन्ध बना रहे, तो बना रहे; वरना लक्ष्मीनगर में तो जो है, सो ठीक ही है। देखना रानी, लक्ष्मीनगर जाकर कहीं कवियित्री बनने के बदले मजदूरों की नेत्री न बन जाना!"

"चल हट, बहुत हो गया तेरा मजाक!" —कहकर उस समय हेमलता ने अपनी सखियों का मुँह बन्द कर दिया था।

हेमलता पूना में अपने चाचाजी के यहाँ रहकर कालेज जाया करती थी। इस वर्ष वह फर्ग्युसन कालेज में ज्यूनियर बी० ए० में पढ़ रही थी। उसके चाचा पूना में सिटी-मजिस्ट्रेट के पद पर थे। हेमलता जब आठ-दस साल की थी, तभी उसकी माँ की मृत्यु हो गई थी। उस समय उसके पिता-बाबा साहब कानपुर के एक शक्कर के कारखाने में केमिस्ट-रसायन शास्त्रज्ञ थे। उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। ऐसी हालत में उन्होंने हेम को पूना से इतनी दूर कानपुर ले जाने की अपेक्षा पूना में अपने भाई-भाऊ साहब के पास रखना ही अधिक अच्छा समझा और उसे वहीं छोड़कर वे अपनी नौकरी पर कानपुर चले गये। इधर पूना में भाऊ साहब के बच्चों के साथ रहकर हेम अपनी माँ की मृत्यु का दुःख जल्दी भूल गई और उन्हींमें रम गई। उसकी शिक्षा भी उन्हीं बच्चों के साथ होने लगी। बीच-बीच में बाबा साहब छुट्टी लेकर पूना जाते और पुत्री से मिलकर चले जाते थे। गत वर्ष बाबा साहब ने कानपुर की नौकरी भी छोड़ दी और वे लक्ष्मीनगर आ गए। इधर थोड़े दिन पहले भाऊ साहब की बदली पूना से दूर किसी तहसील में हो गई। भाऊ साहब के तबादले का समाचार सुनते ही बाबा साहब ने उन्हें पत्र लिखा कि वे हेम को लक्ष्मीनगर भेज दें। उन्होंने सोचा कि वह लक्ष्मीनगर से आठ मील दूर कलापुर के कालेज में पढ़ेगी और नीज मोटर से वहाँ आया-जाया करेगी। इस समय बाबा साहब की उम्र पचास से ऊपर होगई थी। इसलिए शायद उन्होंने यह भी सोचा हो कि उतरती उम्र में इकलौती जवान लड़की परायी होने तक अपने पास ही रहे और अपने सामने ही उसके हाथ पीले हो जाएँ। फिर विवाह के पश्चात् तो उसे पराये घर जाना ही है।

तदनुसार पहली टर्म समाप्त होने पर हेमलता आने को तो लक्ष्मीनगर आ गई, पर यहाँ के वातावरण में सचमुच उसका जैसे दम-सा घुटने लगा। पहले भी वह छुट्टियों में घूमने के निमित्त पिताजी के कारखाने का चक्कर लगा दिया करती थी। पर, दो रोज के लिए आना एक बात होती है और हमेशा के लिए आकर रहना दूसरी बात। इस समय, जब वह आई थी, तो कारखाने में शक्कर बनाने का काम आरम्भ ही हुआ था और कारखाना रात-दिन चलता था। इसलिए सदा उसके आपसास बड़ी चहल-पहल मची रहती थी। अनेक प्रकार की आवाज़ें लगातार कान से टकराती रहती थीं। गन्ना उतारकर जल्दी-जल्दी लौटनेवाली खाली बैलगाड़ियों के पहियों और बैलों के गले में बँधी घण्टियों की आवाजें, बैलों को ऊँची आवाज से दी जाने वाली गाड़ीवानों की आज्ञाएँ, काम से छुट्टी पाकर घर जाने वाले मजदूरों की बातें, मशीन में गन्ने डालने वाले मजदूरों की चिल्लाहट, मशीनों की घड़घड़ाहट, और हर आठ घण्टे में मजदूरों की पाली बदलने की सूचना देने वाले कर्ण-कर्कश भोंपू—यह सब कोलाहल देख-सुनकर हेमलता का सिर पक जाता और उसे लगता कि कहीं यह शान्तिदेवी द्वारा शापित स्थान तो नहीं है, जो यहाँ हमेशा इस तरह बाजार-सा ही लगा रहता है? इस तरह के वातावरण में मेरा मन कैसे रमेगा? पढ़ाई की ओर ध्यान कैसे दे सकूँगी? और मुझे हाल ही में कविता लिखने का जो नया शौक लगा है, उसका संवर्धन कैसे होगा? --

बाबा साहब का बंगला बहुत बड़ा और अप-टु-डेट फरनीचर से सुसज्जित था। बड़े बैठकख़ाने के सामने ही दरवाज़े से बरामदा लगा हुआ था, जिसके आगे कमर तक ऊँची ईंटों की दीवाल खड़ी थी। उद्‌देश्य यह था कि वहाँ सायंकाल के समय बेंत की कुरसियाँ डालकर बैठिए, गप्पें लगाइए, कुछ पढ़िए या बैठकख़ाने में चालू किए हुए रेडियो का संगीत सुनिए। इस तरह खुली जगह का आनन्द लीजिए कि सड़क पर चलने वाले आपको न देख सकें। बँगले के सामने फूलों का एक छोटा-सा बग़ीचा था, जिसमें देशी और विदेशी फूलों के पौधे और लताएँ शोभा दे रही थीं।

इतने बड़े बँगले में रहने वाले सिर्फ तीन व्यक्ति थे—हेमलता, बाबा

साहब और मौसीजी । मौसीजी की उम्र क़रीब ४० वर्ष की थी। वे विधवा थीं । हेमलता को सिर्फ़ यही मालूम था कि मौसीजी उसकी कोई दूर की रिश्तेदार है। हेम की माँ के बाद मौसीजी स्वयं बाबा साहब के पास आईं या बाबा साहब ने ही उन्हें कहींसे अपने पास बुला लिया, इसका हेमलता को कोई पता न था। घर के सब कामों की देख-भाल मौसीजी ही किया करती थीं।

हेमलता के आते ही बाबा साहब ने उसके लिये बँगले के दो कमरे खाली कर दिए। एक कमरे में कुरसी, मेज़, अलमारी आदि रखकर उसने अपने पढ़ने का प्रबन्ध कर लिया और दूसरे में पलंग, टेबल, मिरर, शृंगार-सामग्री आदि चीजें रख लीं।

उसे अपनी यह सारी व्यवस्था बहुत पसंद आई क्योंकि वह बिल्कुल उसके मन के अनुसार हुई थी। परंतु उसकी यह चिन्ता कि मेरा मन यहाँ कैसे लगेगा, अभी ज्यों की त्यों बनी थी।

घर में उसका कोई हमजोली न था। मौसीजी से उसे पता चला था कि बस्ती में भी उसकी बराबरी की कोई लड़कियाँ न थीं। इसलिए सखियों के साथ खेलने, बातें करने और हँसी-मजाक में जो आनन्द होता है, उसके भी वहाँ कोई आसार नजर नहीं आते थे।

शक्कर बनाने का काम कारख़ाने में हाल ही में शुरू हुआ था। इसलिए बाबा साहब भी बँगले पर बहुत कम रहा करते थे। सुबह-शाम और रात-बिरात उन्हें कारख़ाने में बार-बार चक्कर लगाने पड़ते थे। और यदि वे घर में हों, तो भी उनसे बातें करने, या कुछ पूछ-ताँछ करने के लिए कारख़ाने के कर्मचारियों का जैसे ताँता-सा लगा रहता था। इसलिए कई बार ऐसा मौका आता था कि वह बाबा साहब से खुलकर बातें कर रही है-बातों पर रंग चढ़ रहा है और इसी समय बँगले की सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ पहुँचता,—'साहब हैं क्या?' कहता हुआ कारखाने का कोई नौकर या—'कहिए बाबा साहब क्या हो रहा है?' कहते हुए कारकाने के चीफ इंजीनियर जोशी साहब आ धमकते और फिर पिता-पुत्री के रंग में भंग हो जाता था।

मौसी से बातें करे, तो उन दोनों के बीच इतनी घनिष्ठता हो सकेगी-यह बात असंभव सी दिखती थी।

आखिर हेम ने तय किया कि जब तक छुट्टियाँ हैं, तब तक मैं अपना समय उपन्यास पढ़ने और रेडियो सुनने में व्यतीत करूँगी; और जब कलापुर-कॉलेज में भरती हो जाऊँगी, तब की बात आगे सोचूँगी। यह सोचकर वह चुप रही।

और उस दिन वह अपने नित्य के कार्य-क्रम के अनुसार रेडियो के सामने बैठी संगीत का कोई प्रोग्राम सुन रही थीं। शाम के क़रीब छः बजे थे। बाबा साहब कारख़ाने गए हुए थे।

उसे कुछ भ्रम-सा हुआ, कि जैसे द्वार की घंटी बजी। पर, रेडियो के संगीत में वह आवाज़ स्पष्ट सुनाई नहीं दी। जब उसने ज़रा ध्यान से सुना, तो उस आवाज़ को पहचान गई। द्वार पर लगी घंटी की ही आवाज़ थी वह। हेम झट कुरसी पर से उठी और यह सोचकर कि पिताजी कारख़ाने से लौट आए हैं, वह दौड़ती हुई द्वार की ओर गई और किवाड़ खोली, तो......

पिताजी के बदले एक स्मित मुख तरुण को देखते ही वह क्षण भर घबड़ा-सी गई। वह उससे पूछना ही चाहती थी कि आप क्या चाहते हैं? इतने में तरुण ने ही उससे प्रश्न किया—

'बाबा साहब हैं क्या?'

'जी नहीं, कारखाने गए हैं।'—तरुण की ओर चोरी से दृष्टिपात कर, बाहर बाग़ की ओर निहारते हुए उसने उत्तर दिया।

'लौटने में अभी कितना समय लगेगा?'—उसके गौर वर्ण मुखमण्ल पर-विशेषतः उसकी भौरें जैसी काली और बड़ी-बड़ी आँखों पर अपनी सौन्दर्य-समीक्षक दृष्टि को स्थिर करते हुए तरुण ने पूछा।

इस आकस्मित भेंट से तरुण मुग्ध हो गया। उसके मन में एक कल्पना चमक उठी,...इसी तरह के किसी मुखचन्द्र को देखकर ही तो किसी कवि को यह लिखने की स्फूर्ति हुई होगी कि चन्द्र कौन सा है, आकाश का या इस तरुणी का मुख!

"कब आएँगे यह तो नहीं कह गए हैं; पर..." इस उत्तर से तरुण की तंद्रा भंग हुई।

"ठीक है। मैं कल सुबह फिर जाऊँगा..." मस्तक पर हवा से उड़ रही लटों को सम्हालने वाली उसकी गोरी, लंबी, पतली और नुकीली अँगुलियों पर दृष्टि दौड़ाता हुआ बोला।

"पिताजी पूछेंगे कि कौन आए थे, तो क्या कहूँगी?"

"कह दीजिएगा, चन्द्रकान्त शहाणे आया था। समाज-शिक्षा-केन्द्र की वर्षगाँठ के निमित्त कार्य-क्रम निश्चित करना था। अच्छा, नमस्ते!" कहकर तरुण जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता हुआ चला गया। हेमलता कुछ क्षण उसके पृष्ठ भाग को देखती रही। उसकी चाल की मस्ती, शरीर पर शुभ्र नेहरू-शर्ट पैर में कोल्हापुरी चप्पलें और सादगी से पहनी हुई साफ धोती। उसकी आँखें कितनी पानीदार थीं। मोड़ के पास मुड़ने से पहले तरुण ने सहज भाव से पीछे देखा तो अनजाने ही हेमलता की दृष्टि उससे टकरा गई। वह अपनी दृष्टि दूसरी ओर घुमाकर बुदबुदायी–'ये ही चन्द्रकान्त शहाणे हैं?'

फाटक से भीतर आ रही घर की नौकरानी पार्वती को लगा कि वह मुझसे ही कुछ कह रही है। इसलिए उसने हेमलता से पूछा—

"मुझसे कुछ कहा क्या, मालिकिन?'

हेमलता नकारदर्शक गरदन हिलाती हुई भीतर चली गई।

भीतर जाकर वह रेडियो के सामने वाले कुरसी पर बैठ गई। परन्तु उसका मन रेडियो के कार्य-क्रम में न था उसकी आँखों में तो जैसे उसी तरुण की शानदार मूर्ति चक्कर काट रही थी।

वह अपनी मनोभूमि पर पाँच मिनट पहले घटे हुए प्रसंग की पुनरावृत्ति कर रही थी।

उस तरुण ने अपना नाम 'चन्द्रकान्त शहाणे' बतलाया था। इस नाम के कारण उसके मन में विलक्षण हलचल मच गई। प्रसिद्ध कवि 'चन्द्रकान्त शहाणे' क्या यही महाशय हैं, जिनकी कविताएँ मैं मासिक पत्रिकाओं में बड़ी रुचि से पढ़ती हूँ? एक-दो तो मैंने अपनी नोट-बुक में भी उतार ली है।

पूना के कॉलेज में मराठी के प्राध्यापक कक्षा में पढ़ाते समय जिनकी कविताओं का गौरवपूर्ण ढंग से उल्लेख किया करते थे,वे यही हैं क्या ?

वे यहीं हों, तो —

उसके हृदय-सागर में हर्ष की लहर उमड़ उठी ।

परन्तु शीघ्र ही दूसरे मन ने शंका उपस्थित की—

ये 'चन्द्रकान्त शहाणे, भले ही हों, किन्तु यह निश्चयपूर्वक कैसे कह सकते हैं कि जो 'चन्द्रकान्त शहाणे' कवि हैं, वही ये हैं ? क्या एक ही नाम के दो व्यक्ति नहीं होते ? शीघ्र ही उसे मैट्रिक के परीक्षा-फल के नामों का स्मरण आया । जिस वर्ष वह मैट्रिक पास हुई थी, उसी वर्ष की बात है । करमरकर उपनाम वाले दो विद्यार्थियों के एक ही से नाम थे । इसलिए परीक्षा-फल में उनके नाम के सामने स्कूलों के नाम भी दिए गए थे ।

साथ ही उसके मन में एक शंका और पैदा हुई । उसने सोचा, इतना प्रतिभाशाली कवि कारखाने में क्यों जायगा नौकरी करने ? और यहाँ की मशीनों का रात-दिन चलने वाला यह बेसुरा संगीत सतत कान में टकराते रहने पर उसकी प्रतिभा से सुन्दर और मधुर काव्य स्फूर्ति भी हो सकते हैं क्या ?

उसे स्वयं अपना ही उदाहरण याद आया । नवोदित ही क्यों न सही; मैं भी कवियित्री हूँ । परन्तु जब से यहाँ आई हूँ, तब से यहाँ की अशान्ति के कारण मेरे मन सेकाव्य और काव्य-सम्बन्धी विचार जाने कहाँ विलीन हो गए हैं ! फिर......

पुनः उस युवक की मूर्ति उसके मनःचक्षु के सामने आई । उसकी चमकदार आँखों का उसे स्मरण हुआ । साथ ही उसके पहले मन ने कहा—

'होंगे, कवि 'चन्द्रकान्त शहाणे यही' यही हो सकते हैं !'

इस तरह के उलटे-पुलटे विचारों से वह बिल्कुल बेचैन हो गई । अन्त में उसके मन में एक कल्पना उठी । उसने देखा था कि फाटक के बाहर उस युवक से पार्वती की भेंट हुई थी और दोनों एक दूसरे की ओर देखकर मुस्कराए थे । इसलिए पार्वती उस युवक के बारे में ज़रूर बहुत कुछ बातें जानती होगी । पार्वती से ही पूछूँ—यही वह कल्पना थी । परन्तु फिर एक विचार उठा कि ऐसा

करने से पार्वती यूँही शक करने लगी, तो ? ना, इसमें शक करने की क्या बात है। हमारे घर आए, तो हमें उसके बारे में जानकारी प्राप्त नहीं करनी चाहिए क्या ?

यदि पार्वती ने कुछ ऐसी-वैसी बात कही, तो उससे मैं यही कह दूँगी। इस तरह निश्चय कर उसने पार्वती को पुकारा। परन्तु पार्वती के आते ही सब कुछ निश्चय कर लेने पर भी उसका मन कुछ सकुचाया।

'अभी अपने घर कौन आए थे री ? उनका नाम-धाम जानती है तू ?'—थोड़ी झिझक के बाद गंभीर चेहरे से हेमलता ने पार्वती से प्रश्न किया।

'अजी, वे चन्द्रकान्त शहाणे थे। आप नहीं जानती उन्हें ? वे अपने की कारखाने में बाबू हैं। बड़े अच्छे आदमी हैं, बीबी जी !'

'तो तू उनके बारे में बहुत कुछ जानकारी रखती है ?'

'बीबी जी, वे तो हमारे ही गाँव के हैं। फिर मैं उनके बारे में कैसे नहीं जानूँगी ? उन्हीं की सिफारिश से तो हम लोग इस कारखाने में नौकर हुए हैं और उन्हीं के कहने से मालिक ने मुझे अपने घर काम पर रखा है। उनकी माँ भी बड़े अच्छे स्वभाव की है बिल्कुल दूध की तरह निर्मल। दोनों हमें बहुत चाहते हैं।'

'हमारे घर हर महीने जो किताबें आती हैं, वे उनमें अपने लेख छपाते हैं क्या ?'—हेम ने सोचा, यदि यह पूँछती हूँ कि वे कवि हैं क्या; तो कदाचित् पार्वती इसे न समझ पाएगी। इसलिए उसने उससे इस तरह का प्रश्न किया।

'हाँ-हाँ ! यह कहने को तो भूल ही गई। वे जो लिखते हैं, वह हर महीने किताब में छपकर आता है। उनके घर कभी भी जाओ, वे हमेशा हाथ में क़लम और सामने कागज़ रखे बैठे मिलते हैं; तथा कुछ-न-कुछ लिखते रहते हैं। बीबीजी, मैं तो कुछ समझती नहीं हूँ; पर, जब उनका कुछ छपकर आता है, तो उनकी माँ मुझे दिखाती है। उन्हें हम सब लोग दादा कहते हैं ! वे बड़े दयालु हैं। उन्होंने मजदूरों को लिखना, पढ़ना सिखाने के लिए एक रात की पाठशाला खोल रखी है। अभी वे क्यों आए थे यहाँ ?'

'अरी, मैं क्या जानूँ, क्यों आए थे ! वे आए थे पिताजी के पास। जब

मैंने कह दिया कि पिताजी नहीं हैं, तो यह कहकर कि 'कल आऊँगा, वे चले गए। यदि पिताजी पूछ बैठें कि कौन आए थे, तो मुझे भी तो आने वाले के बारे में कुछ मालूम होना चाहिए न? जिससे मैं उनको ठीक से खबर दे सकूँ। इसलिए मैंने तुझसे पूछ लिया।'

इस प्रकार हेमलता ने अपने चातुर्य से चन्द्रकान्त के विषय में बहुत-कुछ जानकारी प्राप्तकर ली। फिर तो रात को बिस्तर में जाते समय तक उसे रह-रहकर अपनी आँखों के सामने चन्द्रकान्त के सिवा—अपनी नोट-बुक में उतारी हुई उसकी दो कविताओं के सिवा और कुछ नहीं दिखाई देता था।

४

सूर्य-विकासी कमल के भीतर रात-भर बन्द रहने वाले भ्रमर की उत्कंठा से चन्द्रकान्त दूसरे दिन के अरुणोदय को प्रतीक्षा कर रहा था—कब सुबह हो, और कब मैं बाबा साहब के बँगले पर पहुँचूँ। पर वास्तव में समाज शिक्षा-केन्द्र के जन्मोत्सव का कार्य-क्रम निश्चित करने के लिये बाबा साहब के बँगले पर गया था। पर वहाँ उसे बाबा साहब तो न मिले; मिली अचानक एक सुन्दर अपरिचित तरुणी, जिसके कारण थोड़ी देर के लिए वह यह भी भूल गया, कि वहाँ किस काम से आया है। नज़रों के सामने रह-रह कर उस तरुणी का मुख-चन्द्र ही उसे दिखने लगा। चन्द्रकान्त कवि था और सौन्दर्य के दर्शन से जिसकी वृत्तियाँ न उमड़ उठें वह कवि ही कैसा?

बाबा साहब के बँगले पर जिस तरुणी से उसकी भेंट हुई थी, वह कौन है—इसका उसे कोई पता न था। वह उनके बँगले पर सिर्फ किसी काम के निमित्त ही कभी-कभी जाया करता था। इससे पहले वह जब-जब वहाँ गया था, तब तब उसे वह तरुणी वहाँ नहीं दिखी थी। उसे इतना पता ज़रूर था कि बाबा साहब की एक लड़की है और वह पूना के किसी कॉलेज में पढ़ती है। एक तो इस बात से, और दूसरे उसके नाक-नक्शे से, जो बाबा साहब से बहुत-कुछ मिलता-जुलता था—खासकर सुडौल नासिका से, उसने यदि तर्क कर लिया कि पूना में पढ़ने वाली उनकी लड़की शायद यही है, तो यह कोई अचरज की बात न थी।

परन्तु केवल तर्क और अनुमान से ही मनुष्य को सन्तोष हो जाया करता,

तो फिर उसे और क्या चाहिए था ? किन्तु ऐसा कहाँ होता है ? सत्य जानने के लिए वह प्रमाण खोजने की कोशिश करता है। चन्द्रकान्त के मन की भी यही हालत हो गई थी। यह प्रमाण खोजने के प्रयत्न में व्यस्त हो गया था। परन्तु जब तक दूसरा दिन उदय न हो जाय, तब तक उसके प्रयत्नों की सफलता के कोई चिन्ह नहीं दिखाई देते थे। वह करीब-करीब ना उम्मीद-सा हो रहा था कि उसे इस कहावत की सत्यता प्रतीत हो गई कि यदि इच्छा है, तो सफलता भी अवश्य है।

रात को भोजन के बाद वह पाठशाला जाते समय रास्ते में शंकर के घर गया। उसका घर रास्ते पर ही पड़ता था। इसलिए हमेशा आते-जाते वह उसके घर में झाँक लेता था और अगर उस दिन शंकर की पढ़ाई की बारी होती, तो उसे भी अपने साथ पाठशाला ले जाता था।

मन में एक विशेष रहस्य छिपाए ही वह आज शंकर के घर आया था। शंकर की घरवाली पार्वती, बाबा साहब के घर की नौकरानी थी। इसलिए उसने सोचा था कि मैं बातचीत के सिलसिले में, पार्वती से जो जानना चाहता हूँ, वह रहस्य विदित कर लूँगा।

दो पहर के बारह बजे से लेकर रात के आठ बजे तक अपनी दिन-पाली पूरी कर, शंकर अभी-अभी घर लौटा था और एक जीर्ण कम्बल बिछाकर उसपर लेट गया था। उसने जब चन्द्रकान्त को अपने द्वार पर देखा, तो वह "आइए दादा!" कहते हुए उठकर बैठ गया। फिर कम्बल को ठीक तरह बिछाकर उसने उसपर चन्द्रकान्त के बैठने के लिए जगह बना दी। चन्द्रकान्त दीवाल से—यानी टीन की चद्दर से—टिककर बैठ गया। मज़दूरों की चाल की दावालें, छत, दरवाजे सभी टीन की चद्दरों के बने थे। शंकर की सारी गृहस्थी टीन के चद्दरों के बने एक छोटे-से कमरे में सजी थी। सौभाग्य से कहिए, या दुर्भाग्य से, उस कमरे में सामान भी अधिक न था। दीवाल के एक कोने में सामान से भरी एक लकड़ी की संदूक जमी थी। उसपर बिछौने और दीगर कपड़े तह करके रखे हुए थे। पास ही तवा और रसोई के एक-दो पीतल के बर्तन पड़े थे। दूसरे कोने में मिट्टी के घड़े एक के ऊपर एक रखे थे, जिनमें शायद अनाज

भरा था। नजदीक ही चूल्हा जल रहा था। उसमें लकड़ियाँ तो नहीं थीं, गन्ने की सूखी छोई ईंधन का काम दे रही थी। चूल्हे पर एक अल्यूमीनियम के बरतन में पानी उबल रहा था। चन्द्रकान्त ने तर्क किया कि चूल्हे पर पानी रखकर पार्वती हाल ही में कहीं बाहर चली गई है।

"क्यों शंकर, बड़ी जल्दी सो गए? और पारू भाभी नहीं दिख रही है?"

"दादा, जब भी काम से लौटता हूँ, तो यही हालत हो जाती है मेरी! दो साल पहले पौ फटने से लेकर साँझ तक खेतों में काम करता, या चरखा चलाता था, पर, कभी इतना नहीं थकता था, जितना कि कारखाने के आठ घंटे के काम में थक जाता हूँ। यदि किसीसे यह बात कहूँ, तो वह इस पर विश्वास भी न करेगा। पर, सच कहता हूँ, दादा, इतना परिश्रम करने पर भी खेतों में थकावट नहीं मालूम होती थी। हरियाली देखते हुए बैलों के संग वक्त चुटकी बजाते निकल जाता था। उस काम की मेहनत से शरीर पर रौनक रहती थी। यहाँ तो मशीन के आगे आठ-आठ घण्टे खड़े रहो, मशीन में गन्ने डालते जाओ और हर घण्टे, आध घण्टे में उसे तेल पिलाते जाओ। भला यह भी कोई काम-में-काम है।

चन्द्रकान्त ने उसके शरीर की ओर देखा। सचमुच दो साल के भीतर ही उसके शरीर में महान् परिवर्तन हो गया था। जब आया था, तब उसके केश कितने मुलायम और अच्छे दिखते थे। बदन में स्वच्छ खादी का कुर्ता था। परन्तु अब जटाओं की तरह बढ़े हुए कड़े बाल, नीली कमीज और हाफपैण्ट— यह वेश था उसका। पहले उसके चेहरे पर जो ताजगी और चमक नजर आती थी, वह अब गायब हो गई थी और उसकी जगह उदासी आकर बैठ गई थी। उसके पहले के मजबूत स्नायु-बद्ध और भरे हुए हाथों पर अब नीली-नीली नसें उभर आई थीं।

चन्द्रकान्त कुछ कहना ही चाहता था कि द्वार पर पैरों की आहट हुई। पार्वती ही आ रही थी। उसके हाथ में किसी चीज़ की एक छोटी-सी पुड़िया थी।

"क्यों लाला, आज फुरसत मिली तुम्हें गरीब के घर आने की?"— इस प्रकार कुछ चन्द्रकान्त से, कुछ अपने पति से और कुछ अपने आप से वह

बोली—"लाला की पहचान अब बँगले वालों से हो गई है। फिर वे हम गरीबों की झोपड़ी में क्यों आने चले ?"

समाज-शिक्षा यानी साक्षरता-प्रचार के काम के कारण चन्द्रकान्त को शंकर के घर आने का दो-तीन दिन से अवकाश नहीं मिला था। इसी गैरहाजिरी का सम्बन्ध पार्वती ने इस तरह जोड़ा था।

यह बात चन्द्रकान्त के ध्यान में आए बगैर न रही। परन्तु पार्वती की बात शंकर की समझ में जरा भी न आई। इसलिए उसने पूछा—

"तू क्या बक रही है ? मैं तो कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ। बँगले में कौन लोग हैं ?"

पार्वती चुटकी से चूल्हे पर चढ़े बरतन में शक्कर छोड़ती हुई बोली—

"अजी, वह बाबा साहब की लड़की आ गई है। हेमलता बीबी! अभी तक वह पूना में पढ़ रही थी। अब यहीं रहने वाली है और कहते हैं, कलापुर के कॉलेज में पढ़ेगी। रोज यहीं से अपनी मोटर से जाया करेगी।

"हाँ, तो फिर ?"—मानो शंकर कहना चाहता था कि इस समाचार से चन्द्रकान्त का क्या सम्बन्ध है ?

"जब आज शाम को मैं काम के लिए बाबा साहब के बँगले पर गई, तब मैंने लाला को बँगले से बाहर निकलते हुए देखा। इसीलिए मैंने कहा कि जब लाला ऐसे लोगों के साथ रहने लगे, तो फिर हम गरीबों की सुध कहाँ से आएगी उन्हें ?"

"देखा शंकर, भाभी ने कहाँ की बात कहाँ ले जाकर भिड़ाई ? मैं बाबा साहब के बँगले पर गया जरूर था; परन्तु अपने काम से। मुझे अपनी पाठशाला की वर्ष-गाँठ मनाने के बारे में बाबा साहब से सलाह लेनी थी। तुम तो जानते ही हो शंकर, कि बिना काम के बड़े आदमियों के घर चक्कर काटना मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं है। मेरा विचार है कि इस साल वर्ष-गाँठ का जलसा बड़ी धूमधाम से मनाया जाय! सुना है, उसी समय के साथी प्रकाश कलापुर आ रहे हैं। मैंने सोचा है कि अगर जम जाय, तो अपने उत्सव का उद्घाटन

उन्हीं के हाथों करा लें। इससे एक बड़ा लाभ यह होगा कि हमारे काम में भी बड़ी ताकत आ जायगी।"

चन्द्रकान्त का शंकर से इतनी आत्मीयता से बातें करने का कारण यह तो था ही कि शंकर उसका मित्र था; पर, दूसरा कारण यह भी था कि चन्द्रकान्त ने जिस समय मजदूरों में साक्षरता-प्रचार के लिए कक्षा खोली थी, उस समय शंकर ही उसका पहला विद्यार्थी था। उसे पढ़ाना शुरू करने पर धीरे-धीरे एक के बाद एक, मजदूरों की संख्या बढ़ने लगी थी और अन्त में कक्षा; पाठशाला में रूपान्तर हो गया था।

पार्वती के हँसोड़, शरारती और चतुर स्वभाव से चन्द्रकान्त परिचित था। शंकर तो उसका बचपन से ही दोस्त था। क्योंकि पीपलगाँव में चन्द्रकान्त के मकान के नजदीक ही एक झोपड़ीनुमा छोटे-से घर में शंकर का पिता रहता था। परन्तु पार्वती का विशेष परिचय उसे यहाँ आने के बाद ही हुआ था। फिर भी अपने बातूनी स्वभाव के कारण शंकर की अपेक्षा वही उससे हमेशा अधिक बातें किया करती थी। चन्द्रकान्त पार्वती को भी अपनी दो बहनों गोदावरी और शान्ता की तरह मानता था और अब उन दोनों के ससुराल चले जाने से ही शायद भगिनी-प्रेम का प्यासा चन्द्रकान्त का हृदय पार्वती पर ही उस स्नेह की वर्षा कर रहा था। पिछली दिवाली में भैया दूज के दिन उसने पार्वती को अपनी बहिन के नाते पाँच रुपये का प्रेमोपहार भी दिया था। जिस गरीबी से इस वक्त यह परिवार गुजर रहा था, उसके कारण चन्द्रकान्त के हृदय में उनके प्रति सहानुभूति थी और यह भी एक कारण था, जिससे वह इस परिवार से इतनी आत्मीयता रखता था।

यदि इस पार्श्व भूमि में चन्द्रकान्त को पार्वती के मजाक से खुशी हुई, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। खासकर उस मजाक का ताल्लुक उसके इच्छित विषय के साथ होने से तो उसे और भी अधिक खुशी हुई।

"देखो भई, अब गरीब के घर की चाय भी अच्छी लगती है क्या?"—चन्द्रकान्त के सामने टूटे हुए हेंडिल वाली प्याली और तश्तरी रखते तथा उसमें चाय देते हुए पार्वती ने कहा।

मजाक की भी एक हद हुआ करती है। इस समय पार्वती ने जो बात कही उसे सुनकर जिस करुण मुद्रा से चन्द्रकान्त ने उसकी ओर देखा, वह जैसे स्वयं ही उसके मन के भाव प्रकट कर रही थी। यह बात शायद शंकर के ध्यान में आ गई; इसीलिए वह बोला—

"यह कैसा वाहियात मजाक कर रही है दादा से! क्या तू उनके स्वभाव को नहीं जानती? अरी, वह भी तो हमी लोगों में से हैं और मैं कहता हूँ कि मान लो बँगले की हेमलता बीबी से उनकी पहचान हो भी गई, तो इसमें नुकसान क्या है? हाँ, तुझे जरूर डर लग रहा है। तू शायद सोचती है कि अब दीवाली में भैया-दूज के उपहार में मेरा एक और हिस्सेदार आ गया है। क्यों यही बात है न?"

"अजी, उस पहचान से और भैया-दूज से क्या सम्बन्ध?—" इतना कह कर पार्वती ने चन्द्रकान्त की ओर इस भाव से देखा, जैसे वह जानना चाहती हो कि यदि मैं अभी और मजाक करूँ, तो उसे वह कहाँ तक पसन्द करेगा।

चन्द्रकान्त ने कहा—"रुक क्यों गई? कहो न भाभी। तुम मजाक करो और वह मुझे अच्छा न लगे—ऐसा कभी हुआ है क्या? बल्कि जब तुम मजाक करती हो, तो मुझे ऐसा लगता है, जैसे मैं अपनी गोदावरी और शान्ता से ही बातें कर रहा हूँ। अभी तुमने मजाक में गरीब और अमीर की बात निकाल दी थी, इसीलिये मुझे थोड़ा बुरा लगा था। बस, और कोई बात न थी।"

"अच्छा, तो फिर और चाय लो। तुम्हारी प्याली में कम थी।" पार्वती ने चन्द्रकान्त की प्याली में चाय देते हुए कहा। वह जानती थी कि चाय के लिए चन्द्रकान्त कितना पागल रहता है। किसी भी समय उसे चाय दो, वह कभी इन्कार न करेगा।

इसके बाद चन्द्रकान्त पाठशाला चल दिया।

जिस उद्देश्य से वह शंकर के घर आया था, वह उद्देश्य सिद्ध हो गया था। उसके बिना पूछे ही, उसे हेमलता की पूरी जानकारी प्राप्त हो गई थी।

जब उसे यह पता चला कि अपने तर्क के अनुसार हेमलता बाबा साहब की ही लड़की है और वह अब यहीं रहेगी तथा कलापुर के कालेज में पढ़ने जाया

करेगी, तो उसके चेहरे से ऐसा दिख रहा था, जैसे उसके हर्ष की सीमा न रही हो।

वह स्वभाव से कैसी होगी? जब हम दोनों का परिचय हो जायगा, तो उसे बढ़ाने की उसे इच्छा होगी क्या? क्या वह जानती है कि मैं कवि हूँ? यदि न जानती हो और अब जान जाय, तो उसे कैसा लगेगा? वह कालेज कुमारी है, इसमें सन्देह नहीं, पर, कालेज जाने वाली सभी लड़कियाँ काव्य की शौकीन होती ही हैं, यह बात तो नहीं है। पोशाक, पाउडर, साज-सज्जा यही बातें बहुत-सी लड़कियाँ पसन्द करती हैं। यही उनकी रुचि होती है। यदि यही रुचि हेमलता की भी हुई, तो......

इस विचार ने उसके मन को व्यर्थ ही अस्वस्थ्य कर दिया। उसके मन में यह विचार भी चमक उठा कि यदि हमें कोई ऐसा शास्त्र अवगत होता, जिससे मनुष्य को एक बार देख लेने से ही हम उसकी रुचि, अरुचि और स्वभाव की अचूक परख कर सकते, तो कितना अच्छा था। उसने पहले कहीं पढ़ा था कि मनुष्य की मुद्रा और बातों से, उसके स्वभाव-सम्बन्धी कुछ सिद्धान्त निश्चित किये गए हैं। शायद उस शास्त्र में और भी अधिक प्रगति होती गई हो, तो...

\+ + +

दूसरे दिन सुबह चन्द्रकान्त बाबा साहब के बँगले पर गया। बैठकखाने में एक गोल मेज़ के आसपास एक कुरसी पर बाबा साहब और दूसरी पर हेमलता बैठी हुई थी। बाबा साहब की पोशाक से लग रहा था कि वे कारखाने जाने के लिए तैयार बैठे हैं। चन्द्रकान्त को देखते ही उन्होंने "आइए" कहकर उसका स्वागत किया और फिर कहा —

"हेम ने मुझे बतलाया था कि आप कल आए थे। उसने आपका यह सन्देश भी सुनाया था कि आज आप सुबह फिर आ रहे हैं। अच्छा हुआ जो आप आगये; वरना, फिर हमसे मुलाकात न हो पाती।"

चन्द्रकान्त भीतर आकर कुरसी पर बैठा ही था कि हेमलता ने अपनी कुरसी से उठने का अभिनय किया! नहीं कह सकते कि वह सचमुच ही वहाँ सेचली

जाना चाहती थी, या इस प्रतीक्षा में थी कि बाबा साहब उससे बैठने के लिए कहें, और वह बैठी रहे। बाबा साहबने उसकी हरकत देखी तो कहा—"बैठो हेम, इनका कोई प्राइवेट काम नहीं है और हाँ, तुमसे इनका परिचय करा देना चाहिये। इससे तुम खुश होगी।"

अधरों पर मन्द मुस्कराहट बिखेरती हुई हेमलता कुरसी में अब बड़े इत-मीनान के साथ बैठ गई। सहज भाव से उसने चन्द्रकान्त की ओर देखा। आज भी वह कल की तरह ही पोशाक पहने हुये था। परन्तु लग रहा था कि उसे पहनने में आज उसने अधिक सावधानी से काम लिया है। सुबह नहाकर ही वह आया था। इसीलिए उसके चेहरे की रौनक में अपूर्व ताजगी आ गई थी। बिना कंघी किये, केशों की एक-दो लटें बीच-बीच में उसके मस्तक पर खेलने आ जाती थीं।

"यह है मेरी लड़की हेमा-हेमलता। अभी तक यह पूना के फर्ग्युसन कालेज में पढ़ती थी। इस साल ज्यूनियर बी० ए० में है। अब यहीं रहेगी और कल्याणपुर कालेज में जाया करेगी। बी० ए० में इसने मराठी भाषा ली है।"

हेमलता के सम्बन्ध में चन्द्रकान्त ने पार्वती से पहले ही बहुत-सी जानकारी प्राप्त कर ली थी। फिर भी इस अन्दाज से, जैसे कि ये सब बातें उसे पहले-पहल ही मालूम हो रही हैं, वह "हाँ", "अच्छा!" ऐसा? कहता हुआ बड़े ध्यान से बाबा साहब की बातें सुन रहा था।

"और ये हैं चन्द्रकान्त! हमारे ही ऑफिस में क्लर्क हैं। बहुत स्मार्ट हैं और मराठी के बड़े अच्छे कवि भी हैं। आपकी कविताएँ मराठी मासिक पत्रों में निकलती रहती हैं। तुमने तो पढ़ी ही होंगी? मजदूरों को लिखना-पढ़ना सिखाने के लिये इन्होंने यहाँ एक रात्रि पाठशाला भी खोल रखी है और यही उसे चलाते भी हैं।"

हेमलता ने यह सारी जानकारी पार्वती से पहले ही प्राप्त कर ली थी। फिर भी वह बाबा साहब की बात पूरी होते ही आँखों में अपूर्व तेज झलकाती हुई बोली—

"आप ही कवि चन्द्रकान्तजी हैं? बड़ी खुशी की बात है। मैं आपसे मिल

कर बड़ी प्रसन्न हुई। मैंने सोचा भी नहीं था कि आप इस कारखाने में होंगे।
"प्रतिभा" की काव्य-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार आप ही की कविता पर मिला है न ?"

"हाँ ? सच ! एक दिन कारखाने में मुझसे किसी ने कहा जरूर था कि आपकी किसी कविता पर आपको प्रथम पुरस्कार मिला है। बड़ी खुशी की बात है। कांग्रेच्युलेशन्स-बधाई। और हाँ, तुम्हें एक बात बताना तो भूल ही गया, चन्द्रकान्त! "हेमलता की ओर देखते हुए बाबा साहब ने कहा—" हमारी हेम को भी कविता रचने का शौक है। परसों इसने कालेज-मैगजिन में प्रकाशित अपनी कुछ कवितायें मुझे दिखाई थीं।"

"अच्छा, आप भी कविता लिखती हैं ? जरा दिखाइये तो अपनी कविताएँ ? अगर कोई हर्ज न हो, तो, जरा मैं भी देखूँ ?"

"अजी मेरी कवितायें भी क्या कोई कविताएँ हैं। पिताजी तो व्यर्थ ही मेरी तारीफ कर रहे हैं। मैंने अभी-अभी तो जितना शुरू किया है। जैसी चाहती हूँ वैसी कविता नहीं बन पाती और जो कविताएँ कालेज-मैगजीन में प्रकाशित होती हैं, वे क्या कोई कविताएँ होती हैं ?"

"और किसी पत्र में प्रकाशित होने नहीं भेजीं आपने अभी तक ?—"

"जी नहीं, मेरे प्रोफेसर साहब ने मेरी एक कविता की बड़ी तारीफ की थी। तब उस कविता को मैंने प्रकाशनार्थ "प्रतिभा" में भेजा था। पर, सम्पादकजी ने उसे चार दिन बाद ही मुझे लौटा दिया। प्रोफेसर साहब हम लोगों की तारीफ न करें, तो किसकी करें ?"

"नहीं, आप भूलती हैं। आप को प्रसिद्धि पाने के लिए इतनी जल्दी नहीं करनी चाहिए। खैर, लाइए तो, देखूँ आप की कविताएँ।"—चन्द्रकान्त ने पुनः आग्रह किया, तो हेमलता अपनी कविताएँ लाने के लिए चली गई।

इसी समय चन्द्रकान्त ने विषयान्तर कर, सिगरेट के कश खींचते और धुयें के बादलों की ओर शान्ति से देखते हुए, बाबा साहब से कहा—

"मैं आपके पास एक ख़ास काम लेकर आया था आगामी दिवाली को अपनी पाठशाला की वर्ष-गाँठ आती है। उसके लिए मैंने सोचा है कि

यदि आपकी राय हो, तो इस समारोह के लिए बाहर का कोई नेता बुलालें। उसीके हाथ से इस समारोह का उद्घाटन करा दें..."

"हाँ—हाँ, ज़रूर! अपने बड़े साहब का भी यही ख़याल है कि हमें उत्सव मनाना चाहिए और उसके लिए बाहर के लोगों को भी निमंत्रित करना चाहिए। हम चाहते हैं कि बाहर के लोग आएँ और हमारे काम को देखें। यदि इसके लिए थोड़ा-बहुत रुपया भी ख़र्च हो जाय, तो कोई हर्ज नहीं। पर, यह तो बताओ, बुला किसे रहे हो?" कलापुर का कोई ...

"मैंने अख़बारों में पढ़ा है कि लगभग इसी समय पूना के प्रसिद्ध समाजवादी नेता प्रकाश कलापुर आ रहे हैं। आप सम्मति दें, तो उन्हें ही निमंत्रित कर दें।"

"प्रकाश आ रहे हैं कलापुर? पर, वे हमारे यहाँ आएँगे क्या? अगर आ सकें, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

"मैं खुद कलापुर जाऊँगा और इसके बारे में पूछ-ताछ कर लूँगा। समाजवादी दफ़्तर के मंत्री मेरे परिचित हैं। आशा है, उनके ज़रिए शायद काम अपना हो जायगा।"

"ठीक है। कोशिश करके देख लो। फिर मुझे बताना कि क्या हुआ?"—कहकर बाबा साहब ने कलाई पर बँधी अपनी घड़ी की ओर देखा और वे उठे।

हेम 'कॉलेज मेगज़िन' के पन्ने पलट रही थी। बाबा साहब उसकी ओर देखते हुए बोले—"अच्छा हेम, मैं चलता हूँ। चन्द्रकान्तजी, हमारी हेम को मराठी साहित्य के अध्ययन में मदद देते रहा करो। उसकी भी बड़ी इच्छा है कि उसका नाम पत्रों में छपा करे। मालूम नहीं पत्रों में नाम छपने से क्या मिल जाता है? भई, हमारा धंधा तो है केमिस्ट का—रसायन-शास्त्र में काम करने वाले का। हमें तुम्हारे काव्य की ख़ूबियाँ समझ में नहीं आतीं। हम तो हर एक वस्तु का पृथक्करण करते हैं। ख़ैर, जाने दो इन बातों को। हेम, गनपत से कहो, वह चन्द्रकान्तजी के लिए चाय तैयार करे।"

गनपत बाबा साहब का रसोइया था। उम्र में था तो लड़का ही; पर, रसोई बनाने में बड़ा कुशल था। थोड़े दिन पहले ही वह बाबा साहब के घर आया

था। और कोई नौकरी देने के लिए उनके पास ख़ूब रोया गाया था। अंत में हेमलता की सिफ़ारिश से बाबा साहब ने उसे अपने घर रख लिया और रसोइया का काम दे दिया।

"आप नहीं ठहरेंगे चाय के लिए क्या?"

"अच्छा, ठहर जाता हूँ। पर, गनपत से कहो, ज़रा जल्दी करे। इसी समय "साहब-साहब!" पुकारता हुआ कारख़ाने का चपरासी आ धमका। बड़े साहब कारख़ाने में आ गये थे। इसलिए वह बाबा साहब को बुलाने आया था।

"क्यों, क्या बड़े साहब आ गए कारखाने में? तो फिर मैं नहीं ठहर सकता अब। चलता हूँ हेम! अच्छा चन्द्रकान्त जी, अब मुझे बिदा दो—।"
इतना कहकर खट-खट बूट बजाते हुए वे चल दिए।

"पिताजी का हमेशा से यही हाल है।"—हेमलता बुद बुदायी।

"देखूँ आपकी कविताएँ"—कहकर चन्द्रकान्त ने उससे कॉलेज-मेगज़िन के अंक ले लिए। चाय भी शीघ्र आ गयी। बस, दोनों का आस्वाद लेने का काम एकसाथ शुरू हो गया। किसी नवोदित कवि की कविताएँ जैसी होती हैं, वैसी ही कविताएँ हेम की थीं। उनमें भावना की गहराई और कल्पना की उड़ान का विशेष रूप से अभाव था, और उनका अस्तित्व तो संभव भी न था। फिर भी कल्पना का फैलाव और रचना की सफ़ाई चन्द्रकान्त को अच्छी लगी। शब्द-चयन से भी वह ख़ुश हो गया। जब चन्द्रकान्त कविताएँ पढ़ रहा था, तब उसके चेहरे पर होने वाले सूक्ष्म परिवर्तनों को हेमलता बड़ी तीक्ष्ण दृष्टि से देख रही थी। मेरी कविता के बारे में उसकी क्या राय है, यह जानने के लिए वह उत्सुक हो गई थी।

"एक साल से आप कविताएँ लिख रही हैं? समय की दृष्टि से देखा जाय, तो ये कविताएँ ठीक हैं। परन्तु नियमानुसार गहन अध्ययन करने की ज़रूरत है। अभी तक कौन-कौन से कवि पढ़े हैं आपने?"

"वैसे काव्य का अध्ययन इस दृष्टि से तो मैंने कुछ नहीं किया है। परीक्षाओं के लिए जिन कविताओं को पढ़ना जरूरी था, उन्हीं तक मेरा अध्ययन

सीमित रहा है। फिर भी "रवि-मंडल" द्वारा प्रकाशित नए और पुराने कवियों के काव्यों को मैंने पढ़ा है। उसकी बात से उत्साहित होकर हेमलता ने कहा।

"इसके आगे आपको अच्छा अध्ययन करना चाहिए। आप अच्छी कविताएँ लिख सकती हैं। आपमें प्रतिभा है। सिर्फ गहन अध्ययन की ज़रूरत है।"

"यदि आप मदद करें तो······करेंगे आप?"

"क्यों नहीं, ज़रूर करूँगा।"

"मुझे एक मार्ग-दर्शक की ज़रूरत थी। आप अचानक मिल गए। इसे मैं अपना अहोभाग्य समझती हूँ। मुझे बड़ी चिन्ता थी कि यहाँ के वातावरण में मेरा समय कैसे कटेगा। आपकी भेंट होने से मेरी वह चिन्ता जाती रही।" –उसके शब्दों में हर्ष कृतज्ञता इत्यादि संमिश्रित व्यक्त हो रहे थे।

इस घटना के बाद जैसे उसे अनुभव हो रहा था; कि वह सहेलियों द्वारा बदनाम की हुई, और ख़ुद उसे भी घबड़ा देने वाली मज़दूर-नगरी में नहीं है, बल्कि कवि-कल्पित तरू-लताओं से खिले हुए नंदन-बन में विहार कर रही है।

५

जिस प्रकार सौन्दर्य के प्रति आकर्षण, चन्द्रकान्त के स्वभाव की एक विशेषता थी; उसी प्रकार दलित और शोषित वर्ग के प्रति स्नेह और सहानुभूति भी उसके स्वभाव की दूसरी विशेषता थी। कुछ अंशों में यह उसकी परिस्थिति के कारण भी पैदा हो गई थी। वह स्वयं बुद्धिमान था, गुणी था। परन्तु परिस्थिति की फटकार-वश उसे अपनी आशा-आकांक्षाओं को चुपचाप तिलांजलि दे देनी पड़ी थी। वह एक क्लर्क की शरमिंदगी-भरी जिंदगी जी रहा था। उसे स्वानुभव से यह सत्य प्रतीत हो रहा था कि वर्तमान युग समाज-रचना में गुण और श्रम की उचित कद्र नहीं की जाती। और उसे नोकरी के लिए भी ऐसी जगह मिली थी, जहाँ विषम समाज-रचना के दोष और अन्याय रोज़ अपनी नज़रों के सामने मूर्तिमान दिखते रहते थे।

रात-दिन मशीनों के साथ काम करने वाले मज़दूरों का वह यंत्रवत् जीवन देखकर उसे भ्रम होता कि जीवन—जिसे जीवन कहते हैं वह यही है क्या? स्वयं अपने और अपने बाल-बच्चों के पेट के लिए रूखी-सूखी रोटी और लज्जा बचाने लायक वस्त्र प्राप्त करने के लिए ये बेचारे मज़दूर गरमी, ठंढ, बरसात, दिन और रात किसी की भी परवाह न कर गुलाम की तरह खपते रहते हैं—और अपनी कम से कम आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं कर सकते। इसे जीवन कहें, या जीवन की विडम्बना?...इस प्रकार के अनन्त विचार उठकर उसके मन को मथ डालते थे।

मदूज़रों की तरफ उसका विशेष खिंचाव था। इसलिए उनके सुख-दुख से

समरस होने में उसे कभी भी हीनता न मालूम होती थी। विशेषतः जब से शंकर कारखाने में आया था, तब से तो वह मजदूरों के साथ और भी अधिक मिलने-जुलने लगा था। शंकर उसीके गाँव का था—उसका बालसखा था। इसलिए वह हमेशा उसके घर आया जाया करता था। यही कारण था जो शंकर के घर आने-जाने वाले दूसरे मजदूरों से भी उसका सम्पर्क होने लगा था। मजदूर लोग कुछ अंश में अधिक भावना-पूर्ण होते हैं। कुछ शौकीन मजदूरों ने एक भजन-मंडली स्थापित की थी। यह मंडली हर गुरूवार को सामूहिक भजन किया करती थी। इससे एक तो भगवान का नामोच्चार होता था और दूसरे, उन लोगों का मनोरंजन भी होता था। वरना, कारखाने की मरुभूमि में मनोरंजन का अन्य साधन था ही क्या? शंकर के साथ कभी-कभी चन्द्रकान्त भी मजे से इस सामूहिक भजन में भाग लिया करता था।

आगे चलकर चन्द्रकान्त के मन में यह विचार उठने लगा कि मजदूरों की भलाई के लिए मुझे कुछ ठोस कार्य करना चाहिए। सिर्फ उनकी मौजूदा हालत देखने, या निरी सहानुभूति मात्र प्रकट करने से क्या होगा? कुछ ऐसा कार्य करना चाहिए, जिससे उन लोगों के साथ मेरा संबंध हमेशा बना रहे। उसने इस विषय पर खूब विचार कर यह तय किया कि अपढ़ मजदूरों को लिखना-पढ़ना सिखाना चाहिए। यही काम उसे अपनी शक्ति के भीतर मालूम हुआ। पहले-पहल उसने शंकर को ही पढ़ाना शुरू किया। इसके बाद धीरे-धीरे उसके प्रौढ़ विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने लगी। जब उसे अपने घर में स्थान की कमी मालूम हुई, तो उसने मजदूर-नगरी के एक पुराने आफिस के कुछ कमरे इस काम के लिए मालिकों से प्राप्त कर लिए। गत दिवाली से इस पाठशाला का काम व्यवस्थित ढंग से शुरू हुआ था। उसने पाठशाला में पढ़ने आनेवाले मजदूरों की, उनके काम की पालियों के मुताबिक अलग-अलग टोलियाँ बना दी थीं। पढ़ाई रोज रात को होती थी। सिर्फ इतवार को कारखाने की तरह पाठशाला भी बंद रहती थी।

चन्द्रकान्त जैसे-जैसे उन लोगों के साथ रहने लगा, वैसे-वैसे वे उसपर विश्वास रखने लगे और उनके हृदयों में उसके प्रति आत्मीयता के भाव पैदा

हो गए। किसी भी मजदूर के घर कोई शुभ कार्य होता, तो वहाँ से चन्द्रकान्त को जरूर निमंत्रण मिलता। किसी के घर सत्यनारायण की पूजा हुई तो वह प्रसाद के लिए चन्द्रकान्त को अवश्य बुलाता।

इस प्रकार मजदूरों की जिंदगी को वह बहुत नजदीक से देख सका।

इसी समय के लगभग उसने मार्क्सवादी साहित्य पढ़ना आरंभ कर दिया। उस विचारधारा से वह बहुत प्रभावित हुआ। पूँजीपति मजदूरों का शोषण किस तरह कर रहे हैं, यह वह प्रत्यक्ष देख रहा था। इसीलिए उसका मन व्यथित हो रहा था। दूसरे लोगों की तरह वह भी यही सोचता था कि देश की आजादी के बाद यह हालत बदल जायगी। पर—पर यह क्या? देश आजाद हो गया—ब्रिटिश साम्राज्यशाही की पकड़ से छूट गया और भारतीय पूँजीपतियों के चंगुल में फँस गया। साधारण जनता की हालत और भी अधिक खराब हो गई। अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। परंतु पूँजीपतियों की नफेबाजी का परिमाण जितना परतंत्रता में था, उससे कई गुना अधिक इस स्वतंत्रता में बढ़ गया। आजादी से सच्चा फायदा उठाया, तो उन्होंने! जिन नेताओं को जनता ने भगवान की तरह माना था, उनकी दशा भी निष्क्रिय, असहाय—बिल्कुल पत्थर के भगवान की तरह ही हो गई। कभी उसे अपनी सरकार की नीति और उसकी कमजोरियों पर दया आती, कभी वह हताश हो जाता, कभी उसके क्रोध का बाँध फूट पड़ता और उसके विचार भड़क उठते। परंतु मार्क्सवादी विचार उसके मन में जड़ न पकड़ते। उसमें जो दोष थे, उन्हें वह समझता था। उसे रक्तरंजित क्रान्तिवाले रूस का चित्र—उसका वर्तमान स्वरूप दिखने लगता। और उसके विचार लोकतंत्र समाजवाद पर स्थिर हो जाते। उसके मन में समाजवादी नेताओं के लिए पहले से ही आदर-भाव था। सन् ४२ के आंदोलन में उन्होंने जो कार्य कर दिखाए थे, उनके कारण वह आदर-भाव द्विगुणित हो गया था।

इसीलिए जब उसने अखबारों में पढ़ा कि समाजवादी-दल के एक प्रमुख नेता—साथी प्रकाश दिवाली के लगभग कलापुर आ रहे हैं, तो उसके मन में आया कि अपनी पाठशाला की वर्ष-गाँठ के उत्सव के लिए उन्हें ही निमंत्रित

करना चाहिए और इसके लिए उसने बाबा साहब की सम्मति भी प्राप्त कर ली।

साथी प्रकाश ने भी उस अवसर पर लक्ष्मीनगर आना स्वीकार कर लिया। तब तो चन्द्रकान्त का आनन्द जैसे गगन में भी नहीं समा सका।

साथी प्रकाश का जीवन बड़ा उद्बोधक था। वे बंबई विश्वविद्यालय के प्रथम श्रेणी के एम० ए० थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कुछ साल तक प्रोफेसर रहे। जब सन् ३० में महात्मा गांधी का कानूनभंग आन्दोलन शुरू हुआ, तब जिन अनेक युवकों पर उस आन्दोलन ने मोहनी-मंत्र फूँका था, उनमें प्रकाश भी एक थे। देश में हो रहे इतने महत्वपूर्ण और स्फूर्तिदायक उलट-फेरों के बीच सिर्फ विद्यार्थियों को पढ़ाता रहूँ, यह बात उन्हें अच्छी न लगी। अपने राष्ट्र का नया इतिहास अपनी आँखों के सामने रोज बन रहा है और मैं स्वयं यूनान और रोम के प्राचीन वैभव में अपने मन को उलझाए रहूँ तथा विद्यार्थियों को भी उसमें फँसाए रहूँ, यह उन्हें कैसे अच्छा लग सकता था? उन्होंने प्रोफेसरी के पद से तुरन्त इस्तीफा दे दिया और जाकर महात्माजी के आन्दोलन में शरीक होगए। विद्यार्थी उन्हें बहुत चाहते थे। इसलिए बहुतसे विद्यार्थियों ने भी उनका अनुकरण कर कॉलेज छोड़ दिया और वे भी कानून-भंग आन्दोलन में सम्मिलित होगए। आगे चलकर नासिक के जेल में जिन थोड़े तरुणों ने कांग्रेस-समाजवादी दल की प्रस्थापना की, उनमें प्रकाश प्रमुख थे। यद्यपि उनका मुख्य कार्यक्षेत्र महाराष्ट्र ही था, तथापि सारे देश में घूमकर जनता-जनार्दन को बिल्कुल निकट से देखा था। उन्होंने सन् ४२ के आन्दोलन में जो काम किया, वह तो अपूर्व था।

उस समय सतारा जिले में ब्रिटिश-सत्ता को हटाकर स्थान-स्थान पर ग्राम-राज्य स्थापित करने और उसे सुचारु रूप से चलाने में उन्हींका प्रमुख हाथ था और उन्होंने यह सारा काम भूमिगत रहकर ही किया था। उन्हें पकड़ने के लिए अंग्रेजी-शासन ने आकाश-पाताल एक कर दिया, पर, वे अन्त तक उसके हाथ न आए। और, विशेष बात यह थी कि, कई बार वे प्रकट रूप से उस भाग में

घूमा करते थे। इससे यही प्रतीत होता था कि जनता के हृदय में उनके प्रति कितनी श्रद्धा और भक्ति थी।

इस प्रकार का नेता मेरा काम देखने के लिए आ रहा है, अतः चन्द्रकान्त को खुशी हुई, तो यह स्वाभाविक ही था। दो दिन के भीतर, रात-दिन काम करके चन्द्रकान्त ने नेताओं के चित्रों, तिरंगी मालाओं और तोरणों आदि से पाठशाला को अच्छी तरह सजा दिया। मजदूरों ने भी बड़े प्रेम और उत्साह से इस कार्य में सब प्रकार से चन्द्रकान्त का हाथ बँटाया। उनकी पाठशाला को देखने के लिए एक नेता आ रहा था, इसलिए उनके उत्साह की भीसीमा न थी।

अंत में प्रकाशजी के आगमन का दिन उदय हुआ। पाठशाला के बाहर खुली जगह में शामियाना तान कर व्याख्यान की व्यवस्था की गई। निश्चित समय पर सारा सभा-गृह लोगों से खचाखच भर गया। मंच पर बीच में सम्मानीय अतिथि की कुरसी थी। उसके बाएँ और बाएँ रखी कुरसियों पर बाबा साहब, हेमलता और कारखाने के अन्य अधिकारी बैठे थे। बाबा साहब की दाहिनी तरफ, उन्हींसे सटी हुई कुरसी पर चन्द्रकान्त ने सूट-बूट में बैठे हुए एक नए और अपरिचित युवक को देखा। वह एक नेता का व्याख्यान सुनने आया था, इसीलिए शायद उसने पाश्चात्य पोशाक पर गांधी टोपी लगा रखी थी वह भी बड़ी शान से कुछ तिरछी ! पाश्चात्य पोशाक पर वह बड़ी भद्दी दिख रही थी। चन्द्रकान्त को लगा कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व व्रत के रूप में लगाई जाने वाली गांधी टोपी, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सभा और सम्मेलनों में फैशन के रूप में लगाई जाने लगी है। सभा-स्थान में वह युवक बाबा साहब के साथ ही आया था। इसलिए चन्द्रकान्त ने अनुमान किया कि वह बाबा साहब का ही कोई रिश्तेदार या मेहमान होगा। वह खुद उत्सव के कार्य में इतना व्यस्त था कि उस युवक के पास जाकर उससे परिचय प्राप्त करने का भी मौका उसे न मिला।

ठीक समय पर प्रकाशजी पधारे और तुरन्त ही कार्य-क्रम आरम्भ हो गया।

प्रचण्ड करतल ध्वनि के बीच प्रकाश भाषण देने खड़े हुए। पहले उन्होंने चारों तरफ अपनी नजर दौड़ाई और फिर मुस्कुराते हुए हाथ जोड़कर सबको प्रणाम किया। उनके चेहरे पर बालक जैसी भोली मुस्कान थी और आँखों में

स्नेह तथा करुणा के भाव झलक रहे थे, जिससे समस्त श्रोताओं के हृदय उनकी ओर आकृष्ट हो गए। उनकी शान्त, हृदय से निकली और स्वानुभव में डूबी हुई वाणी को सुनकर श्रोता मंत्रमुग्ध हो गये। अत्यन्त शान्ति पूर्वक उन्होंने अपना भाषण आरंभ किया......

"आज हमारा देश स्वतंत्र हो गया है। पराधीनता की बेड़ियाँ हमने काट कर अलग कर दी हैं। परन्तु इसके लिए हमें जबरदस्त कीमत देनी पड़ी। देश के टुकड़े हुए और लाखों लोग निराधार हो गए। इधर जनता की यह कल्पना थी कि हम स्वतंत्र हो गए हैं, तो अब सुखी होंगे; उधर देश को छोड़ते समय अंग्रेजों ने अनेक कठिनाइयाँ और समस्याएँ उपस्थित कर दी थीं। हमें उन लोगों ने स्वतन्त्रता का जो सुवर्ण दिया, वह बिल्कुल शुद्ध न था। उसमें मिलावट थी। फिर भी हमारे नेताओं ने उसे स्वीकार कर लिया। उनकी भावना थी कि, स्वदेश-प्रेम की आँच देकर हम उसे शुद्ध कर लेंगे—चमका लेंगे परन्तु इस आँच की गरमी साधारण जनता को ही लगने लगी। स्वतंत्रता का सोना अधिकाधिक शुद्ध होने के बजाय,साधारण लोगों की गृहस्थियाँ ही उस आँच से जलने लगीं। जनता में एक प्रकार की निराशा फैल गई। महात्माजी ने भी कहा —"आजादी आई, पर जनता में उत्साह नहीं दिखता। मैं शहरों में घूमा, गाँवों में गया, कारखाने देखे, खानों में काम करनेवालों से मिला, मजदूरों से बातें कीं। जनता की बुरी हालत देख आँखें बार-बार सजल होने लगीं। मैं स्वयं अपने आपसे ही पूछने लगा—"आजादी आई, पर इन लोगों की दशा में क्या फर्क हुआ? उल्टे साधारण जनता का जीवन अधिकाधिक कष्टमय होता चला जा रहा है। मँहगाई बेहिसाब बढ़ गई है।"

इस तरह भाषण आरम्भ करने के बाद उन्होंने यह बताया कि सरकारकी नियंत्रण-नीति ही इस मँहगाई के लिए किस प्रकार जिम्मेदार है, इसके कारण देश के पूँजीपतियों की किस तरह पाँचों घी में हो गई हैं और उन्हें किस तरह करोड़ों का नफा कमाने के लिए अनायास ही अच्छा मौका हाथ लग गया है। उन्होंने यह भी कहा कि इतना फायदा होने के बावजूद उनकी बकासुरी भूख लगातार बढ़ती ही जा रही है और वे सरकार से नए-नए आश्वासन और

सहूलियतें किस प्रकार प्राप्त कर रहे हैं। इन सब बातों का उन्होंने बड़ी सुन्दरता और प्रभावशाली रीति से विवेचन किया। फिर यह कहकर कि "उत्पादन बढ़ाने के लिए पूँजीपति ही तैयार नहीं है—वही नाखुश हैं। इसलिए मजदूरों के बदले आज वास्तव में वही हड़ताल कर रहे हैं।" वे आगे बढ़े ......

"ऐसी हालत में मजदूरों के संगठन की अत्यन्त आवश्यकता है। यही वक्त है, जब कि उन्हें देश-विरोधी कार्य-वाइयों को रोकना चाहिए। सरकार की नीति के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द करनी चाहिये। वर्तमान सरकार से यह आशा करना कि वह देश में समाजवादी-व्यवस्था कायम करेगी, निराशा मात्र है। इधर ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे उठकर सामने आजाते और स्वार्थ-साधन के लिए सफेद टोपी लगा लेते हैं, उधर सेवा की अपेक्षा सत्ता की ओर ही कांग्रेस-नेताओं का ध्यान लगा है। घूसखोरी और सम्बन्धियों के प्रति पक्षपात का आजकल हर तरफ बोलबाला है। जनता के लिए खपने की योग्यता आज कांग्रेस में नहीं रह गयी है। इसीलिए हम बड़े दुःख से उसे छोड़कर बाहर निकल आये......अन्त में मजदूरों से मेरा यही निवेदन है कि उठो-जागो। यही वक्त तुम्हारा है। यही क्रान्ति-काल है। अपनी मनचाही क्रान्ति तुम्हें लानी हो, तो संघटित हो जाओ........"

प्रकाश, करीब डेढ़ घण्टे तक बोलते रहे। सारे श्रोता मंत्र-मुग्ध से होकर उनका भाषण सुन रहे थे। स्याहीसोख जिस प्रकार स्याही की बूँद-बूँद को सोखता जाता है, उसी प्रकार प्रकाश के एक-एक शब्द को श्रोताओं के अन्त-करण सोख रहे थे।

इस कार्य-क्रम के बाद प्रकाश ने बस्ती में घूमने और मजदूरों की चालें आदि स्वयं देखने की इच्छा प्रकट की। तब चन्द्रकान्त उन्हें अपने साथ बस्ती में घुमाने के लिये ले गया। पहले उन्हें ईंट-चूने और पत्थर की बनीं पक्की चालें मिलीं। इनमें कारखाने के छोटे अधिकारी और क्लर्क लोग रहते थे। फिर वे खास मजदूरों के रहने के लिए बनी चालों के पास आये। ये चालें टीन की चद्दरों की बनी थीं। मजदूरों की संख्या को देखते हुए इनमें रहने का स्थान कम था। यदि और मजदूर भरती होते, तो वे भी इन्हीं में वहीं ठूँस दिये जाते

थे। उनके लिये नई चालें बनाने का काम मालिक स्थगित करते जाते थे। कहते थे—"टीन की चद्दरें लड़ाई के कारण बेहिसाब मँहगी हो गई है और सीमेन्ट तो मिलता ही नहीं है।" विवाहित मजदूर को १० वर्ग फुट जगह का एक कमरा मिलता था। यदि परिवार बड़ा हो, तो बड़ी खुशामद के बाद एकाध कमरा और मिल जाता था। उन कमरों में सिर्फ दो सुभीते थे—एक तो वे बन्द थे, जिससे परदा रहता था, और दूसरे वर्षा से बचाव होता था। इनके सिवा तीसरा और कोई सुभीता उनमें न था। गरमी में वे जलते हुए भट्टे और ठण्ड में बिलकुल शीत-गृह बन जाते थे। पानी के निकास के लिये कहीं भी नालियों का कोई इन्तजाम न था। इसलिये निस्तारा का सारा पानी चालों के बाहर बहकर जगह-जगह पर जमा हो जाता और फिर गरमी में आप-ही-आप वहीं सूख जाता था। इस तरह बड़ी गन्दगी की तो कोई इन्तहा ही न थी। यहाँ से वहाँ तक सारी चाल टीन के चद्दरों की बनी होने से उसके एक सिरे के कमरे से कोई जरा जोर से बोलता, तो वह दूसरे सिरे वाले कमरे तक सुनाई पड़ता था। अभिप्राय यह कि कहीं कोई बात गुम न रह पाती थी। इस प्रकार मालिकों ने मजदूरों को 'वसुधैव कुटुम्बकं' का पाठ सिखाने के लिए यह बड़ी अप्रतिम सुविधा कर रखी थी।

मजदूरों के कमरों को भीतर से देखने के लिए प्रकाश अचानक एक कमरे के द्वार पर खड़े हो गये। चन्द्रकान्त भी वहीं रुक गया। भीतर एक औरत चूल्हे के सामने बैठी हुई रोटियाँ सेंक रही थी। उसकी गोद में एक छोटा-सा बच्चा था, जो रो रहा था। वह बच्चे को भी सम्भालती और रोटियाँ भी बेलती तथा सेंकती जाती थी। बच्चे का रोना बन्द नहीं हो रहा था। मिलो की बनी लाल रंग की मोटी-मोटी दो रोटियाँ चूल्हे के पास टीन की दीवाल से टिकी रखी थीं। एक कोने में लकड़ी की एक सन्दूक पड़ी थी। उसपर कुछ कपड़े, जो जीर्ण हो रहे थे, तह लगाकर रखे थे। एक तरफ मिट्टी के तीन घड़े एक के ऊपर एक रखे थे। छाजन से रस्सियाँ लटकाकर बच्चे के लिये कपड़े का झूला बना लिया गया था। चूल्हे के पास दो-तीन रसोई के बरतन पड़े हुए थे। बस, यही सम्पत्ति थी उस मजदूर-परिवार की। यह दृश्य देखकर प्रकाश के चेहरे पर

अत्यन्त करुणा भाव उमड़ पड़े। द्वार पर मेहमानों को देखकर औरत ने झट से अपना आंचल सँभाला और बच्चे को दूध पिलाने के लिये उसके भीतर छिपा लिया यह करते समय उसकी धोती ने जो दैन्य प्रकट किया उसे प्रकाश न देख सके। वे झट वहाँ से आगे बढ़ गए और अँगुलियों से उन्होंने अपने आँसू पोंछ डाले।

सब कुछ देखकर जब लौटे, तो प्रकाश ने चन्द्रकान्त से कहा—

"चन्द्र, क्या तुमने वह कथा पढ़ी है कि जब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपना विश्व-रूप दिखाया, तो उसका दर्शन करते ही अर्जुन डर गये? अभी-अभी हमने जिस विश्व को देखा है, कोई नया आदमी यदि उसका दर्शन करें, तो वह भी उसी तरह डर जायगा। पूँजीवाद जिसे कहते हैं, वह यहीं है। युद्ध शुरू होने के बाद तुम्हारे मालिकों ने लाखों रुपयों का मुनाफा कमाया होगा। जब से शक्कर पर से कन्ट्रोल उठा है, तब से उनकी मुनाफेबाजी का तो कोई अंत ही न होगा। इतना सब होते हुए भी शक्कर तैयार करने वाले किस हालत में रहते हैं, यह तुमने देख लिया न? क्या तुम्हारे मालकों के हृदय इतने पत्थर हैं, जो वे यह भी नहीं सोच सकते कि अपने मजदूरों के लिए ऐसी चाल तो बनवादें, जहाँ रहने से कम से कम ठंड और गरमी से तो उनकी रक्षा हो? अभी हमने उस कमरे में कितना करुण दृश्य देखा है? यह कैसा जीवन जो इन्हें साधारण सुखों से भी वंचित रहना पड़ता है? क्या ये मेहनत नहीं करते हैं? क्या ये समाज के लिए उपयोगी नहीं है? इनकी ऐसी दशा क्यों है?..... इसकी जड़ को तुम खोजो। मुझे तुम्हारा काम देखकर बड़ी खुशी हुई। मजदूरों के लिए तुम्हारे हृदय में स्थान है। तुम उनकी फिक्र करते रहते हो। तुम्हारे जैसे तरुणों की आज हमें—हमें ही क्यों, बल्कि सारे देश को जरूरत है। परन्तु मजदूरों को सिर्फ पढ़ना-लिखना सिखा देने पर ही संतोष मानकर न बैठो। उन्हें उनके अधिकारों की जानकारी कराओ। तुम्हारे अन्तःकरण में मजदूरों के प्रति जो सहानुभूति हैं, वह मैं समझ गया हूँ। इसलिए जानबूझकर ही मैंने तुमसे ये बातें कही हैं। तुम्हारे जैसे युवक ही हमारे आशा के केन्द्र हैं........"

६

बाबा साहब के साथ जलसे में जो तरुण आया था, वह कौन है—यह जानने की तीव्र जिज्ञासा चन्द्रकान्त के मन में पैदा हो गई थी; परन्तु जल्से की गड़बड़ी में वह उस समय यह भूल गया। शायद उसने यह सोच कर संतोष कर लिया कि जब बाबा साहब के बँगले पर जाऊँगा, तब उसके बारे में सब पता चल ही जायगा।

जब से बाबा साहब ने हेमलता से उसका परिचय करा दिया था, तब से वह उनके बँगले पर बारम्बार जाने लगा था। जो चन्द्रकान्त सिर्फ किसी काम के निमित्त ही यदा-कदा बाबा साहब के बँगले की सीढ़ियां चढ़ता था, वही अब उनके बँगले के बार-बार चक्कर काटने लगा था। इसका एक कारण तो यह था ही कि वह हेमलता की ओर आकर्षित हो गया था, पर, दूसरा कारण यह भी था कि वह लड़की भी कविताएँ लिखा करती थी। इसलिए दो समान-गुण वालों में जो एक प्रकार की आत्मीयता होती है, वह भी उन दोनो में पैदा होने लगी थी। कोई भी शौक जब बेहद बढ़ जाता है, तो वह व्यसन बन जाता है। व्यसनी मनुष्य को अपना व्यसन पूरा किए बगैर चैन नहीं पड़ती। उसी तरह इस वर्ग के मनुष्य की भी हालत हो जाती है। इसीलिए, शायद भिन्न-भिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोग रोज सायंकाल के समय बिला नागा क्लब में आकर इकट्ठा होते हैं और एक साहित्य-प्रेमी दूसरे साहित्य प्रेमी

से काव्य-शास्त्र और विनोद की चर्चा करने के लिए हर रोज तीन-चार मील पैदल चलना भी सहर्ष स्वीकार कर लेता है।

जब से चन्द्रकान्त लक्ष्मीनगर आया था, तब से उसे वहाँ अभी तक कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला था, जिसके साथ बैठकर वह काव्य और साहित्य की चर्चा करता। इसलिए उसकी यह इच्छा अतृप्त ही रही थी। ऐसी हालत में जब उसने देखा कि हेमलता को भी काव्य और साहित्य में रुचि है, तो उसका उसकी ओर और भी अधिक आकर्षित हो जाना ताज्जुब की बात न थी। रात को उसे अपनी पाठशाला के काम में व्यस्त रहना पड़ता था। इसलिए बाबा साहब के बँगले पर वह अकसर सुबह ही जाया करता था। वहाँ, वे दोनों भिन्न-भिन्न विषयों पर चर्चा किया करते थे। वैसे तो चन्द्रकान्त स्वभाव से चुप्पा था—बहुत कम बातें करने वाला; परंतु जब उसकी रुचि के विषय पर चर्चा छिड़ जाती थी, तो फिर वह बड़े ताव के साथ बातें करने लगता था। उनकी बातचीत के दौरान में उन कवियों और लेखकों का उल्लेख तो होता ही था, जिनकी रचनाएँ हेमलता के बी० ए० के पाठ्य-क्रम में स्वीकृत थीं, पर, साथ ही उनसे सम्बन्धित अन्य लेखक और कवि भी चर्चा के विषय बन जाते थे। साहित्य के यथार्थ-वाद, प्रयोजन-वाद और बिल्कुल हाल ही में आरंभ हुए अति-यथार्थ-वाद आदि की वह गहरी छान-बीन करता और इसी तरह प्राचीन और अर्वाचीन काव्यों के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों पर भी अपने विशद विचार प्रकट करता था। कभी-कभी राजनीति और समाज-नीति पर भी चर्चा छिड़ जाती थी। ऐसे समय यदि बाबा साहब वहाँ हाजिर होते, तो वे भी उसमें भाग लेते थे। साहित्य को छोड़कर यदि कोई दूसरा विषय निकलता, तो उस समय हेमलता सिर्फ श्रोता का काम करती थी। परन्तु चन्द्रकान्त का भाषण अवश्य अस्खलित रूप से चलता रहता। उसका चौमुखी अध्ययन को देखकर बाबा साहब भी दाँतों तले अँगुली दबाते और हेमलता उसकी ओर प्रेमादर मिश्रित कुतूहल की दृष्टि से देखती रहती। उसका तेजस्विना बुद्धिमत्ता के प्रति उसका आदर द्विगुणित हो जाता और वह कहती—"सच चन्द्रकान्तजी, आपको कॉलेज में पढ़ना था। आप बहुत आगे बढ़ते।"

जब वह यह कहती, तो चन्द्रकान्त के चेहरे पर और उसकी तेजस्विनी आँखों में कारुण्य की छटा उमड़ पड़ती ! वह कहने लगता—"कॉलेज जाने की मेरी बड़ी इच्छा थी। मैं बचपन में यह भी सोचा करता था कि आगे चलकर मैं यह बनूँगा। मेरा मन मुझसे कहता था—"तू जो सोच रहा है, वह अपनी बुद्धिमत्ता के कारण अवश्य बन जायगा।" परन्तु जब मैं मैट्रिक में था, तभी मेरे घर की परिस्थिति एकदम इतनी बिगड़ गई कि बड़े कष्ट से अपने मन के विचारों को दबाकर मुझे गृहस्थी की सारी जिम्मेवारी अपने सिर पर उठाने के लिए बाध्य होना पड़ा। उसी समय मेरा यह विश्वास भी, कि अपनी बुद्धिमत्ता से मेरे लिए सब कुछ सम्भव हो जायगा, बिल्कुल टूट गया।"

चन्द्रकान्त अपने हृदय की यह भीतरी व्यथा शब्दों द्वारा कभी किसीपर प्रकट नहीं करता था। फिर हेमलता के आगे वह अपने हृदय को स्पष्ट रूप से क्यों खोलकर रख देता था ? इसीलिए कि हेमलता के हृदय में उसके लिए स्नेह था।

उसकी ये बातें सुनकर हेमलता का हृदय और भी अधिक व्यथित हो जाता था।

अत्यधिक काम के कारण यदि एक-दो दिन चन्द्रकान्त उसके घर न जा पाता और जब पहुँचता, तो हेमलता का पहला प्रश्न यही होता था—"क्यों दो दिन नहीं आए आप ?

×　　　　×　　　　×

वर्षगाँठ समारोह के दूसरे दिन सुबह चन्द्रकान्त बाबा साहब के बँगले पर गया, तो उसने देखा कि वहाँ सब लोग चाय पर बैठे हैं। बैठकखाने में मेज के आसपास बाबा साहब, हेमलता और वह नया तथा अपरिचित तरुण भी था, जिसे उसने कल समारोह में देखा था। चन्द्रकान्त को देखते ही हेमलता ने गनपत को आवाज देकर चाय मँगवाई। चन्द्रकान्त भीतर आकर कुरसी पर बैठा ही था कि उस अपरिचित तरुण ने अपनी बातें क्षण-भर के लिए बन्द कर दीं। यह बात बाबा साहब के ध्यान में आ गई और वे बोले—"अरे हाँ,

मैंने अभी तुम दोनों का परिचय नहीं कराया है। ये हैं चन्द्रकान्त। कल हम लोग जिस पाठशाला के समारोह में गये थे, उसका सारा श्रेय इन्हींको है। अपने ही आफिस में क्लर्क हैं ये। इसके साथ ही आप एक अच्छे कवि भी हैं। तुम्हारे बारे में तो मैं नहीं कह सकता—पर हेम की दृष्टि से यह बड़े महत्व की बात है; और ये हैं......" उस अपरिचित तरुण की ओर गरदन घुमाकर वे चन्द्रकान्त से बोले—"सुरेश पाटनकर! ये अपने कारखाने के बड़े मालिक के भांजे हैं। बम्बई-विश्वविद्यालय के एम० एस–सी० हैं। शुगर-टेक्नालाजी के विशेष अध्ययन के लिए शीघ्र ही अमेरीका जाने वाले हैं। उससे पहले प्रेक्टीकल एक्सपीरिएंस के लिए इस सीजन भर यहीं रहेंगे।"

दोनों ने एक दूसरे को नमस्कार किया।

"अच्छा तो आप कवि भी हैं?"—सुरेश ने चन्द्रकान्त से कहा,—"पर, एक कवि के लिये यहाँ का वातावरण कहाँ तक ठीक है, यह मैं नहीं कह सकता।"

"क्यों, यहाँ क्या कमी है?"

"मेरे कहने का मतलब यह है कि कवि सौन्दर्य के उपासक होते हैं; और यहाँ सौंदर्य कहीं है ही नहीं। ऐसी हालत में आपकी काव्यवृत्ति का पोषण क्या होगा? मैं तो जब से बम्बई छोड़कर यहाँ आया हूँ, तब से मुझे ऐसा लग रहा है, जैसे किसी मछली को जल से निकालकर थल पर डाल दिया हो। जान पड़ता है, जैसे मुझे एक अजीब दुनियाँ में लाकर छोड़ दिया गया है। बम्बई की आलिशान इमारतें, मनुष्यों, मोटरों और ट्रामों से भरी हुई डामर की सड़कें, ऐसे उपहार गृह-जिनमें स्त्री और पुरुष एक साथ जा सकें, विशाल छवि-गृह, सुन्दर बगीचे और समुद्र-तट का वह सांध्यकालीन दृश्य! इनमें से एक भी चीज है यहाँ? इसीलिए कहता हूँ कि जब मुझे जैसे व्यक्ति को भी यहाँ भूला-भूला-सा लग रहा है, तब आप तो कवि हैं, आपको यहाँ कैसे अच्छा लगेगा?"

"मनुष्य को जो अच्छा लगता है, यदि वह उसे सदा मिलता रहे, तो क्या कहना, परन्तु यह बात नहीं है कि कवि केवल सौन्दर्य-पूजक ही होता है।

चाहें, तो आप इसे अधिक-से-अधिक उसका एक अंग कह सकते हैं। तीव्र रूप की सम्वेदन-क्षमता ही उसकी विशेषता होती है। वह विभिन्न प्रसंगों का अनुभव करता, उन्हें देखता और उनका उसके हृदय पर जो परिणाम होता है, उसी का वह अपनी संवेद-क्षमता की सहायता से यथातथ्य एवं मार्मिक चित्रण करता है। फिर वह प्रसंग चाहे सौन्दर्य पूर्ण हो, चाहे इतना कुरूप हो कि उबकी आ जाय। वह आनंदपूर्ण हो या दुःखपूर्ण हो, उस प्रसंग को उत्तमता और समरसता से रँगना ही उसका काम होता है। जिसने केवल सौन्दर्य का अनुभव किया होगा, वह सौन्दर्य का ही वर्णन करेगा। जिसने जीवन में दुःख और निराशा का ही अनुभव किया होगा, उसकी काव्य-वीणा उन्हींके करुण-स्वर छेड़ेगी। कवि के लिए यदि किसी मुख्य चीज की जरूरत है, तो वह है, किसी भी प्रसंग से समरस हो जाने वाला हृदय और उसे व्यक्त करने का कुशलता। यही बात सौन्दर्य के विषय में भी लागू होती है। आप ही कहिए, क्या हम सौंदर्य का कोई निश्चित व्याख्या कर सकते हैं? एक को जो चीज सुन्दर लगता है, क्या हम कह सकते हैं कि दूसरों को भी वह सुन्दर ही लगेगा? इसलिए यदि हम यह कहें कि सौन्दर्य नाम की चीज वस्तु में नहीं, बल्कि दृष्टि में होता है, तो इसमें क्या त्रुटि है?"

इस प्रकार वक्तव्यपूर्ण विवेचन करते हुए उसके नेत्र चमक रहे थे।

हेमलता के प्रफुल्लित चेहरे से लग रहा था कि उस विवेचन की सत्यता उसे भा रहा है। सुरेश ने भी अपने चेहरे पर जबरदस्ती कुछ ऐसे भाव झलकाए जिससे देखने वाले समझें कि वह भी सब कुछ समझ गया है। उसने कहा—

"आप जो कह रहे हैं, शायद वैसा ही हो! मैं इसके बारे में कुछ भी नहीं समझता। मासिक पत्रिकाओं में छपनेवाली कविताओं के पृष्ठ मैं विज्ञापनों के पृष्ठों की तरह ही पलट देता हूँ। पर, एक बात है। कविता पढ़ना मुझे अच्छा न लगता हो, फिर भी काव्य-गायन मुझे अवश्य ही बहुत पसन्द है, समझे चन्द्रकान्त जी? ग्रामोफोन पर गीतों के रिकार्ड अथवा रेडियो से प्रसारित कवि-सम्मेलनों और गीतों के कार्य-क्रम मैं बड़ी दिलचस्पी से सुनता हूँ।"

"तो फिर सीधा यह कहिए न, कि आपको संगीत पसन्द है; कविता नहीं।" चन्द्रकान्त ने हँसते हुए कहा।

"आप कुछ भी समझ लें। पर, मैं इतना जरूर कह सकता हूँ कि आपकी इन शुष्क बातों की अपेक्षा, मुझे काव्य-गायन में ही अधिक मजा आयेगा।"

"सच चन्द्रकान्तजी! हम एक बार आपका काव्य-गायन सुनना चाहते हैं! सुनाइएगा? बताइए, किस दिन कार्य-क्रम रख दूँ?"—बहती गंगा में हेमलता ने अपनी नाव छोड़ी।

"अजी मेरा काव्य-गायन क्या होगा! मुझे गाना आता ही नहीं! मामूली तरह से कविताएँ पढ़कर सुना दूँगा। ऐसा हो सकता है क्या?"

"हाँ-हाँ हो सकता है! पहले हमारी प्रार्थना स्वीकार तो कीजिये। फिर देखेंगे कि आप गा सकते हैं या नहीं?"

"वाह, यह भी खूब रही! यह तो बिल्कुल उल्टा न्याय है। पहले किसी का कार्य-क्रम निश्चित कर लेना और फिर देखना कि उसे कुछ आता है या नहीं। तब तो आप सार्वजनिक कार्य-क्रमों को खूब निश्चित किया करेंगी!" चन्द्रकान्त ने हँसते हुए कहा।

"जो कलाकार अपनी कला को छिपाकर रखना चाहते हैं, उनके लिए इसी तरह के उल्टे न्याय से काम लेना पड़ता है। खैर, इन बातों को छोड़िए। हाँ, तो स्वीकार है न? कल रविवार है, यदि रात को कार्य-क्रम रखा जाय, तो क्या हर्ज है? आपके आफिस की भी छुट्टी है और पाठशाला की भी। पिताजी को भी फुरसत है। क्यों पिताजी, ठीक है न?"—बाबा साहब की ओर देखते हुए हेमलता ने कहा।

बाबा साहब ने सम्मतिदर्शक गरदन हिला दी।

"जैसी आप लोगों की इच्छा हो। पर कृपाकर चुने हुए लोगों को ही बुलाइएगा। फिजूल की भीड़-भाड़ न हो।"—चन्द्रकान्त ने कहा।

इसी समय साइकिल से एक लड़का आया। उसके पास कुछ समाचार पत्र थे। उनमें से तीन-चार समाचार पत्र मेज पर रख कर वह लौट गया। हर एक ने एक-एक समाचार-पत्र उठा लिया। बाबा साहब के हाथ में कलापुर से

प्रकाशित होने वाला "प्रभात" नाम का दैनिक पत्र आ गया। उसके शीर्षकों पर नजर दौड़ाकर उन्होंने चन्द्रकान्त से कहा—"वाह "प्रभात" ने तो आज कमाल कर दिया! कल के समारोह का विस्तारपूर्वक विवरण छापा है और प्रकाशजी का पूरा भाषण भी दिया है। भाई! यह कौन-सा जादू है संपादकजी के पास?"

"प्रभात" कलापुर से प्रकाशित होने वाला दैनिक पत्र था। उसे समाचार-पत्र कहने के बजाय विज्ञापन-पत्र कहना ही ठीक होगा। यह पत्र हाथ में लेते ही सबसे पहले यदि कोई चीज हमें आकर्षित करती है, तो वह है उसकी विज्ञापन-राशि। दूसरे पत्र समाचार छापने के बाद जो जगह बचती है, उसमें विज्ञापन छापते हैं। परन्तु इस पत्र में विज्ञापन छप जाने पर जो थोड़ा-बहुत जगह बच रहती है, उसमें समाचार छपते हैं। समाचार पत्र विज्ञापनों से ही चलते हैं, कलापुरा "प्रभात" इसका मूर्तिमान उदाहरण था। उसमें जो समाचार छपते थे, वे भी ऐसे कि उन्हें पढ़ने से लगता था, जैसे हम 'सहस्र-रजनी-चरित्र' का कोई किस्सा पढ़ रहे हैं। इस तरह के पत्र में कल के समारोह का वर्णन विस्तार पूर्वक छपे, यह सम्भव न था, जब कि इस तरह के समाचार दूसरे पत्रों में भी इतनी जल्दी छप जाना कठिन होता है। इसीलिए बाबा साहब ने कहा था कि सम्पादकजी के पास क्या कोई जादू है?

चन्द्रकान्त ने इसका स्पष्टीकरण किया। उसने कहा—

"यह समाचार "प्रभात" के सम्वाददाता ने नहीं दिया है। कल रात को मैंने ही समारोह का पूरा वर्णन और प्रकाशजी का भाषण लिखकर कुछ समाचार-पत्रों को भेज दिया था।"

"अच्छा, यह बात थी!"—

अब बातचीत का प्रवाह कल के भाषण की ओर मुड़ गया।

"कल प्रकाशजी का भाषण बहुत अच्छा रहा। क्यों साहब, रहा न?"—चन्द्रकान्त ने कहा।

"कल प्रकाशजी ने अपने भाषण में पूँजीपतियों और नेहरू-सरकार के बारे

में जो बातें कहीं, वे सभी को स्वीकार होंगीं, ऐसा नहीं लगता।"—सुरेश ने टोका।

"वाह, यह आप कैसे कह सकते हैं? मेरा ख्याल तो यह है कि कल का भाषण संयम-पूर्ण आलोचना का एक उत्तम नमूना था। कांग्रेस और उसके नेताओं की आलोचना करते हुए प्रकाशजी कितने संयम से बोल रहे थे? कई लोग तो अपने भाषणों में कांग्रेस पर जहर उगलते हैं। उस दृष्टि से देखा जाय, तो प्रकाशजी के भाषण में कहीं भी उग्रता न थी, कहीं भी प्रचार न था। बल्कि उन्होंने बड़े तर्क शुद्ध शब्दों द्वारा कांग्रेस की नीति का सुन्दर विवेचन किया था। उनके भाषण में करुणा थी। कांग्रेस का अधःपतन देखकर उनका हृदय कितना व्यथित हो गया है, इसकी झलक उनके भाषण में दिख रही थी।"

"लगता है, चन्द्रकान्तजी कल के व्याख्यान से बहुत अधिक प्रभावित हो गए हैं!"—सुरेश ने कहा।

"नहीं, यह बात तो नहीं है कि मैं केवल उनके व्याख्यान और व्यक्तित्व से प्रभावित होगया होऊँ। पर, मुझे उनकी विचार-सरणी बहुत पसन्द आई।"

"ऐसी कौन-सी खास विचार-सरणी थी? आजकल कोई भी खड़ा हो जाता है और अपनी सरकार की आलोचना करने लगता है। भाई साहब! यह तो आए दिन का एक फैशन-सी बन गया है। फिर भी अच्छा है कि हमें पण्डित नेहरू सरीखा नेता प्राप्त हुआ है।"

"यह हो सकता है कि बहुत-से लोग ऐसी आलोचना करने में बुद्धि से काम न लेते हों। परन्तु उनकी आशाएँ भंग हुई हैं और इसी कारण से वे आलोचना करते हैं, यह तो मानना ही पड़ेगा। पराधीनता की बेड़ियाँ कट जाने पर यदि लोगों ने यह आशा की, कि वे सुखी होंगे, तो क्या आप इसे उनकी भूल कहेंगे? महायुद्ध की अग्नि से पहले ही सब लोग झुलस कर निकले हैं। तब उन्हें यह आशा क्यों न करनी चाहिये कि अब स्वतन्त्र हो जाने के बाद उन्हें कुछ सुख प्राप्त होंगे? परन्तु सरकार के नियन्त्रण और पूँजीपतियों को सहूलियतें देने की नीति से मँहगाई युद्ध-काल की अपेक्षा भी स्वतंत्रता-काल में बढ़ती गई। पूँजीपतियों ने जरूर इसी काल में खूब मुनाफा कमाया। ये सब

बातें प्रत्यक्ष दिख रही हैं। मैं पूछना चाहता हूँ कि इसके लिए सरकार ने कौन-सी परिणाम कारक योजना बनाई ?"

"परन्तु अपनी सरकार के आगे जो विकट प्रश्न खड़े हुए हैं, उनका आप खयाल नहीं कर रहे हैं। आज वह क्रान्ति-काल से गुजर रही है। कितने ही प्रश्नों को उसे अभी हल करना है। कुछ प्रश्नों को उसने सफलतापूर्वक हल भी कर डाला है। ऐसी परिस्थिति में यह कैसे सम्भव है कि आज स्वतंत्रता मिली और कल सुखी हो गए ? थोड़ा धीरज भी रखोगे या नहीं ?"

"यह तो मैं भी समझता हूँ। ऐसा खयाल करना कि आज आजादी मिली और कल सुखी हो गए, पूर्णांश में ठीक नहीं है। पर,एक उदाहरण लीजिए ! यदि हमें किसी गाँव को जाना है और हम कहें कि घर से निकलते ही हमें वहाँ पहुँच जाना चाहिये, तो यह जरूर बे सिर-पैर की बात है। परन्तु हम जिस दिशा से जा रहे हैं, उससे उसी गाँव में पहुँचेंगे, या कहीं और भटक जाएँगे, यह समझने में देर नहीं लगती। सरकार की वर्तमान नीति के बारे में भी यही कहा जा सकता है। ऐसा लगता है कि हमारी कांग्रेस-सरकार दूसरी ही दिशा से जा रही है! कांग्रेस ने अपने सामने जो ध्येय रखा था, उससे वह अलग-सी हुई दिख रही है। इसीलिए लोग चिल्ला रहे हैं। सरकार आज पूँजीपतियों को नाराज करना कठिन समझता है। परन्तु जनता को दिए गए उसके पहले वचन भंग हो रहें हैं, इसकी उसे कोई परवाह नहीं मालूम होती।"

"नेहरू जैसा नेता जिस सरकार के शीर्षस्थान में हों, उसके बारे में आप ऐसी बातें करें, तो बड़े ताज्जुब की बात हैं।"

"सरकार के आलोचकों को उत्तर देने का यह अच्छा हथियार आप लोगों के हाथ लग गया है। पंडित नेहरू प्रधान मंत्री हैं। हम मानते हैं कि उनके ध्येय और उनके हेतु के विषय में किसी को संशय नहीं करना चाहिए। परन्तु वे अकेले कुछ नहीं कर सकते, किंवा नहीं कर सके, यही हमारी मुख्य शिकायत है। इसीलिए हमारा यह कहना है कि जितनी जल्दी सम्भव हो सके, उतनी जल्दी जनता का सच्चा प्रतिनिधिक मंत्रि-मण्डल अस्तित्व में आना चाहिए।

पण्डित नेहरू के बारे में व्यक्तिशः कोई भी आदर दर्शायगा, परन्तु वे जिस स्थान में हैं, वहाँ से कुछ नहीं कर सकते, यह बड़े खेद की बात है।"

"तुम सरकार की ओर दोष-पूर्ण दृष्टि से देखते हो। उसने क्या नहीं किया है, तुम्हें सिर्फ वही दिखता है। परन्तु उसने जो किया है, उसके लिए तुम आँखें बन्द कर लेते हो। शरणार्थियों का ही प्रश्न लो। कितना विकट प्रश्न है यह। इस पर सरकार की कितनी शक्ति और कितने रुपये खर्च हो रहे हैं। इस ओर कोई नहीं देखता। उसी तरह रियासतों के विलीनीकरण के प्रश्न को लो। कैसा जटिल प्रश्न था वह? पर, सरदार पटेल ने उसे किस खूबी से हाथ में लिया और अन्त में कैसा अच्छा फैसला कर दिखाया। क्या तुम्हें इसके लिए कुछ भी कृतज्ञता नहीं होती?"

"यह सच है कि सरदार पटेल ने रियासतों के प्रश्न को बड़ी चतुराई से हल कर दिया। परन्तु हमारा कहना यह है कि राजाओं को लाखों रुपया सालाना, मावजे के रूप में देने की क्या जरूरत थी? राजाओं ने इतने सालों तक अपनी रियासतों में जो लूट मचाई थी, वह क्या अभी पूरी नहीं हुई थी?"

"चन्द्रकान्त के मत एकांगी मालूम होते हैं। परन्तु यह सम्भव नहीं कि सरकार उन्हें एकदम स्वीकार कर ले।"—अभी तक शान्ति से बैठे सिगरेट के कश खींच रहे बाबा साहब ने कहा।

"सम्भव क्यों नहीं हो सकता?"—यह जवाब चन्द्रकान्त के बिल्कुल ओठों तक आ गया था। परन्तु इसी समय......

"अब बस कीजिये अपनी यह राजनैतिक चर्चा और बहस। आखिर इसका नतीजा क्या निकलेगा अन्त में?"—हेमलता ने बड़े दुलार से कहा।

"सिर्फ गले की कसरत के सिवा और कुछ नहीं!"—किंचित उपरोध की छटा लाकर चन्द्रकान्त की ओर देखते हुए सुरेश ने कहा।

"हेम, अब गनपत से कहो कि इसपर वह जल्दी चाय की दवा ले आए।" बाबा साहब ने इस तरह कड़वी हो रही चर्चा का मीठा अन्त किया।

चन्द्रकान्त रात को अपनी डायरी में लिख रहा था......

'ऐसा लगने लगा है कि मेरे जीवन-नाटक का एक नया अंक हाल ही में

शुरू हो रहा है। जब से हेमलता से मेरा परिचय बढ़ा है, तब से ऐसा भास हो रहा है कि मैं जीवन के नए काल-खण्ड में पदार्पण कर रहा हूँ। हेमलता भी मेरी तरह काव्य की दीवानी है। रोज दोनों मिलकर पढ़ते हैं, बातें करते हैं। बड़े मजे में वक्त कटता है हमारा। सुबह जब मैं उसके बँगले पर जाता हूँ, तब वह मेरा रास्ता देखती हुई बैठी रहती है। मैं भी वह समय चूक जाता हूँ, तो वैसा भूला-भूला लगता है। इस आकर्षण को क्या कहा जाय ?

हेमलता सुन्दर है काव्य की दीवानी है। परन्तु उसका स्वभाव अभी तक एक मुग्ध बालिका की तरह है। उसे अभी तक बाहरी दुनियाँ की हवा नहीं लगी है।

अभी मेरे अन्य कार्यक्रम जैसे पाठशाला का काम, कविता-लेखन, पठन-पाठन आदि ठीक तरह से चल रहे हैं। परन्तु सुबह एक डेढ़ घण्टे के लिए रोज दिन उदय होता है और अस्त होता है, ऐसा लगता है।

मुझे अपने मन के सामने यह स्वीकार करने में हानि नहीं जान पड़ती कि हेमलता को अपना हृदय दे बैठा हूँ। सौन्दर्य दर्शन से रसिक वृत्ति का उमड़ उठना, पूर्ण चन्द्र के दर्शन से समुद्र में ज्वार आजाने की तरह स्वाभाविक नहीं है क्या ?

यह सब कुछ है। फिर भी मैं अपने अन्य दैनिक कार्यों में शिथिलता नहीं आने देता। उलटे, प्रकाश के आने के बाद से तो पाठशाला आदि के कामों में और भी अधिक जोरों से भिड़ गया हूँ।

कुल मिलाकर ऐसा लगता है कि आज तक शान्ति से बहने वाले मेरे जीवन प्रवाह में अब जैसे गति आ गई है......

वह इष्ट स्थल पर पहुँच जायगा न ?......

दौड़ते-दौड़ते वह सीमा के बाहर जाकर कहीं अन्यत्र तो न भटक जायगा ? ....."

७

सुरेश आराम-कुरसी पर स्वच्छन्दता से पड़ा हुआ सिगरेट के कश पर कश खींचकर उनसे निर्मित धुएँ के बादल देख रहा था। बहुत देर से उसका यही काम चल रहा था।

दूसरे कमरे में स्टोव्ह का 'भर्रर्रर्र' संगीत शुरू था। तीसरा पहर था, कोई चार-साढ़े चार बजे थे।

उसके मनकी विचार-तरंगें और स्टोव्ह का संगीत, दोनों एक दूसरे में इतने लय हो गए थे कि—'साहब, चाय लाई हूँ'—शब्दों के कान में पड़ते ही वह होश में आया और उसने मेज़ की ओर देखा। पार्वती मेज़ पर चाय रखकर पास ही खड़ी थी।

सुरेश ने हाथ बढ़ाकर चाय की प्याली उठाई और पार्वती भीतर जाने के लिए मुड़ी। उसके कमनीय पृष्ठ भाग पर सुरेश की ललचाई आँखें कुछ देर के लिए अटक गईं।

इसके बाद पार्वती ने चाय के बर्तन धोए और उन्हें यथास्थान रख दिया। कमरे की सफ़ाई की तथा दीगर काम भी निपटा दिए। फिर—'अब मैं जा रही हूँ, साहब ?'—कहकर वह कमरे के बाहर चल दी।

पार्वती ने सुरेश के घर का काम ले लिया था। वह सुबह काम पर देर से आती थी। इसलिए चाय के वक्त हाज़िर नहीं रहती थी। पर, दो पहर

को जब वह काम पर आती, तब सुरेश के चाय पीने का भी वक्त होता, इसलिए दोपहर की चाय भी उसे ही बनानी पड़ती थी।

उसने सुरेश के घर का काम ले लिया था—अपनी खुशी से नहीं, बल्कि बाबा साहब के कहने से, उसे वह काम इच्छा न होते हुए भी स्वीकार कर लेना पड़ा था। बात यह हुई थी......

सुरेश कारखाने के बड़े मालिक का भाँजा था। इसलिए बाबा साहब उसके साथ पहले से ही बड़े आदर से पेश आया करते थे। जहाँ मालिक की कार का ड्राइवर भी अपने को मालिक से कम नहीं समझता था और आशा करता था कि कारखाने के सब कर्मचारी उसे मालिक की तरह ही इज्जत दें और इस शान से रहता भी था, वहाँ सुरेश बाबू तो मालिक के भांजे ही थे। तब कारखाने में उनका कैसा आदर होता था, इसकी कल्पना की जा सकती है। सुरेश के आराम का बाबा साहब बहुत ध्यान रखते थे। पहले उन्होंने उससे अपने बँगले में ही रहने का आग्रह किया। परन्तु अभी तक कॉलेज के छात्रावास में आज़ादी से रहने वाले सुरेश को यह बात पसन्द न आई। इसलिए उन्हीं के बँगले के पास असिस्टेन्ट केमिस्ट का एक, दो कमरे वाला बँगला, जो इस समय खाली पड़ा हुआ था, सुरेश के रहने के लिए दे दिया गया था। इस तरह उसके रहने की स्वतंत्र व्यवस्था तो हो गई; पर अभी उसके भोजन की समस्या शेष थी। कारखाने में कर्मचारियों के लिए एक भोजनालय था। परन्तु मालिक का भाँजा उसमें जाकर खाए,—यह उसे कैसे शोभा दे सकता था? इसलिए बाबा साहब ने उससे अपने ही घर भोजन करने की प्रार्थना की और उसने स्वीकार भी कर लिया। हेमलता की तरह रूपवती कॉलेज-कुमारी के सहवास का आकर्षण भी कुछ कम न था। इसलिए वह भोजन के बाद भी विशेषतः रात में बहुत देर तक उनसे गप्पें लगाता बैठा रहता था। इसी तरह एक दिन उसने पार्वती को बाबा साहब के घर काम करते हुए देखा, तो उससे पूछा कि क्या वह उसके घर भी काम करेगी? पार्वती के मन में आया कि वह इन्कार कर दे। परन्तु बाबा साहब ने कहा—'अरी, उनका ऐसा कितना काम होगा। यदि वे हमारे ही घर रहते, तो क्या तू उनका काम न करती?' जब बाबा साहब ने यह कहा, तो सुरेश

के घर का काम स्वीकार करने के लिए मज़बूर होना पड़ा। और अधिक आमदनी की आशा भी उसकी स्वीकृति का एक कारण थी।

यदि कारखाने के वातावरण में सुरेश का ध्यान किसी ने आकर्षित कर लिया था, तो वह थी हेमलता। प्रयोग-शाला में घन्टों बैठकर प्रयोग करते रहने की आदत और लगन उसमें पहले से ही था। यहाँ आकर उसे आदत और लगन नई पैदा नहीं करनी थी। परन्तु प्रयोग-शाला से बाहर आकर आजादी से घूमना, कुछ खाने की इच्छा हुई तो किसी बढ़िया होटल में चले जाना, तबियत जरा अधिक ऊब गई तो कोई अंग्रेजी सिनेमा देखने जा बैठना आदि बातों के लिए यह स्थान बम्बई नहीं था। यहाँ वह रोज़ दो-तीन घन्टे प्रयोग-शाला में काम करता था। जब वहाँ से उसका दिल उचटता, कारखाने में घूम कर भिन्न-भिन्न मशीनों की जानकारी प्राप्त करने लगता। परन्तु शीघ्र ही वह इससे भी ऊबने लगा। बाबा साहब के बँगले पर हेमलता के सहवास में उसका जो वक्त कटता था, वही उसकी नज़र में मजे से गुजरता था।

बम्बई में उसके दिन बड़े मजे में कटते थे। इसीलिए शायद उसे बार-बार बम्बई की याद आया करती थी। बचपन में जवानी में प्रवेश करने वाली उम्र, और हम-उम्र दोस्तों के बीच गुजरने वाली गैर-जिम्मेवारी जिन्दगी, किसी के भी जीवन का यह काल रमणीय होता है। और फिर सुरेश को जो धनिक बालक मिला था तब उसकी बात ही क्या पूछना है? जब वह बालक था, तभी उसके पिता उसे छोड़कर स्वर्ग सिधार गए थे और पति के बाद उसकी माताजी अपने भाई के के घर जाकर रहने लगी थीं। इस तरह मामा ने यानी कारखाने के मालिक ने उनके पालन-पोषण का दायित्व अपने ऊपर ले लिया था। इसलिए उसे किसी भी बात की कमी न थी और न कोई चिन्ता ही थी। विज्ञान की ओर उनका पहले से ही झुकाव था। इसलिए मेट्रिक पास पास करने पर उसने कॉलेज में साईन्स-कोर्स लिया और इसी साल रसायन-शास्त्र में एम० एस–सी० की डिग्री प्राप्त की। एम० एस–सी० के बाद इसका महत्वाकांक्षी मन विदेश की डिग्री प्राप्त करने के लिए आतुर हो उठा। उसने अपने मामा से अपनी यह इच्छा प्रकट की। उन्हें भी अपने कारखाने के लिए शुगर टेकनालाजी में एक विशेषज्ञ की

जरूरत थी। तब अनायास अपने घर का आदमी ही यदि विदेश जाकर इस विषय की डिग्री प्राप्त कर ले, तो यह सोने में सुगन्ध सरीखी बात थी। उन्होंने तय किया कि सुरेश ही इस काम के लिए विदेश भेजा जाय और वहाँ से लौटने पर वहीं कारखाने में उस पद पर नियुक्त किया जाय। उन्होंने कम्पनी की एक बैठक बुलाकर उसमें यह बात तय कर डाली। वह जून में अमेरिका जाने वाला था। इससे पहले एक सीज़न भर कारखाने में कुछ प्रयोग करने वाला था। और इस समय वह यही काम यहाँ कर रहा था।

सुरेश महत्वाकांक्षी था। परन्तु उसकी महत्वाकांक्षा का संवर्धन एक विशिष्ट वातावरण में हुआ था। उसकी माँ ने अपने पितृहीन पुत्र के सामने बचपन से ही अपने भाई का आदर्श रखा था।

कारखाने के बड़े मालिक साहब का नाम भाऊ साहब परांजपे था। कारखाने के लोग उन्हें बड़े साहब कहा करते थे। बात यह थी कि कारखाने में बहुत से साहब होने के कारण बड़े और छोटे साहब में कोई गलती न हो जाय, इसलिए इन्हें 'बड़े साहब' कहने का रिवाज पड़ गया था। उनका आज तक का जीवन अनेक उलट-फेरों और कशमकश में बीता था। बिल्कुल नीचे के दर्जे से वे ऊपर चढ़े थे। उनके पिता जी पूना की नगर-पालिका में एक साधारण क्लर्क थे। आमदनी के हिसाब से उनका परिवार बहुत बड़ा था। ऐसी हालत में भाऊ साहब ने बड़ी मुश्किल से मेट्रिक की परीक्षा पास की और वे शिक्षक हो गए। पर उनका महत्वाकांक्षी मन इतने से ही संतुष्ट होने वाला न था। उन्होंने शिक्षक होते हुए ही कॉलेज की टर्म्स भरना शुरू कर दिया और डिग्री भी प्राप्त कर ली। पर बी० ए० होने पर भी उनकी आमदनी में विशेष अन्तर न पड़ा। तब उन्होंने सोचा कि कोई स्वतंत्र रोज़गार करना चाहिए। उनका विश्वास था कि यदि पैसा कमाना हो, तो कोई निजी व्यवसाय करना चाहिए। उनके दो-चार धनी मित्र थे। उनके सामने उन्होंने अपनी योजना रखी। वे मित्र उन्हें आर्थिक सहायता देने के लिए तैयार हो गए। तब उन्होंने शिक्षक की नौकरी से इस्तीफा दे दिया और अपने मित्रों की मदद से पूना में एक आधुनिक ढंग का 'सहकारी भंडार' खोला। कुछ दिनों तक खूब धड़ाके से चलने वाली इस दूकान ने दो

साल के भीतर ही अपना फट्टा उलट दिया, जिससे भाऊ साहब के मित्र बिल्कुल डूब गए। इस अवधि में उन्होंने कई बड़े-बड़े लोगों से परिचय प्राप्त किया; और उन्हें बहुत-कुछ व्यापारिक अनुभव भी हो गया। इस पूँजी के जोर पर उन्होंने एक बैंक खोलने की भी कोशिश की। इसी समय के लगभग महाराष्ट्र के शक्कर के कारखाने खुलने लगे थे। तब भाऊ साहब का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने देखा कि कलापुर के इलाके में गन्ने की खेती के योग्य बहुत जमीन पड़ी है और वह ठेके पर सस्ते भाव में मिल सकती है। तब उन्होंने कारखाने की एक रूपरेखा तैयार की और कारखाना खोल दिया। उस कारखाने की यह ख्याति थी कि वह मध्यम वर्ग के लोगों की पूँजी से मध्यम वर्ग के लोगों के लिए ही खोला गया है। यह बात दूसरी है कि उस कारखाने के कर्णधार भाऊ साहब पाँच-छः कंपनियों के डायरेक्टर और कुछ लाखों के धनी थे और अब मध्यम वर्ग के न थे।

\+ + +

इस तरह अपने मामा का उदाहरण ही सुरेश के सामने मौजूद था। इसलिए यदि वह भी उसी तरह के स्वप्न देखता था, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात थी? उसे बार-बार यह लगता कि अपने मामा की तरह मैं भी कोई कारखाना खोलूँ। खूब रुपये कमाऊँ और नए-नए माडल की जगमगाती हुई मोटरों में शान से घूमूँ।

पार्वती के चले जाने पर बहुत देर तक सुरेश उसी तरह कुरसी पर पड़ा रहा। इसके बाद—"साहब! साहब हैं क्या?" की पुकार के साथ भेड़े हुए दरवाजे को खोलकर एक व्यक्ति भीतर आ गया। उसके हाथ में टाईप किए हुए कुछ कागज थे। छरहरा बदन, लम्बी नुकीली नाक और धँसी हुई आँखें—यह छोटी-सी मूर्ति लक्ष्मीनगर में बहुत विख्यात थी। इसका नाम था बबन राव कुलकर्णी। बबन राव यहाँ के दफ्तर का हेड क्लर्क था। कुत्सित मनोवृत्ति उसकी विशेषता थी। इस नीच मनोवृत्ति में उसकी बराबरी करने वाला समूचे लक्ष्मीनगर में शायद कोई न निकलता। लक्ष्मीनगर में ही क्यों, अन्यत्र भी

इतना नीच मनुष्य शायद ही कहीं दिखाई देता। छः-सात साल पहले वह कम्पनी में आया, तो उस समय दफ्तर में कोई जगह खाली नहीं थी। पर, वह बहुत रोया-गाया, इसलिए उसे कारखाने के भोजनालय में हिसाब-किताब रखने के काम पर नियुक्त कर लिया गया था ; परन्तु आगे चलकर अपनी चालाकी, धूर्तता और खुशामदी स्वभाव के कारण बढ़ते-बढ़ते वह हेड क्लर्क के पद पर पहुँच गया। जब कभी बड़े साहब कारखाने में दो-चार दिन मुकाम करते, तो वह व्यक्ति हमेशा उनके आसपास चक्कर काटता रहता, उनका अँगूठा चूमता रहता और कारखाने में होने वाली छोटी-बड़ी घटनाओं से उन्हें परिचित कराता रहता था। इस प्रकार वह बड़े साहब का कृपा-पात्र हो गया था। उसकी इन चुगलियों में, मशीनों की टूट-फूट, कौन साहब काम पर रोज कब आते हैं, कितनी देर काम करते हैं और कब घर चले जाते हैं—आदि बातों के साथ-साथ किसके घर कौन मेहमान आया, कौन किसके पास कब तक बैठता है, कौन गाँव गया है, आदि खानगी बातों का भी समावेश होता था। ऐसे समाचारों को इकट्ठा करने में उसकी कौवे जैसी दृष्टि थी। उसकी लिखावट जरूर इतनी सुन्दर थी कि उसके आगे टाईप-राईटर झक मारता था। हेड क्लर्क का पद प्राप्त होते ही उसकी कुत्सिकता जैसे खिल उठी। अबोध वाशिंगटन के हाथ की कुल्हाड़ी के समान उसने अपने कलम—कुल्हाड़े का उपयोग शुरू कर दिया। उसकी यह शान थी कि वह जो लिखता था, उस पर बड़े साहब आँख मुँदकर दस्तखत कर देते थे। जब बड़े साहब का यह हाल था, तो बाबा साहब किस खेत की मूली थे ? उनकी नीति इससे अलग कैसे हो सकती थी ? किसीके प्रति यदि उसके दिल में द्वेष होता, या कोई उसकी आँखों मे खटकता, तो उसकी खैरियत न थी। उसके खिलाफ उसकी कलम इस तरह चलती कि अन्त में वह आदमी बरबाद हो जाता। इस काम में वह सिद्धहस्त था। यद्यपि कलम पकड़ने वाले क्लर्कों की गिनती मजदूरों में नहीं होती, तथापि बबन राव की कलम की करामात देखकर कारखाने की भाषा में यदि उसे "स्किल्ड लेबर" कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी।

बबन राव चन्द्रकान्त के दो वर्ष बाद नौकरी पर लगा था। परन्तु कई

शरारतें और अनेक झमेले खड़ेकर वह हेडक्लर्क की कुरसी तक पहुँच गया था। चन्द्रकान्त का स्वभाव उसके बिल्कुल विपरीत था। इसलिए जिस पोस्ट पर वह आया था, अभी तक उसी पर बना हुआ था। उसे बिला वजह अधिकारियों के सामने चक्कर लगाना, उनकी खुशामद करना या किसी झंझट में पड़ना कतई पसन्द न था। फिर भी उसकी होशियारी अधिकारियों के ध्यान में आए बगैर न रही थी। उसने अपने सामने यह आदर्श रखा था कि व्यर्थ की बातों से पठन-पाठन, अध्ययन आदि अधिक महत्वपूर्ण है और इसीलिए वह कवि की हैसियत से साहित्य-प्रेमियों में बड़ा प्रिय हो गया था। बबन राव हेडक्लर्क भले ही हो गया हो, पर लक्ष्मीनगर के बाहर कोई कुत्ता भी उसे नहीं पूछता था। कोई उसका नाम तक न जानता था। चन्द्रकान्त की लोकप्रियता बबन राव के हृदय में काँटे की तरह चुभती थी। इसलिए अपने स्वभाव के अनुसार यद्यपि वह चन्द्रकान्त से ऊपरी तौर पर बड़ी मीठी-मीठी बातें करता था, तथापि हृदय में भीतर-ही-भीतर वह उससे जलता रहता था।

"कहिये बबन राव, कैसे पधारे?"—बबन राव को देखते ही सुरेश ने पूछा।

"कोई खास बात नहीं है। यूँही चला आया। इन कागजों को आज की डाक से ही भेजना है। इनपर आपके दस्तखत चाहिए। इसलिए इन्हें ले आया हूँ। सोचा आपको आफिस में बुलाऊँ, इससे मैं खुद ही कागज लेकर चला जाऊँ, तो क्या बुरा है?"—पलंग पर बैठकर जमाकर, दीवाल पर, अन्दर के कमरे में और इधर-उधर नजर फेंकते हुए बबन राव ने कहा।

"मेरे दस्तखत के लिए आपके आने की क्या जरूरत थी? आफिस के किसी चपरासी के हाथ कागज भेज देने से काम चल जाता। सिर्फ इस काम के लिए आपने क्यों तकलीफ की?"

"सिर्फ दस्तखत लेने का ही काम था, यह बात नहीं है। मुझे अपनी आँखों से एक बार यह भी देखना था कि आपका सब इन्तजाम ठीक हो गया है या नहीं? वरना, बड़े साहब मुझसे ही जवाब तलब करेंगे। चाय के लिए घर जा रहा था। इसलिए सोचा, एक पंथ दो काज करता चलूँ। आप देख ही रहे हैं,

आफिस के काम के मारे मरने की भी फुरसत नहीं है मुझे। यदि मैं एक-एक कागज़ ठीक तरह न देखूँ, तो काम ही नहीं होता। परसों एक दिन छुट्टी पर था। आपने देख ही लिया कि उस दिन कैसी गड़बड़ मच गई थी। कितना घुटाला होगया था सिर्फ मेरी एक दिन की गैरहाजिरी में! अब आप ही बताएँ कि मैं अकेला कहाँ-कहाँ देखूँ ?"

"पर आपके काम करने का ढंग बहुत बढ़िया है बबन राव जी !"

अजी साहब कहाँ का ढंग! छोड़िये भी इन बातों को। यह बताइए कि आपका सब इंतज़ाम ठीक होगया है न ? आपको कोई तकलीफ़ हो, या किसी चीज़ की जरूरत हो, तो मुझे बता दिया करें।

'अभी तो ठीक है। बाबा साहब-खुद मेरा खयाल रखते हैं। फिर मुझे तकलीफ़ कैसे होगी ? खैर, आप चाय लेने ही घर जा रहे हैं न ? तो ठहरिए, हम लोग यहीं बना लें।'

"नहीं इससे बेहतर तो यह है कि आप ही चलिए मेरे घर। वहीं चाय पी जाए और कुछ बातें भी हों।"

चाय-पान के बाद बबन राव ने बात-चीत के सिलसिले में पाठशाला की वर्ष-गाँठ के समारोह का विषय निकाला।

"आपकी दृष्टि से समारोह कैसा रहा ?"

'अच्छा रहा परंतु मुझे प्रकाश की विचार - सारणी और उन्होंने सरकार की जो आलोचना की, वह कुछ जँची नहीं। बाबा साहब के घर चन्द्रकान्त से इस विषय पर मेरी बहस भी हुई। पर, चन्द्रकान्त पर जरूर उस भाषण का बहुत असर हुआ मालूम होता है।"

"अजी चन्द्रकान्त की बात छोड़िये आप। उसकी कोशिश तो यह हो रही है कि येन - केन प्रकारेण प्रसिद्ध पुरुषो भवेत। दूसरी कोई बात नहीं है। आप ही बताइए, उसने चार मजदूरों का लिखना - पढ़ना सिखाकर कौन - सा मैदान मार लिया था, जिस के लिए इतना बड़ा समारंभ कर डाला। मैं पूछता हूँ, इसकी क्या जरूरत थी ; बाबा साहब बेचारे भोले जाव हैं। वे भी आ गए उसकी बातों में और अनुमति दे दी। फिर क्या था ?"

"प्रकाश का पक्ष लेकर उसने बड़ी बहस की मुझ से।"

"वह आजकल अपने को समाज-वादी कहता है। उससे जाकर कहिए कि चार मजदूरों को पढ़ना लिखना सिखा देने से ही कोई समाज-वादी नहीं हो जाता। आजकल वह जो काम कर रहा है, वह मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है। यदि बड़े साहब को इसका पता चल गया, तो...? मालिक और मजदूरों में जबरदस्ती भेद-भाव उत्पन्न करना उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं है। आज तक कई कारखानों में हड़तालें हुई होंगी, वहाँ के मजदूरों ने शिकायतें की होंगी, पर, यहाँ ऐसी कोई बात आज तक नहीं हुई है। तथ्य यह है कि हमारे बड़े साहब का व्यवहार और नीति दोनों महान् हैं। चन्द्रकान्त से कहिए कि वह चाहें, तो कविता लिखा करे; क्योंकि एक तो कविता प्रायः कोई पढ़ता ही नहीं है, दूसरे आजकल की कविताएँ तो ऐसी होती हैं कि उन्हें पढ़ो भी, तो उनका अर्थ समझ में नहीं आता और उधर कवि खुश रहता है कि हाँ, मैं भी कोई अलग प्राणी हूँ, जिसकी रचना को साधारण लोग समझ ही नहीं पाते?"

कुछ देर के बाद सुरेश को उसके बँगले पर छोड़ते हुए मदन राय ने ऑफिस की राह पकड़ी। पर इस समय उसके चेहरे पर कैसे संतोष की छटा झलक रही थी।

८

हेमलता की नींद आधी हो चुकी थी। फिर भी पिछली रात के जागरण से उसकी आँखों में नींद की जो खुमारी थी, वह अभी दूर नहीं हुई थी। इसलिए वह अलसाई हुई बिस्तर पर पड़ी थी और पिछली रात का प्रसंग उसकी नजरों के सामने घूम रहा था।

रात को बाबा साहब के बँगले पर, चन्द्रकान्त के काव्य-गायन का छोटा-सा कार्य-क्रम हुआ था, जिसमें बाहर के लोगों में सुरेश था और पड़ोस के जोशी साहब थे, जो अपनी पत्नी सहित पधारे थे। जोशीजी कारखाने के चीफ इन्जीनियर थे। उनका स्वभाव विनोदी था और अपने व्यवसाय के हिसाब से उनका साहित्य-प्रेम भी काफी अच्छा था। यदि उन्हें पता चल जाता कि बाबा साहब के घर चन्द्रकान्त जैसे कवि का काव्य-गायन हुआ और उसमें उन्हें निमंत्रित नहीं किया गया, तो वे हेमलता की खूब खबर लेते।

काव्य-गायन के समय जोशीजी के चेहरे के भावों को देखकर पता चलता था कि उसमें वे काफी दिलचस्पी ले रहे हैं। वे कवि को दाद देते जाते और बीच-बीच में कविताओं के नाम भी सुझाते जाते, जिन्हें वे स्वयं कवि के मुख से सुनना चाहते थे। पर, सुरेश और बाबा साहब कुल मिलाकर कुछ उदासीन-से ही दिखते थे। लगता था, जैसे उन्हें कोई विशेष मज़ा नहीं आ रहा था। हाँ, यदि कवि कोई प्रेम-गीत कहता, या कोई कविता फिल्मी गीत की तर्ज पर सुनाता, तो सुरेश जरूर कुछ फड़क उठता था। लगता था, जैसे उसमें कुछ

चैतन्यता आ गयी है और ऐसे समय, हेमलता को अनुभव होता था कि, वह रह-रह कर उसकी ओर ही देखता था।

जोशी साहब की याद के साथ ही, काफी-पान के समय उनमें और चन्द्रकान्त में जो बातें हुई थीं, वे भी हेमलता को याद आ गई और उस याद से इस समय भी उसके अधरों पर मुस्कराहट की रेखाएँ खिन्च गयीं।

बात यह थी कि काव्य-गायन के बाद काफी-पान का कार्य-क्रम था। सब लोग काफी की चुस्कियाँ ले रहे थे। उसी समय चन्द्रकान्त और जोशीजी में कविता का विषय लेकर बातें छिड़ गयीं। जोशीजी कह रहे थे—"आजकल की मासिक पत्रिकाओं में, 'युगप्रवर्तक कविता' के नाम से नये ढंग की जो रचनाएँ प्रकाशित होती हैं, वैसी सुन्दर कविताएँ आपने शायद अभी तक नहीं लिखी हैं। उन कविताओं से तो भगवान ही बचाए। हम उन्हें समझ ही नहीं पाते! बचपन में जब हम पुराने कवियों की कविता पढ़ते थे, तो एक बार पढ़ते ही उन्हें भी नहीं समझ पाते थे। परन्तु इसका कारण यह था कि उनमें कुछ कठिन शब्द रहा करते थे। जहाँ उन शब्दों का अर्थ मालूम हो गया कि हमें पूरी कविता का मतलब चट समझ में आ जाता था। इसका मतलब यह नहीं है कि उन कविताओं में अर्थ रहता ही न था। परन्तु आप लोगों की बहुत-सी आधुनिक कविताएँ ऐसी होती हैं कि किसी भी दृष्टि से देखिए, उनमें अर्थ नाम की कोई चीज ही नहीं मिलती। और, यदि हम चाहें कि उन्हें किसी अगम्य सूत्र की तरह कम-से-कम, तर्ज के साथ धड़ाधड़ पढ़ें, तो वह भी नहीं हो सकता क्योंकि वह मुक्त छन्द होता है। यदि उन्हें गद्य की तरह ही पढ़ने की कोशिश करें, तो उनके वाक्यों में शब्द कुछ इस तरह उलट-पुलट कर रख दिए जाते हैं कि पढ़ते समय कई बार शब्दों से टकराकर गिर पड़ने के मौके आ जाते हैं। पहले कविता के लिए वृत्ति-बद्ध रचना की जरूरत रहा करती थी। इसलिए, कवि बनने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को कम-से-कम पिंगल-शास्त्र का अध्ययन करना आवश्यक होता था। परन्तु आजकल तो कविता मुक्त छन्द में होती है। कवि बनने के लिए अब सभीको स्वतन्त्रता है। यह भी कह सकते हैं कि आज कोई भी व्यक्ति पूरी स्वच्छन्दता से कवि बन जाता है।"

उनकी ये बातें सुनकर चन्द्रकान्त को हँसी आए बगैर न रही। वह बोला... "आप जैसा कह रहे हैं, उस तरह की हास्यास्पद परिस्थिति थोड़ी बहुत पैदा जरूर हो गई है, इसमें संदेह नहीं। परन्तु सारी नई कविता या उसके प्रकार त्याज्य हैं, यह नहीं कहा जा सकता। मुक्त छन्द की ही बात लीजिए। हम देखें कि इस छन्द का जन्म कैसे हुआ? इस छन्द का जन्म इस कल्पना से हुआ कि कवि की प्रतिभा को स्वच्छन्द उड़ान को किसी वृत्त के बंधनों में जकड़ना न पड़े; परन्तु किसी भी अच्छी कल्पना की, उसके अनुयायियों द्वारा ही आगे चलकर विडम्बना होने लगती है। यदि वही बात मुक्त छन्द के विषय में भी होने लगी है, तो इसमें आश्चर्य क्या है? और .....कल्पना की स्वच्छन्द उड़ान के लिए, वृत्तों की मर्यादा को तोड़ने वाला मुक्त छन्द काव्य-रचना के शौकीनों को अपनी कल्पना की दरिद्रता छिपाने के लिए काम देने लगा है। यही बात नव कविता के नाम पर कुछ भी घसीट देने वालों की है। मेरा कहना यह है कि भावना-अभिव्यक्ति के पुराने स्वरूप और पुराने संकेतों को बदलने में कोई हर्ज नहीं। परन्तु जिन नए संकेतों का उपयोग आवश्यक है, वे अगम्य, असंबद्ध और रस-हीन नहीं होने चाहिए। पर, इसकी ओर कौन ध्यान देता है? कभी-कभी तो यह संदेह होता है कि कवि जो लिखता है, वह स्वयं भी समझ पाता है या नहीं?"

"वाह चन्द्रकान्त जी! तुम स्वयं कवि हो और अपने जाति-भाइयों का समर्थन करने के बदले हमारी तरह ही बातें करने लगे, इसे क्या कहा जाय?"

"मेरी आलोचना का मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि मैं नव कविता का और काव्य-क्षेत्र में हो रहे नए प्रयोगों का द्रोही हूँ। उलटे, इस प्रकार का प्रयोग करने वाले कुछ सुकवियों के प्रति मेरे मन में आदर है। मेरा विरोध उन कवियों से है, जो सिर्फ चमक-दमक के लिए नव काव्य के नाम पर कुछ भी घसीटकर कागज काले किया करते हैं। नये काव्य की इस बेहिसाब फसल को देखकर कभी-कभी मन में आता है कि मराठी भाषा के एक प्रसिद्ध कवि 'मराठी काव्य की नयी धारा के प्रवर्तक' केशवसुत की तरह एक व्यंग्य कवि आजकल भी

होना चाहिए था। उसे व्यंग्य-काव्य के लिए आज विपुल सामग्री प्राप्त होगी ......"

इस प्रकार वे न जाने कितनी देर तक बातें करते रहते। इन बातों से हेमलता का काफी मनोरंजन हो रहा था। पर, बाबा साहब और सुरेश उनसे ऊबकर ऊँघने लगे थे। जब बाबा साहब से न रहा गया, तो उन्होंने कहा—"जोशी साहब, अच्छा हो, यदि आप ये बातें बन्द कर दें। इनके कारण हमें नींद आने लगी है। चन्द्रकान्त को एक-दो कविताएँ और सुनाने दीजिए......"

इसके बाद चन्द्रकान्त ने अपनी 'प्रीति-विश्व' शीर्षक कविता सुनाई, जो सभी को अच्छी लगी। हेमलता को तो उसे सुनते हुए बहुत आनन्द हो रहा था। अब भी उसकी याद आते ही उसके शरीर पर मारे आनन्द के सारे रोम खड़े हो गये। कल रात को पढ़ते-पढ़ते उसे नींद आने लगी थी। इसलिए उसने चन्द्रकान्त की कविताओं की नोट-बुक इस कविता पर, चिन्ह के लिए एक कागज रखकर, अपने बिस्तर के नजदीक स्टूल पर रख दी थी। उसने उसे उठाया, चिन्हित पृष्ठ खोला और उस कविता को पढ़ना शुरू किया।

पढ़ने के बाद वह मन-ही-मन बोली—

"प्रीति से बोझिल हुए मन का यह कितना सुन्दर वर्णन किया है चन्द्रकान्त ने।" उसकी विचार-शृंखला शुरू हो गई स्वयं अनुभव किए बिना प्रीति का इतना उत्कृष्ट वर्णन कोई कर सकता है क्या? किसके प्रेम में पड़कर उन्होंने यह वर्णन किया होगा? यहाँ मेरे सिवा और कौन है उनके सहवास में? क्या, मुझपर उनका जो प्रेम है, उसी से उन्हें यह कविता लिखने की स्फूर्ति प्राप्त हुई है?,' इस कल्पना से हेमलता के शरीर पर रोमांच के फूल खिल उठे। मन में विचार तरंगे प्रवाहित होने लगीं—"पर नहीं, मेरी यह कल्पना कितने साहस की है। कवि की किसी कविता के विषय में इस प्रकार तर्क-कुतर्क करना यानी..... छिः यह व्यर्थ है। क्या परसों चन्द्रकान्त ने ही "माधव जुलियन" मराठी भाषा के एक स्वर्गवासी प्रसिद्ध कवि की कविताओं के बारे में बातें करते हुए नहीं कहा था कि वे वास्तव में किसी भी तरुणी से स्फूर्ति पाकर नहीं लिखी गई हैं? फिर भी रसिकों की दृष्टि में वे उत्कृष्ट प्रकार की प्रेम कविताएँ हैं। क्या......क्या

चन्द्रकान्त की कविता भी इसी प्रकार की नहीं हो सकती ?......" इस शंका से उसके हृदय में, जैसे कहीं कुछ चुभ गया। वह अस्वस्थ सी हो गई। उसने उस कविता के नीचे कोने पर दृष्टि डाली। सदा की भाँति चन्द्रकान्त ने वहाँ दिनांक भी नहीं लिखा था। परन्तु क्रमांक से और स्याही की ताजगी से उसने अनुमान किया कि वह कविता हाल ही में लिखी गई है। मन की इस डाँवाडोल दशा उसे एक बार यह भी लगा,—"चन्द्रकान्त जब मेरे घर आये, तब उन्हींसे क्यों न पूछ लूँ कि यह कविता आपको कैसे सूझी ? ...और उन्होंने यदि उत्तर न दिया, अथवा ऐसा उत्तर दे दिया, जो मेरे लिए निराशा जनक हो, तो...... ? नहीं, ऐसी कोई बात न पूछनी चाहिए और यह उचित भी न होगा।"

उसकी नजर उस कविता पर फिर घूमने लगी। उसे लगा,—"चन्द्रकान्त की मनोवृत्ति का ही नहीं, बल्कि मेरी मनोवृत्ति का भी स्पष्ट प्रतिबिम्ब उसमें दिखाई देता है। मेरी दशा भी उस कविता में वर्णन की हुई दशा की तरह ही नहीं हो गई है क्या ?"

मेरे जीवन में जब से चन्द्रकान्त ने प्रवेश किया है, तब से मैं कितनी बदल गई हूँ ! पूना से मैं यहाँ आई, तो मुझे लगता था कि कहाँ जंगल में आ पड़ी हूँ। परन्तु चन्द्रकान्त का और मेरा शीघ्र ही परिचय हो गया। तब से दिन कैसे जल्दी-जल्दी बीतते जा रहे हैं। मुझे बड़ी चिन्ता थी कि इतनी लम्बी छुट्टी कब समाप्त होगी। परन्तु अब मुझे आश्चर्य हो रहा है कि छुट्टी इतनी जल्दी कैसे खत्म हो गई। लो, आगामी सप्ताह से ही कॉलेज शुरू हो जायगा।"

उसे अपनी पूना की सहेलियों की याद आई – "एक-एक का कैसा विनोदी स्वभाव था। आते वक्त तो मेरा मजाक करते-करते मेरी नाक में दम कर दिया था उन्होंने ! पर जब हम एक-दूसरे से बिदा हुईं, तब अवश्य सबकी आँखें डबडबा गई थीं। सुलभा साठे और वसुमति केलकर तो चार-पाँच साल से हाईक्लास तक मेरे साथ थीं। आते समय मैंने उन्हें लम्बे-लम्बे पत्र लिखने का वचन दिया था।

परन्तु यहाँ आने के बाद मुझसे आजतक यह न हो सका। सुलभा साठे ने कहा था—"तू बड़ा सुन्दर पत्र लिखती है री। तेरे जैसा रूप प्राप्त होना तो सम्भव नहीं है, पर, कम-से-कम तेरे पत्र लिखने की थोड़ी-सी कला ही हमें मिल जाय। लक्ष्मीनगर पहुँचने पर अच्छा हाथ-हाथ भर लम्बा, पुराने जमाने की पत्रिकाओं की तरह, अथवा आजकल की भाषा में कहूँ तो, एक दीर्घ कहानी की तरह पत्र भेजना। और फिर तू आजकल लिखने भी लगी है। होने दे अभी से अभ्यास!"

उस समय मैंने भी उससे "हाँ-हाँ" कह दिया था। उस समय मैं सोचती थी कि पत्र लिखना छुट्टियों में समय काटने का अच्छा साधन रहेगा। पर उसे ही क्या, किसी को भी आज तक एक पत्र न लिखा मैंने। वे भी अपने मन में कहती होंगी—"हेमा आखिर हमें भूल गई न!"

रोज गलबहियाँ डालकर घूमने वाली मेरी सहेलियाँ—सच, कितने दिनों से मुझे उनकी याद नहीं आई! इतनी खो गई हूँ मैं इस वातावरण में!

चन्द्रकान्त की कविता की पंक्तियाँ उसे आँखों के सामने दिखने लगीं—

उन्हें पढ़कर वह मन-ही-मन कहने लगी—

"यानी......मेरे मन में भी प्रीति ने जादू कर दिया है क्या? मुझमें जो परिवर्तन हुआ है, वह प्रीति के प्रभाव का ही द्योतक है क्या? मेरी प्रीति—किस से है, मेरी प्रीति?"

उसकी दृष्टि के सम्मुख चन्द्रकान्त की मूर्ति खेलने लगी।

चन्द्रकान्त ने मेरे मन पर मोहनी डाल दी है क्या? उनके व्यक्तित्व पर मैं ठगा गई हूँ क्या? उनकी कविताओं पर मैं लुब्ध हूँ, इसमें संदेह नहीं। इस मोहनी को—इस आकर्षण को ही प्रेम कहते है क्या? रोज उनके पथ की ओर मेरी आँखें लगी रहती हैं। किसी दिन वे न आए, तो मेरे मन में चिन्ता होने लगती है। ये किस बात के लक्षण है? सुरेश के लिए कहाँ मुझे ऐसा आकर्षण व्यग्र करता है? उसके लिए कहाँ मुझे इस तरह की चिन्ता रहती है?"

सुरेश की मूर्ति उसके मनःचक्षु के सामने आई।

सुरेश दिखने में कुछ बुरा न था। वह सुख और ऐश्वर्य में पला था,

जिसकी छाया उसकी देह पर दिखाई पड़ती थी। चन्द्रकान्त के गाल की हड्डियाँ किंचित उभरी हुई थीं, परन्तु सुरेश के गोल-मटोल गालों पर उनका नामोनिशान भी न था। परन्तु चन्द्रकान्त के बर्ताव में जो चातुर्य था उसकी नजर में जो तेज था उसके शब्दों में सौन्दर्य था—वैसा कोई लक्षण सुरेश में दिखाई नहीं देता था।

"व्यक्तित्व देह सौष्ठव से एक भिन्न चीज है।"—यह विचार भी हेमलता के मन में आया। उस व्यक्तित्व के कारण ही सुरेश, चन्द्रकान्त के आगे निष्प्रभ लगता है—उदयोन्मुख सूर्य के सामने अस्तोन्मुख चन्द्रमा के समान! वैसे सम्पन्नता और शिक्षा की दृष्टि से सुरेश, चन्द्रकान्त से कहीं बढ़ा-चढ़ा है। "यदि मुझे चन्द्रकान्त न मिलते, अकेले सुरेश ही मिलते, तो मैं उनकी ओर आकर्षित हुई होती क्या?"—यह भी एक विचार उसके मन में झाँक गया।

६

उस दिन शंकर की 'आफ ड्यूटी' थी, यानी छुट्टी का दिन। उस दिन उसे काम पर नहीं जाना था। आखिरी रात पाली करके सुबह चार बजे वह घर लौटा और आकर जो सोया, तो फिर दस बजे ही उठा। हर 'आफ' के दिन उसके उठने का समय यही रहता था। इसके बाद दूसरे दिन तक उसे काम पर नहीं जाना पड़ता था। इसलिए यदि हम यह कहें कि वह एक दिन, उस दम्पति को तीज-त्यौहार की तरह लगता था, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। यह बात सिर्फ इसी दम्पति के विषय में नहीं है। दिन-पाली और रात-पाली के चक्कर में फँसे हुए सभी मजदूरों की प्रायः यही मनोवृत्ति होती है। भोजन, विश्राम, बाजार-हाट इत्यादि दैनिक काम पूरी तरह निपटा कर या कभी-कभी अधूरे छोड़कर, भोंपू की आवाज सुनते ही दौड़कर कारखाने जाने वाले मजदूरों को 'आफ' का ही एक दिन ऐसा मिलता है, जिस दिन वे भोंपू की दीर्घ कर्कश आवाज की जरा भी परवाह नहीं करते, बल्कि उन्हें उसकी हँसी उड़ाने की इच्छा होती है। उस दीर्घ एवं कर्कश स्वर को सुनकर वे कहते हैं—'क्यों नाहक स्टीम खर्च कर रहा है, यार!'

शंकर के 'आफ' के दिन पार्वती भी अपने काम जल्दी-जल्दी पूरा कर घर आ जाती थी। फिर वे दोनों मिलकर हँसी-मजाक के बीच दोपहर का खाना खाते और कम्बल बिछाकर पड़े-पड़े इधर-उधर की बातें किया करते थे। इस तरह मजे से चार बजे तक का वक्त काटकर पार्वती चाय बनाती और फिर अपने

काम पर चल देती थी। इसके बाद वह शाम को चिराग जलते-जलते घर लौटती और फिर दोपहर की तरह हँसी-मजाक के बीच उनके भोजन होते थे। इसके बाद बिस्तर पर पड़े-पड़े नींद आते तक दोनों गप्पें हाँकते रहते थे।

आज भी नित्य की भाँति दोपहर का खाना पूरा कर दोनों पड़े-पड़े गप्पें लड़ा रहे थे। कुछ समय बाद पार्वती को नींद आने लगी। इसलिए दोनों चुपचाप पड़े रहे। शीघ्र ही पार्वती सो गई। शंकर उसके निद्राधीन मुख की ओर बहुत देर तक टकटकी लगाए देखता रहा। पार्वती के किंचित स्मित से खिले हुए कपोल, कुछ दबी-सी पर शानदार नाक, उस पर नित्य प्रेम की वर्षा करनेवाली आँखों का बन्द पलकें, माथे के दायीं ओर खेलनेवाली घुँघराले केशों की लटें और साँवले वर्ण के गोल चेहरे पर हाल ही में चमकनेवाली वह ताजगी! हाँ, वह ताजगी हाल ही में चमकने लगी है—यह उसके ध्यान में आ गया था। पार्वती ने ही उससे एक बार लजाते-लजाते कहा था कि वह गर्भवती है। उसी गर्भ की छाया उसके चेहरे पर पड़ रही थी। वह शीघ्र ही एक बच्चे को जन्म देनेवाली थी, और वह बाप बननेवाला था। उसने 'टँहाँ-टँहाँ' करनेवाले एक गोल-मटोल शिशु की मूर्ति अपनी कल्पना द्वारा बनाई और उसके अंतरंग में मधुर लहरें उमड़ उठीं।

वह बड़ी आतुरता से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा था। वही नहीं, बल्कि उसके माँ-बाप भी। शंकर अपने माँ-बाप का एकलौता बेटा था। कई साल के बाद उसकी पीठ पर उन्हें एक लड़की हुई थी। उसका नाम मुक्ता था। पर, वह दो साल भी न रही। एक दिन मामूली ज्वर आया और वह हमेशा के लिए चल बसी। मुक्ता की मृत्यु के एक साल बाद ही शंकर का विवाह हुआ। मुक्ता की याद आती, तो शंकर की माँ कहती,—"क्या करूँ, उसकी उम्र पूरी हो गई थी! भगवान के घर से उसका बुलावा आ गया और वह उनके पास चली गई। अब शंकर का बेटा गोद में खेलेगा, तो समझूँगी कि मेरी मुक्ता ही उस बच्चे के रूप में मुझे मिल गई है।" शंकर के विवाह के चार महीने बाद पार्वती घर में आई। शंकर की माँ ने बड़े ठाट-बाट से इस अवसर

पर अनुपम समारोह किया। ऐसे अवसर पर जो खुशियाँ मनाई जाती हैं, उनके मनाने में शंकर की माँ ने कुछ भी नहीं उठा रखा। उसने बहुत रुपया लगा दिया। वह कहती—"शंकर मेरा एकलौता बेटा है। मेरी यही पहली और आखिरी बहू है। और मेरी बहू पार्वती चाँद-सी है और वह एक पटेल की बेटी है। इसलिए मैं अपनी सब साधें अपनी सारी इच्छाएँ पूरा करूँगी। यदि शंकर की किस्मत तेज़ होगी और वह सगुन से आई होगी, तो हमने जो ख़र्च किया है, वह सब लौट आयगा। हमें रूपयों की कोई कमी न रहेगी। परंतु मैं अपनी आँखों के सामने इन दोनों के लिए कुछ कमी न रहने दूँगी।" शंकर की माँ की इच्छाएँ बड़ी-बड़ी थीं और उसे बहू भी उसके मन की मिली थी। फिर उसकी साधों का क्या पूछना था।

इसके बाद महीने-पर-महीने बीतते गए। परंतु शंकर की माँ की इच्छा के पूर्ण होने के कोई चिह्न दिखाई न देते थे। इस प्रकार जैसे-जैसे बरसें गुज़रने लगीं वैसे वैसे उसकी निराशा बढ़ने लगी। बस, पार्वती पर सदा स्नेह की वर्षा करने वाली वही शंकर की माँ, जब उससे ज़रा-ज़रा सी बातों पर चिढ़ने लगी। वह कभी-कभी अपनी पड़ोसिनों से कहती भी थी—"राम जाने, यह कैसी लड़की है। हम जब इस उम्र की थीं, तब हमें दो-दो बच्चे हो गए थे।"

बेचारी पार्वती यह सुनती, तो छोटा-सा मुँह कर चुपचाप बैठी रह जाती।

परंतु जब शंकर की, नहीं नहीं पूरे घर की बहुत दिनों की चिरवांछित मनोकामना पूरी होने का समय आ गया था, इसीलिए उसे और भी अधिक खुशी हुई थी।

और वह ऐसे आनंददायक विचारों में खो रहा था कि पार्वती नींद में बड़बड़ाई—"बीबी जी, मैं जा रही हूँ अब! उनके घर जानेका वक्त हो गया है।" जब भी वह नींद में इस तरह बड़बड़ाने लगती थी, तब शंकर उसे एकदम जगा दिया करता था। इस वक्त भी उसने यही किया। नींद से एकदम जाग जाने के कारण उसने इधर-उधर देखा। और फिर शंकर के यह पूछने पर कि नींद में क्या बक रही थी; उलटे उसीसे पूछा—"कहाँ? क्या?" क्या सचमुच

उसे कुछ याद न था, या सिर्फ बात उड़ाने के लिए ही उसने यह कह दिया था—कौन जाने।

इसके बाद उसने पड़े-पड़े ही दोनों हाथ जोड़कर सिर पर ले जाते हुए एक-दो अँगड़ाइयाँ लीं और शंकर से पूछा—"चार बज गए क्या ?"

शंकर बैठा हुआ उसकी ओर देख रहा था। उसकी यह हरकत देख कर वह बोला—"पारू आजकल तू ज्यादा मेहनत न किया कर ! सच पूछा जाय, तो आराम करने के बजाय तू नए-नए काम अपने सिर पर ले रही है। तेरी तो यह हमेशा की आदत ही है। कम-से-कम इस हालत में तो आराम कर !"

उसका एक-एक शब्द स्नेह-रस से सराबोर था। यह बात न थी कि पार्वती ने इसे महसूस न किया हो। फिर भी वह बोली—"जब तक बनता है, किए जाती हूँ। फिर आराम तो करना ही है। और उस वक्त जो खर्च लगेगा, उसका भी तो पहले से कोई इंतज़ाम कर लेना चाहिए। तुम्हारे कहीं हंडे थोड़े ही गड़े हैं।"

पार्वती के अंतिम वाक्य में मज़ाक की पुट थी और सचमुच में उसने मज़ाक ही किया था।

"हमारे हंडे कहीं गड़े होते, तो हमारी ज़मीन साहूकार के पेट में कैसे जाती और हम लोग भी यहाँ आकर इस तरह मजदूरी क्यों करते ?"

शंकर की वाणी में विषाद का स्वर था।

"पर अभी क्या हो गया है ! कौन हमारी उम्र बीत गई है। जब तक हमारे हाथ-पाँव चल रहे हैं, तब तक हम ऐसी दस ज़मीनें ले लेंगे। फिर उसी ज़मीन को क्या पकड़े बैठे हो ? फिर वह भी तो हम अगले साल तक छुड़ा लेंगे। ठीक कहती हूँ न ?" इसके बाद वह किंचित रुक कर, अत्यन्त स्निग्ध स्वर में बोली—"हमें सुख न मिला, तो न सही। पर, कम-से-कम हमारा बेटा तो सुख और संतोष से रहेगा। हमें इसीमें सुख और संतोष मान लेना चाहिए।"

पार्वती की मीठी बातें शंकर के लिए नई न थीं।

पार्वती उठी। उसने चटपट चूल्हा जलाकर चाय तैयार की और फिर वह अपने काम पर बाहर चली गई।

पार्वती के चले जाने पर शंकर कुछ देर तक और पड़ा रहा। उसकी आँखों के आगे पिछली यादें एक-के-बाद एक आने लगीं। पार्वती की मीठी बातों के कारण एक बात ज़रूर हुई कि वह साहूकार की बात थोड़ी देर के लिए भूल गया।

पीपलगाँव के रामराव पटेल के खेत से लगा हुआ, शंकर का भी एक छोटा, पर कुवें वाला एक खेत था; जिसमें आबपाशी से फ़सलें पैदा की जाती थीं। बचपन से ही शंकर को खेत में जाकर काम करने का शौक था। बोनी, कटाई, निराई आदि कृषि-कार्यों में वह अपनी उम्र के मुताबिक अपने माँ-बाप का हाथ बटाया करता था। जब कुछ बड़ा हुआ, तब गुलेल से फ़सल चुगते हुए पक्षी उड़ाना, दाँय के समय बैल हाँकना, चरस द्वारा कुवे से पानी निकलना आदि काम भी वह करने लगा था। और इन कामों के करने में उसे बड़ा मज़ा आता था। आगे चलकर ठंड के दिनों में बड़े सबेरे उठकर वह खेत में जाता और मचान पर खड़े होकर गुलेल चलाकर पक्षियों से फ़सल की रक्षा करता था। इस काम में वह बड़ी दिलचस्पी लेता था।

एक बार ज्वार की रखवाली के दिन थे। कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। नित्य की भाँति वह अकेला ही बड़े भिनसारे गुलेल लेकर खेत चला गया था। मचान पर चढ़कर फसल पर बैठी चिड़ियाँ उड़ा रहा था। गुलेल की फटाफट के साथ मुँह से "हाऽ हाऽ" स्वर निकल रहे थे। इसी समय "अरे कौन है यह? पखेरू उड़ाता है या लोगों की जान लेता है?"—की आवाज, पटेल के खेत में लगी ज्वार की फसल की तरफ से आई और शंकर के कान में पड़ी। और थोड़ी ही देर में यह प्रश्न पूछने वाली शंकर के खेत में आकर उसके सामने खड़ी हो गई। वह थी रामराव पलेट की बेटी पार्वती।

"क्यों, सबेरे-सबेरे क्या लोगों की जान लेने आए हो?" उसके मुँह से बनावटी क्रोध के शब्द बाहर निकले।

पार्वती को देखते ही वह थोड़ी देर के लिए मचान से नीचे उतर आया।

बारह-तेरह वर्ष की पार्वती की वह नाटी; सुन्दर-साँवली-सलोनी मूर्ति बनावटी क्रोध से तनी हुई उसकी वे भौंहें और फूले हुए गाल—यह सब देखकर उसे बड़ा मजा आया।

'और लोग भी सवेरे-सवेरे यहाँ क्यों आ जाते हैं?'

'जैसे तुम आ जाते हो, वैसे ही क्या तुम लोग नहीं हो? फिर तुम क्यों आए?'

'हम आए हैं पखेरू मारने –' उसने धड़ाके से उत्तर दिया। उसकी बातों और निगाहों में पार्वती ने कौन-सा रहस्य छिपा हुआ देखा—हम नहीं कह सकते। पर, उसने 'अच्छा-अच्छा' बड़े आए कहीं के! कहकर गरदन को एक झटका दिया।

इसके बाद वे दोनों आपस में स्वच्छन्तापूर्वक बातें करने लगे।

इसी तरह इस प्रसंग के बाद की, एक सुबह की बात शंकर को याद आई।

उस दिन सवेरे रामराव पटेल गाँव के दो-तीन लोगों को अपने साथ लेकर शंकर के पिताजी के पास आए थे। रामराव शंकर के पिता—सिवाजी के घर कभी-कभी अकेले आया करते थे। परन्तु आज कुछ लोगों को साथ लेकर वे क्यों आए होंगे, यह प्रश्न शंकर के सामने उपस्थित हुआ। उनकी बात-चीत के दौरान में पार्वती के ब्याह की बात निकली, तो वह समझ गया कि विषय क्या चल रहा है। थोड़ी देर में उस बातचीत में उसने अपना भी नाम सुना, इस-लिए फिर उसके सामने दूसरा प्रश्न उपस्थित हुआ—मेरा विवाह पार्वती के साथ हो रहा है क्या? 'इस विचार से उसके शरीर में हर्ष की लहरें उमड़ उठीं। उसे कुछ दिन पहले की घटना याद आई और उसने मन-ही-मन कहा –'तभी चार दिन पहले... ..'

चार दिन पहले उसने अपनी माँ से सुना था कि पार्वती का विवाह गाँव के बाजी देशमुख से तय हो रहा है। इतने दिनो तक अपने साथ हँसने-खेलने वाली पार्वती अब दूसरे की हो जायगी, फिर वह मुझसे क्यों बातें करेगी और मैं भी उससे किस तरह हँसी-मजाक कर सकूँगा—यह सोचते-सोचते उसका जी छटपटा उठा था। एक दिन शाम को जब, वह केलों में पानी दे रहा था, तब

यही विचार उसके मस्तिष्क में कोलाहल मचा रहे थे ? उसी समय उसने देखा कि गाँव की तरफ से पार्वती अपने खेत की ओर चली आ रही है। उसे देखकर उसने सोचा, पार्वती को रोकूँ और स्वयं उससे ही क्यों न पूछ लूँ कि बात क्या है ? ऐसा सोचकर उसने चरसे को पानी में ही डूबा हुआ छोड़ दिया और वह खड़ा हो गया। जब पार्वती उसके नजदीक से गुजरी, तो वह बोला—'सुनता हूँ, अब तुम देशमुखन बाई होने वाली हो। फिर हम गरीबों से बातें करना तुम्हें कैसे रुचेगा ?'

पार्वती खड़ी हो गई और उसकी ओर देखकर क्रोधावेश में बोली—'ए, उस देशमुख का नाम भी न लेना मेरे सामने। तुमसे कहा किसने कि मैं देशमुख होने वाली हूँ ?'

उसके ये शब्द सुनते ही उसने जल्दी-जल्दी चरसा कुवे से निकालना और उसे हौज में खाली कर, बैलों को थोड़ा विश्राम देने की गरज से वहीं खड़ा रहने दिया वह दौड़कर पार्वती के पास पहुँचा।

'तो मैंने जो सुना वह झूठ है क्या ?'

'मैं क्या जानूँ किसने तुमसे यह बात कह दी ! मैं क्या पगली हो गई हूँ, जो उस लड़के से विवाह करूँगी ? क्या उसकी देशमुखी को चाटना है मुझे ? दिन भर कभी होश में भी रहता है वह ? 'इस प्रकार बातें करते समय शायद उसके सामने शराब के नशे में चूर, लाल-लाल आँखों और लड़खड़ाते हुए पैरों वाले, काले-काले और युवावस्था में ही तोंदियल हो जाने वाले देशमुख के लड़के की मूर्ति खड़ी हो गई।

इसके बाद शंकर केले के खेत में जाकर पानी-भरी नालियों के मुँह बन्द करने, और पानी छोड़ने के लिए दूसरी नालियों के मुँह खोलने लगा। पार्वती खड़ी-खड़ी देखती थी। उसने किंचित लज्जा कर स्नेह पूर्वक उससे पूछा—'मैं आऊँ तुम्हारी मदद के लिए ?'

आज तुम आ जाओगी, तो क्या मेरा काम हो जायगा ? रोज तो मुझे अकेले ही खपना है न ?'

'तो रोज आ जाया करूँगी ! पर, तुम यह पसंद करोगे ?'—उसकी ओर प्यार भरी दृष्टि से देखते हुए उसने पूछा।

वह इस पहेली को समझ न सका। इसका ब्याह होगा और वह शीघ्र ही पराये घर चली जायगी, फिर ऐसा बेतुका सवाल कैसे पूछ रही है ?

और एक दिन उसे पहेली का जवाब मिल गया, जब उसके पिता ने उससे कहा कि पार्वती ने देसमुख की मँगनी किस तरह ठुकरा दी और स्पष्ट शब्दों में कह दिया—कि 'चाहे जो हो, मैं उस लड़के से कभी विवाह न करूँगी।' इसके बाद, रामराव पटेल ने सोचा कि यदि वे अब अपनी बेटी का ब्याह अधिक दिन तक रोक रखते हैं, तो समाज में उनकी बदनामी होने का डर है, इसलिए वह मिवाजी के पास आए और पार्वती के सुझाने पर उन्होंने मिवाजी से शंकर के विषय में बातें कीं। ये सब बातें शंकर को पिताजी से ज्ञात हो गईं। इस प्रकार शंकर और पार्वती का विवाह तय हो गया। विवाह तो तय हो गया, पर मिवाजी के सामने विवाह के खर्च के लिए रुपयों का विकट प्रश्न आ खड़ा हुआ। सम्बन्ध एक बड़े आदमी के साथ होने जा रहा था और यद्यपि रामराव पटेल नाम के ही पटेल रह गए थे; तथापि इलाके में उनका नाम बड़ा था और मिवाजी के लिए यह आवश्यक हो गया कि समारंभ ऐसा हो, पटेल के नाम को शोभा दे और खुद को भी नीचा न देखना पड़े। बड़ों के साथ रिश्तेदारी हो रही है, यह क्या कोई कम महत्व की बात है ? फिर थोड़े से खर्च के लिए पीछे क्यों हटूँ ? यह सोच कर उसने पीपल गाँव के एक मारवाड़ी के पास अपनी जमीन गिरवी रख दी और उससे पाँच सौ रुपए उधार लिए।

रुपयों का सवाल इस तरह हल हो जाने पर शादी बड़ी धूमधाम से हुई। पार्वती 'शंकर' की 'पार्वती' हो गई। इतने दिनों तक जो लड़की उसका सिर दर्द हो रही थी, वही उसकी सहचरी बन गई तो उसकी आनन्द की सीमा न रही। दोनों विवाह के पहले की बातों और घटनाओं को याद कर हर्ष-विभोर होने लगे। अब पार्वती खेत के कामों में शंकर को अधिकार-पूर्वक सहायता पहुँचाने लगी, हँसते-खेलते दिन बीतने लगे।

काल-चक्र घूम रहा था। तीन वर्ष व्यतीत हो गये! पर, साहूकार का कर्ज अदा न हो सका। खर्च दिन-पर-दिन बढ़ रहे थे। इसी अवधि में रामराव पटेल की मृत्यु हो गई। गाँव में देशमुख का जोर बढ़ा उसने साहूकार को पट्टी पढ़ाई। नतीजा यह हुआ कि साहूकार ने मिवाजी को अपनी जमीन जोतने से रोक दिया। उसने कहा—'रुपये चुकता करो, फिर जमीन जोतो।' पर कर्ज चुकाने के लिए मिवाजी के पास रुपये कहाँ थे? उसे अपनी जमीन छोड़ देनी पड़ी और अपने बैल लेकर दूसरों की जमीन में पसीना बहाने का मौका आगया; परन्तु इतने पर ही उसके दुर्भाग्य की इतिश्री न हुई। संकट जब आता है, तब अकेला नहीं आता। इस घटना के करीब चार महीने बाद उनकी बैल-जोड़ी का एक बैल 'सुभान्वा' बीमार पड़ गया। गाँव के इलाज से कोई फायदा न हुआ, और वह मर गया। उसके कुछ ही दिन बाद 'सुभान्या' का साथी 'बत्तासा' भी जो उसके साथ कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर कई सालों से काम करता आया था—उसी बीमारी का शिकार हो गया और उसने 'सुभान्या' का साथ दिया। मिवा के परिवार पर यह एक जबरदस्त आघात था। जमीन चली गई थी, फिर भी अपने निजी बैलों से दूसरों के खेतों में काम कर मजदूरी मिल जाती थी। परन्तु दुर्भाग्य ने यह साधन भी उससे छीन लिया। कुछ दिन तक परिवार के सब लोग जैसे पागल हो गए थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि उन्होंने ऐसा कौन-सा भयंकर पाप कर डाला है। जिसके कारण भगवान इस तरह हाथ धोकर उनके पीछे पड़ गया है। वे लोग इसी हालत में थे कि चन्द्रकान्त दो दिन की छुट्टी पर पीपल गाँव आया। अपने बालसखा के परिवार की वह दयनीय दशा देखकर उसने सबको धीरज बधाया और वह शंकर को अपने साथ लक्ष्मी नगर ले गया।

'यह क्या! दिया जलाने का वक्त हो गया और तुम अभी बिस्तर पर ही पड़े हो?' पार्वती ने द्वार के भीतर आकर शंकर से पूछा।

"तुम्हारे जानेके बाद पड़े-पड़े, पिछली बातें एक-एक कर याद आने लगीं और उस धुन में कुछ भी होश न रहा।" इस प्रकार प्रत्युत्तर देकर वह उठ बैठा। उसने देखा कि चाल के दूसरे कमरों में बत्तियाँ जल गई हैं। इसलिए उसने भी उठकर बटन दबाया। कमरा रोशनी से खिल उठा।

रात को फिर बिस्तर पर पड़े-पड़े उनमें बातें होने लगी।

"सच, मुझ गरीब के घर आने पर तुम्हें कुछ भी सुख न मिला। पार्वती! इससे तो........."

उसकी बात का रूख किस तरफ है, यह समझकर पार्वती ने कहा—

"मैंने खुद ही तुम्हारे घर आने के लिए पिताजी से हट किया था। मैंने उनसे साफ कह दिया था कि मुझे देशमुख के घर व्याहने का विचार छोड़ दें। मैं उसका मुँह भी न देखूँगी। मुझे चाहे गरीब का घर मिले, फिर भी कोई हर्ज नहीं, पर......"आगे कहने के लिए वह शर्माने लगी। तब शंकर ने जानबूझकर पूछा—"पर क्या?"

"पर क्या! वही 'पर' तो मुझसे बातें कर रहा है।"

"इस वक्त ससुरजी होते, तो कितनी खुशी होती उनको। उन्हें नाती देखने की बड़ी साध थी।"

"हूँऽऽ!" एक आह खींच कर पार्वती चुप हो गई।

१०

उस दिन रविवार था। दोपहर के करीब तीन-साढ़े तीन बजे थे। चन्द्रकान्त आराम कुरसी पर पड़ा हुआ, कुछ पढ़ रहा था। उसकी माँ, सत्यभामा बाई दूसरी तरफ एक खिड़की के प्रकाश में बैठी चावल साफ कर रही थी।

"क्यों चन्द्र, आज क्या बात है कि तू घर ही में बैठा है? कहीं कोई कार्य-क्रम वगैरह नहीं है आज?"—सत्यभामा बाई ने चावलों से निकाला हुआ एक छोटा-सा कंकड़ अपनी चुटकी में पकड़कर बाहर फेंकते हुए कहा।

चन्द्रकान्त ताड़ गया कि हमेशा घर से बाहर रहने की उसकी आदत पर माँ ने यह ताना कसा है।

चन्द्रकान्त को भी मजाक करने की सूझी, बोला—"क्या करूँ, आज रविवार है। इसलिए सभी जगह छुट्टियाँ हैं। कहीं कोई दूसरा कार्य-क्रम भी नहीं है। मजबूरन बैठा हुआ हूँ। करूँ क्या?"

"जब लड़के बड़े हो जाते हैं, तब उनके हृदय में अपने माँ-बाप के प्रति कोई स्नेह नहीं रह जाता क्या?"—सत्यभामा बाई ने कहा।

"आपकी बात सत्य है माँ! पर, यह बात उन लड़कों के लिए लागू होती है, जिनका विवाह हो जाता है, और उन पक्ष में यह कहा जा सकता है कि उन्हें प्रेम करने के लिए एक नया व्यक्ति मिल जाता है। इसलिए फिर पुराने व्यक्तियों के प्रति उन्हें अधिक प्रेम क्यों मालूम हो?"

"परन्तु तू तो विवाह से पहले ही अपनी माँ के लिए दुर्लभ होने लगा

है। एक तो तेरा घर ठहरना ही कठिन है; दूसरे कहीं ठहर भी गया, तो हमेशा किताबों में सिर घुसेड़े बैठा रहता है। कभी माँ के पास निश्चिन्त बैठकर प्रेम से बातें नहीं करता। इससे अच्छा तो यह है कि जल्दी से तू अपनी बहू ले आ, जिससे तू बाहर रहे; तो भी कम-से-कम तेरी पत्नी से बातें करने में मेरा समय कट जाया करे और मुझे उसका साथ भी हो जाए। तू हमेशा बाहर रहता है और मैं घर में अकेली पड़ी रहती हूँ। शान्ता थी, तब इतना बुरा नहीं लगता था। अब वह भी चली गई अपने घर ....”

“स्त्रियाँ किसी भी विषय को लेकर बातें आरम्भ करें; पर वे उन्हें समाप्त करती हैं विवाह की चर्चा पर।” इसके बाद जैसे कोई अभिनेता रंगभूमि पर अभिनय कर रहा हो, वह कहने लगा—

“आज हमारा देश किस स्थिति में है? हमारी क्या हालत है? हमारे सारे नेताओं का ध्यान देश की वर्तमान अन्न-परिस्थिति की ओर लगा हुआ है और इधर मेरी माताजी का आग्रह है कि मैं जल्दी-से-जल्दी उनके लिए एक बहू ले आऊँ!”

“बस, बस, तू तो हर एक बात मजाक पर ले जाता है। जनम से ही तेरी आदत है यह। जब-कभी मैं तेरे सामने विवाह की बात निकालती हूँ, तू सीधा जवाब नहीं देता। इधर पड़ोसिनें रोज मुझे घेरे रहती हैं। कोई-न-कोई मुझसे रोज पूछती है—“हमारी सरला का विवाह करती हो चन्द्रकान्त से?...... चन्द्रकान्त से पूछो, हमारी सुमन पसन्द होगी उसे?......यदि चन्द्रकान्त की इच्छा हो, तो अपनी शकुन्तला दिखा दूँ उसे?” परंतु तेरी अपनी एक ही टेक है—“मेरी पसंद की लड़की जब मुझे मिलेगी, तब मैं एक क्षण का भी विलम्ब न करूँगा। तब तक मैं किसी की भी न सुनूँगा और न किसी की लड़की देखूँगा।” तेरी इस टेक से मुझे कोई आपत्ति नहीं। यदि अपनी ही पसन्द की लड़की से तू विवाह करना चाहता है, तो खुशी से कर। पर, जल्दी कर ले बेटा!”

“अब जल्दी या देर से, यह सवाल ही कहाँ उठता है माँ! जब तुमने मुझे अनुमति दे दी है कि मैं अपनी पसन्द की लड़की से विवाह कर सकता हूँ

तो जब तक मुझे कोई लड़की पसन्द न आ जाय, तब तक तुम्हें धीरज नहीं रखना चाहिये क्या? जहाँ तक मेरी पसन्द का सवाल है, उसके विषय में निश्चित रूप से कौन कह सकता है? हो सकता है, इसी साल किसी लड़की को पसन्द कर लूं, या इसके लिए साल-दो साल भी लग जाएँ। तुमने परसों मुझे किसी दिवाली-विशेषांक में एक ज्योतिषी का वर्ष-भविष्य दिखाया था न! उसमें लिखा था कि इस वर्ष अविवाहितों के विवाह होंगे। तुम तो ज्योतिष पर विश्वास करती हो न? कहते हैं, जैसा जिसका विश्वास होता है, वह वैसा ही फल पाता है। इसलिए तुम यह विश्वास कर सकती हो कि शायद इसी साल मुझे कोई-न-कोई लड़की पसन्द आ जाय।"

यह कहते-कहते चन्द्रकान्त के मन:चक्षु के सामने हेमलता की मूर्ति खड़ी हो गई थी, इसमें संदेह नहीं।

"भगवान तेरी वाणी सफल करे।"—चावल का पीपा, खाली थाली और सूप उठाकर भीतर जाते हुए सत्यभामा बाई ने कहा। चन्द्रकान्त ने अपनी माँ की ओर देखा। आधे से अधिक केश पक गये थे उसके, आँखें निस्तेज थीं, चेहरा फीका था और शरीर की निर्बलता से उसकी चाल मन्द हो गई थी। अपनी माँ की यह जर्जर हालत देखकर चन्द्रकान्त ने मन में सोचा कि क्या मैं अपने हठ के कारण अपनी माँ को कष्ट नहीं दे रहा हूँ? बस, पढ़ने में उसका मन नहीं लगा और उसके हृदय में विवाह सम्बन्धी विचारों ने धूम मचा दी। उसकी दृष्टि सामने दीवाल पर टँगे एक पुराने ग्रूप-फोटो पर गई। जब यह फोटो खींचा गया था, तब चन्द्रकान्त की उम्र कोई दो तीन वर्ष की थी। उस फोटो में वह माँ की गोद में बैठा था। वह इतना छोटा था कि जब तक देखने वाले को कोई बता न दे कि यह चन्द्रकान्त है, तब तक उसे पहचानना प्रायः असंभव था। उसकी माँ भी फोटो की माँ न रही थी। उसमें भी बहुत परिवर्तन हो गया था। फोटो में जो सत्यभामा बाई थीं उनका चेहरा भरा हुआ और चमकदार था। शरीर गोलमटोल था। उसपर तारुण्य की झलक थी। माथे पर गोल कुंकुम बिन्दी थी। आँखें पानीदार थीं। कानों में टाप्स थे और नाक में बड़े-बड़े मोतियों की सुन्दर नथुनी थी। इनमें से कोई भी चीज अब उनके पास

नहीं रह गई थी। कहने के लिए सिर्फ नथुनी बची थी, जो उन्होंने चन्द्रकान्त की पत्नी के लिए संत रखी थी। पर, उन्हें क्या मालूम नहीं था कि आजकल की लड़कियाँ ऐसे पुराने ढंग के अलंकारों में कोई रुचि नहीं रखतीं? वे जानती थीं, फिर भी उनका पागल मन उनसे वह अपूर्व अलंकार सुरक्षित रखे हुए था।

सत्यभामा बाई की उम्र अभी ४५ वर्ष के करीब थी। उन्होंने पचास भी पार नहीं किए थे। फिर भी उनपर बुढ़ापे ने अपना पूरा अधिकार जमा लिया था। उनके इस असमय में ही वृद्ध हो जाने के कारण थे वे आघात, जो उन्होंने अपने जीवन में सहन किए थे। जब उनके पति, कृष्णाजी पंत जीवित थे, उस समय भी गृहस्थी का सारा भार अकेली सत्यभामा बाई को ही वहन करना पड़ता था। उनके पति कृष्णाजी तो हमेशा जमींदार की चाकरी में व्यस्त रहते थे और उन्हें अपनी गृहस्थी की ओर ध्यान देने का अवकाश ही न मिलता था। आगे चलकर जब कृष्णाजी की मृत्यु हुई, तब तो सत्यभामा बाई पर ही सारी जिम्मेदारी आ गई। पति के बाद उनका कोई प्रिय रिश्तेदार न था और न कहीं जाकर ठहरने का कोई सुभीता था। ऊपर से दो लड़कियाँ थीं। ऐसी परिस्थिति में नेकी से दिन बिताना सत्यभामा बाई का ही काम था। वे बिल्कुल अपने पति के चरण-चिह्नों पर चलीं। उन्होंने कभी किसी के सामने हाथ नहीं पसारा। लड़कियों के विवाह कर दिए। उन्हें वर भी साधारणतः अच्छे मिले। पर, गोदावरी के पति का स्वभाव जरा गुस्सैल था। वह बड़ा अक्खड़ था, इसलिए कहीं भी जम कर नहीं रहने पाता था। जिस मालिक के यहाँ नौकरी करता, वहाँ थोड़ी-सी बात ही पर तनातनी हो जाती और वह नौकरी छोड़ देता और फिर दूसरी जगह देखता। कभी-कभी तो नौकरी तुरन्त मिल जाती थी; पर, कभी-कभी कुछ महीने बेकार भी रहना पड़ता था और इस अवधि में उसे अपने संचित धन से गृहस्थी का भार चलाना पड़ता था। एक बार उसकी नौकरी छूट जाने पर गोदावरी और उसके बच्चे करीब छः महीने सत्यभामा बाई के घर ही रहे थे और उनका सारा खर्च उन्हीं ने उठाया था यद्यपि आजकल वह पूना की किसी फर्म में नौकर हो गया था, तथापि उसके डाँवाडोल स्वभाव के कारण

हमेशा यह भय लगा रहता था कि न जाने कब वह नौकरी छोड़कर फिर वह नौकरी छोड़ कर फिर बेकार हो जायगा और, सत्यभामा बाई इसके लिए हमेशा चिंतित रहा करती थीं।

शान्ता का विवाह हो गया और वह अपनी ससुराल चली गई। अब सत्यभामा बाई घर में अकेली ही रह गई और इसीलिए वे आजकल चन्द्रकान्त के विवाह के लिए उतावली हो रही थीं। अभी तक उनके हाथ के नीचे कोई-न-कोई रहा करता था। अभी-अभी, जब कि वे बहुत कमजोर हो गई थीं, शान्ता का उन्हें बड़ा भारी आधार था। उसके विवाह के समय भी वे चन्द्रकान्त के पीछे पड़ी थीं कि वह कहाड़ के कुलकर्णी मास्टर की लड़की मालती से चटपट विवाह करले। लड़की रूपवती थी। अँग्रेजी भी पढ़ी थी। सब तरह से चन्द्रकान्त के बिल्कुल योग्य थी। उन्होंने कहा—"बेटा, यह विवाह हो जाय, तो तुम दोनों की जोड़ी, लक्ष्मीनारायण की जोड़ी की तरह दिखेगी।" परन्तु चन्द्रकान्त ने अपना हठ न छोड़ा। सत्यभामा बाई को बहुत निराशा हुई।

और चन्द्रकान्त का वही हठ अब भी कायम था, जिससे वे उसपर कुछ नाराज रहतीं और जब-जब मौका आता, तब-तब उसे विवाह के लिए राजी करने की कोशिश किया करती थीं।

आज का प्रसंग भी इसी तरह का था।

कारण क्या था, हम नहीं कह सकते, परन्तु पुरानी प्रथा के अनुसार लड़की देखकर विवाह करने की कल्पना चन्द्रकान्त के मन को बिल्कुल नहीं भाती थी। यह कदाचित कहानियों और उपन्यासों की रोमैंटिक सृष्टि में विचरण करने के कारण हो, या मन की काव्यमय वृत्ति के कारण हो, या इसलिए हो कि वह सुधारवादियों के सिद्धान्तों का कायल था। वह सोचता था कि बिल्कुल अनजान लड़की को पाँच-दस मिनट देखना और उसे पसन्द या नापसंद कर देना—इसे क्या जीवन-साथी चुनने की प्रणाली कहा जाय या मजाक?

उसके जीवन में एक बार ही ऐसा मौका आया था, जब कि उसने वधू-परीक्षा का यह समारम्भ देखा था। उसका एक मित्र, जिसका विवाह होने वाला

था और जो लड़की को देखने जा रहा था, चन्द्रकान्त को भी अपने साथ वहाँ ले गया था। प्रस्तावित वधू छः-सात दर्जे अंग्रेजी पढ़ी थी और उसके माँ-बाप का कहना था कि वह भरी सभा में निर्भयता से भाषण दे सकती है; परन्तु परीक्षा के अवसर पर लड़की ने जो हरकतें दिखाई, उनसे उसके माँ-बाप का दावा झूठा साबित हो गया। जब लड़की ने देखा कि हर आँख उसी पर स्थिर हो गई है, तब वह विचलित हो उठी। उसका साहस जाता रहा। शायद इसका एक कारण यह भी हो कि उसने इस अवसर के महत्व को मन-ही-मन महसूस कर लिया हो और सोचा हो कि ऐसे अवसर पर लज्जा का प्रदर्शन ही अधिक उचित होगा। जब उसके मित्र ने लड़की से दो-तीन प्रश्न पूछे, तो वह नीची नजर कर, जैसे-तैसे उनका उत्तर देकर जल्दी से भीतर भाग गई। इससे उसके साहस की डींग हाँकने वाले उसके माँ-बाप तो झेंपे ही; पर साथ ही वह महाशय भी निराश हो गए। वे लड़की से कई प्रकार के प्रश्न पूछने की बड़ी तैयारी करके आये थे। उनके मन की बातें मन ही में रह गईं।

जब चन्द्रकान्त ने मित्र के मन की इस कुढ़न के साथ यह फोर्स देखा, तो उसने मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया कि मैं इस प्रथा को बिल्कुल तोड़ दूँगा। मैं अपने सम्बन्ध में ऐसा कभी न होने दूँगा।

उसका यह मत बन गया कि प्रेम-विवाह हो, तब तो अच्छा ही है और यदि यह संभव न हो, तो कम-से-कम विवाह उस समय किया जाय, जब लड़के और लड़की का पूर्ण परिचय हो जाय। विवाह तभी सुखकर होगा, जब एक-दूसरे के स्वभाव मिलते-जुलते हों, और एक-दूसरे की रुचि-अरुचि समान हो। जब दोनों के दिल मिल जाएँ और फिर, यदि विवाह हो, तो वही सच्चा विवाह है और वही दोनों के लिए सुखकर होगा। हमारे वर्तमान समाज में यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति को यह मौका नहीं मिल सकता, तथापि कम-से-कम विवाह से पहले वर और वधू का पारस्परिक परिचय हो जाना जरूरी है, जिससे वे एक दूसरे के स्वभाव और गुणावगुण से परिचित हो जाएँ।

यदि चन्द्रकान्त को पूना और बम्बई जैसे शहरों में रहने का मौका मिलता, तो कम-से-कम वहाँ उसके विचारों का पोषक वातावरण प्राप्त हो जाता। शाला कालेज और सभा या सम्मेलनों के निमित्त वहाँ युवक और युवतियाँ एकत्रित हो

सकती हैं, कभी-कभी उनमें पारस्परिक परिचय और विचार-विनिमय भी सम्भव हो जाता है ; परन्तु लक्ष्मीनगर कोई शहर नहीं था। एक कारखाना था, जिसमें सैकड़ों मजदूर काम करते थे। वे वहीं रहते थे, इसलिए एक बस्ती बन गई थी। काम, काम और काम उस बस्ती में हमेशा निनादित होती रहती थी। अथवा यह कहिये कि इसीके लिए ही उस बस्ती ने शहरी जीवन से अपने को अलग कर एकान्तवास अपनाया था।

ऐसे वातावरण में चन्द्रकान्त के विवाह-सम्बन्धी उपरोक्त विचारों की दशा यदि रसिकों के अभाव में बस्ते में बन्द पड़े हुए सितार की तरह हो गई हो, तो इसमें आश्चर्य क्या है? फिर भी अपने सिद्धान्तों छोड़ देने की कल्पना उसके मनमें कभी नहीं आई। उसके निश्चयी मन के लिए यह सम्भव भी न था।

इसके बाद हाल ही में यहाँ अचानक हेमलता से उसका परिचय हो गया। वह उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। दोनों की काव्य में अभिरुचि पारस्परिक परिचय को घनिष्ट करने में कारणीभूत हुई। उस अभिरुचि के कारण दोनों एक-दूसरे के अधिक नजदीक आने लगे। चन्द्रकान्त के सन्दूक में पड़े हुए सितार के तार छिड़े, उनसे मीठी झंकार निकली। अब उसका आशा-बीज अंकुरित हुआ। शीघ्र ही वह बढ़ेगा, फैलेगा, फूलेगा और फिर उसमें फल भी लगेंगे—ऐसे स्वप्न वह देखने लगा।

और शायद यही कारण था कि आज जब सत्यभामा बाई ने उससे विवाह की बातें की, तो उसकी दृष्टि के सामने हेमलता की मोहक मूर्ति खड़ी हो गई और हमेशा ऐसी बातों को हँसी में उड़ा देने वाले चन्द्रकान्त ने उनके द्वारा बताए गए वर्ष-भविष्य के आधार पर उनका सन्तोष कर दिया।

चन्द्रकान्त इस तरह विचारों में सो रहा था कि बाबा साहब का नौकर गनपत उसे पुकारता हुआ आ धमका। उसने चन्द्रकान्त से कहा—"कलापुर कालेज से कोई महाशय बँगले पर आए हुए हैं। वे आप से मिलना चाहते हैं। इसलिए हेमलताजी ने आपको तुरन्त बुलाया है, चलिए।"

"ठीक है। तुम चलो। मैं आया।"—कहकर वह रसोई में अपनी माँ के पास गया और बोला—

"माँ, देख लो, तुमने आज मुझे टोका था कि घर में कैसे बैठे हो? अभी बाबा साहब के बँगले से खबर आई है कि कलापुर के कालेज से कोई महाशय

आए हैं और वे मुझसे मिलना चाहते हैं। इसलिए मुझे वहाँ फौरन बुलाया है। लगता है, भगवान ने तुम्हारी बात सुन ली।"

"अच्छा-अच्छा भगवान भी खूब है, जो ऐसी बात सुन लेता है और बाकी बातें उसे सुनाई नहीं पड़ती।"

"अच्छा, तो मैं हो आता हूँ!"

"अरे, चाय बन गई है, पी ले।"

"तो जल्दी ले आ।"

चाय पीने के बाद चन्द्रकान्त बाबा साहब के बँगले पर आया। वहाँ हेमलता और साफ-सुथरी पोशाक पहने हुए दो तरुण बैठे बातें कर रहे थे। चन्द्रकान्त को पता चला कि वे कालेज के मराठी-साहित्य संघ के मंत्री हैं। उनमें से एक ने चन्द्रकान्त से कहा—"हम लोग कालेज के मराठी-साहित्य संघ की ओर से आए हैं। हम आपके काव्य-गायन का एक कार्य-क्रम कालेज के लिए निश्चित करना चाहते हैं। आप इतने नजदीक रहते हैं, फिर ऐसा कोई मौका हमें अभी तक नहीं मिल सका। पर, अब हमने निश्चय कर लिया है कि आपका कार्य-क्रम जरूर रखा जाय। हेमा बहिन हमारे संघ की नई सदस्या हैं। उनसे हमने एक दिन यह बात सहज भाव से कही, तो उन्होंने यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली कि वे इसके लिए आपकी स्वीकृति प्राप्त कर लेंगी। इसी लिए हम लोग आपसे प्रार्थना करने आए हैं।"

चन्द्रकान्त की दृष्टि हेमलता की ओर गई, तो उसके चेहरे पर शरारत-भरी मधुर मुस्कान खिल रही थी।

"आप लोगों ने इतनी मजबूत नाके-बन्दी की है कि उसमें से निकल कर मैं भाग ही कैसे सकता हूँ? चन्द्रकान्त ने हँसते हुए कहा।

"आपको कब समय मिलेगा?"

"कोई छुट्टी का दिन रख लीजिए, शनिवार या रविवार।'

उन्होंने आपस में विचार करके आगामी शनिवार निश्चित कर दिया। उस दिन हेमलता का एक ही पीरियड था। इसलिए चन्द्रकान्त को अपने साथ कार में लाने और ले जाने की जिम्मेवारी हेमलता पर सौंप दी गई। उसने भी वह बड़ी खुशी से स्वीकार कर ली, यह कहने की जरूरत नहीं।

११

तालियों की तड़तड़ाहट और डेस्कों की खटखटाहट के बीच अपने काव्य-गायन को समाप्त कर चन्द्रकान्त कुरसी पर बैठ गया। उसकी दृष्टि लड़कियों के बीच बैठी हुई हेमलता की ओर गई। उसने देखा कि सबके साथ वह भी तालियाँ बजा रही थी। उसे जो आनन्द हुआ था, वह उसके चेहरे पर दिखाई दे रहा था। विद्यार्थियों की भीड़ छट जाने पर वह चन्द्रकान्त के पास गई। चन्द्रकान्त ने भी संघ के मन्त्रीजी से विदा ली और हेमलता के साथ वह हाल से बाहर निकला। उन्हें आते देखकर ड्राइव्हर कार स्टार्ट करने लगा। चन्द्रकान्त ने हेमलता से कहा -'अभी तो सिर्फ पाँच ही बजे हैं। यदि तुम्हें घर लौटने की जल्दी न हो, तो चलो, थोड़ा शहर में घूम लें। मुझे यहाँ माडर्न-बुक-स्टाल तक जाना है।'

'हुश, मुझे क्या जल्दी है!'—चलिए, चला जाय। मैं भी अभी तक इस शहर में कहाँ गई हूँ!'

'अच्छा, तो फिर चलो।'—कहकर चन्द्रकान्त चलने लगा। हेमलता ने ड्राइव्हर को वहीं ठहरने का आदेश दिया और वह भी चन्द्रकान्त के साथ हो ली।

चन्द्रकान्त को पढ़ने और अच्छी-अच्छी पुस्तक अपने संग्रह में रखने का बेहद शौक था। जब-जब वह कलापुर जाता, तो माडर्न बुक-स्टाल पर जरूर ही एक चक्कर लगा आता था। यह उसका जैसे एक नियम-सा ही बन गया था।

इसलिए आज भी वह माडर्न बुक-स्टाल में पहुँचा। उसने नये प्रकाशन देखे और एक काव्य-संग्रह खरीदा। इसके बाद वे दोनों दुकान से बाहर निकले।

'अब रुक ही गए हैं, तो यहाँ का तालाब भी देख लें। उसकी बड़ी तारीफ सुनी है। मैं तो रोज कार से, एक ही रास्ते से आती और लौट जाती हूँ। इसलिए शहर के इस भाग में अभी तक नहीं पहुँच सकी।'— हेमलता ने कहा।

'तो चलो, आज चलें! वह तालाब यहाँ से कोई अधिक दूर भी नहीं है।' —चन्द्रकान्त ने कहा।

बातें करते हुए दोनों ने तालाब की राह पकड़ी। सायंकाल का सुहावना समय था। अतएव तरुण और तरुणियाँ अलग-अलग टोलियों में टहलने के लिए तालाब की ओर जा रहे थे। तरुणियों की टोलियोंमें हास्य-विनोद चल रहा था, आँचल सम्हाले जा रहे थे और राह चलने वालों पर उड़ती हुई निगाहें फेंकी जा रही थी। तरुणियों की टोलियों में गप्पों का बाजार गर्म था और साथ ही उनकी नजरें नए-नए चेहरों की खोज मे लगी हुई थीं। बीच-बीच में कोई तरुण-दम्पति निकलते, तो वे दोनों टोलियों के कुतूहल का विषय बन जाते। शीघ्र ही वे तालाब के निकट आ गए। तालाब का घेरा कम-से-कम डेढ़-दो मील का अवश्य होगा। वह विस्तीर्ण जलाशय पत्थर की दीवाल से घेर लिया गया था और उसके चारों तरफ घूमने के लिए सुन्दर सड़क बना दी गई थी। सामने फैले हुए विस्तीर्ण और शान्त जलाशय को देखते ही हेमलता का मन-मयूर प्रसन्नता से नाच उठा। तालाब के किनारे बनी हुई विशाल इमारतों के प्रतिबिम्ब जल में बड़े सुन्दर और सुडौल दिख रहे थे। अस्ताचल की ओर गमन करने वाले भगवान भास्कर की किरणों से नहाकर विविध रंगों से रँगे हुए आकाश की पार्श्व भूमि पर दिखने वाले मेघ सुन्दर हैं, या जल की हरित पार्श्वभूमि पर दिखने-वाले उनके प्रतिबिम्ब अधिक सुन्दर हैं?, इसका निर्णय हेमलता का मन नहीं कर सकता था। हेमलता ने देखा कि चन्द्रकान्त भी उसी शोभा को देखने में खो गया है, तो उसने चन्द्रकान्त से कहा—' कितना सुन्दर है यह दृश्य, क्यों है न?'

यह दृश्य जीवन के उस स्वप्न के समान है, जिसे मनुष्य अपने हृदय में

सँजोए रहता है। पर, स्वप्न कितना भी सुन्दर क्यों न हो, सत्य-सृष्टि में उसका क्या मूल्य। मैं सोच रहा हूँ कि इस तालाब की वृत्ति उस मनुष्य की वृत्ति की तरह है, जो वास्तविक जगत् से अलिप्त रहकर स्वयं अपनी ही स्वप्न-सृष्टि में खोया रहता है। जब तक इस तालाब का पानी किसी सरिता या निर्झर में मिल-कर, उस जीवन-प्रवाह से समरस नहीं हो जाता, तब तक ही उसके ये स्वप्न बने रहेंगे। जिस दिन वह उस खड़खड़ाहट में जाकर सम्मिलित हो जायगा, उस दिन उसके ये सारे स्वप्न टूटकर चकना-चूर हो जाएँगे। जग के कोलाहल में पड़ जाने पर ध्येय-वादी और स्वप्न देखने वाले मनुष्यों के स्वप्नों की भी यही दशा हो जाती है।'

'मतलब यह हुआ कि आप की दृष्टि से स्वप्नों का कोई महत्व ही नहीं है; फिर ?'—हेमलता ने पूछा।

'एकदम ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। मैंने तो सिर्फ दो स्वप्नों का मिलान भर किया है; क्योंकि उन दोनों की समानता मेरे दिल में आ गई थी। एक दृष्टि से देखा जाय तो, स्वप्नों का बड़ा महत्व है। विचारवानों के स्वप्न ही सत्य-सृष्टि को आकार प्रदान करते आये हैं। पिछली सदी में मार्क्स ने जो स्वप्न देखा, वह प्रचलित सदी में सत्य-सृष्टि में कम-से-कम थोड़ा बहुत तो जरूर उतरा है, यह हम देख ही रहे हैं। इसके बावजूद आज भी कई लोगों को मार्क्सवाद......'

अपने इन वादों को छोड़िए। यहाँ इनका क्या सम्बन्ध है ? एक सुन्दर दृश्य को देखते हुए भी आप राजनीति को कैसे नहीं भूल जाते, यही मेरी समझ में नहीं आता ? राजनीति के पीछे आप इस तरह पागल क्यों हो गए हैं ? आप जैसे काव्य-वृत्ति वाले मनुष्य को, यदि सच पूछा जाय तो, राजनीति के पचड़े में पड़ना ही नहीं चाहिए। पर, मैं देखती हूँ कि राजनीति का विषय निकलते ही आप को बड़ा जोश आ जाता है। आप राजनीति जैसी छोटी-मोटी बातों पर अपना जो समय ख़र्च करते हैं, उसे किसी अच्छे काव्य के निर्माण में क्यों नहीं लगाते ? क्या इस दृष्टि से आप मराठी-साहित्य की

हानि ही नहीं कर रहे हैं ? आपने अभी तक रसिकों को जो चीजें दी हैं, उनके कारण वे आपसे आगे चलकर बड़ी-बड़ी आशाएँ कर रहे हैं। क्या आपका यह कर्तव्य नहीं कि, कोई महा या खंड-काव्य लिखकर आप उनकी आशाएँ पूरी करें ? राजनीति तो बहुत मामूली बात है। उसके लिए ढेर-से नेता मिल सकते हैं ; परन्तु आप जैसे प्रतिभा-सम्पन्न लोग यदि अपना क्षेत्र त्याग दें—"

"मुझे तुम्हारी बात नहीं जँचती। भारत जैसे पिछड़े हुए देश में जनता को साक्षर बनाना, सच पूछा जाय, तो देश के प्रत्येक सुशिक्षित व्यक्ति का कर्तव्य है। विशेषतः आज, जब कि हम स्वतंत्र हो गए हैं, इस काम की ओर भी अधिक आवश्यकता है। यदि हम चाहते हैं कि हमारे इस विशाल देश में स्वतंत्रता और लोक-सत्तात्मक राज्य-प्रणाली कायम रहे, तो हमें जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी साधारण जनता का अज्ञान दूर करना चाहिए। उनके धार्मिक अंध-विश्वासों से उनका पिंड छुड़ा देना चाहिए और उनके दोषों को भी उन्हें दिखा देना चाहिए। यह काम इक्के-दुक्के मनुष्य का नहीं सबका है, प्रत्येकका है। चीन के बारे में तुमने पढ़ा होगा—वहाँ के विद्यार्थी भी किसानों और मजदूरों के बीच घूमते हैं, उन्हें ज्ञान-चक्षु देते हैं। इस काम का राजनीति या समाजनीति से कोई ताल्लुक नहीं है। यह एक नए समाज के निर्माण का कार्य है। इस कार्य में हाथ बँटाना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। मुझ सरीखे व्यक्ति की प्रतिभा व्यर्थ जा रही है, यह देखकर तुम्हें दुख होता है। परन्तु विषम समाज-रचना के कारण आज कितने ही प्रतिभावानों की प्रतिभा और बुद्धिमानों की बुद्धिमत्ता व्यर्थ जा रही है, उसके लिए तुम्हें दुःख होना चाहिए। तुम्हीं बताओ, इस अन्याय को—इस विषमता को क्या हमें दूर नहीं करना चाहिए ? मेरा ही उदाहरण लो। योग्य परिस्थिति एवं अवसर के अभाव में स्वयं मुझे भी अपनी आशा-आकांक्षाओं से हाथ धोना पड़ा है। मुझसे घटिया बुद्धिवाले लड़के, धन की अनुकूलता के कारण—योग्य अवसर प्राप्त होने के कारण अपनी आशा और आकांक्षाओं को पूरी कर रहे हैं। क्या तुम सोचती हो कि इसके लिए मुझे कोई दुःख न होता होगा ? जहाँ

मैं विषमता देखता हूँ, तो इस स्वानुभव के कारण मेरा हृदय जल उठता है; मेरा मन भड़क उठता है---"

"क्या आप सोचते हैं कि मैं आपके दिल की बेचैनी नहीं समझती हूँ। परन्तु मुझे लगता है---क्यों लगता है, यह नहीं कह सकती, पर लगता ज़रूर है कि ---"हेमलता बोलते-बोलते रुक गई।

उसके शब्दों की स्निग्धता से चन्द्रकान्त थोड़ा पिघला।

वह बोला- "तुम्हारी इच्छा के पीछे जो ममत्व की भावना है, उसे मैं महसूस करता हूँ; और जब मुझे यह महसूस होता है, तब मेरा मन भीतर-ही-भीतर घुटने लगता है। विद्यार्थी-दशा से ही मैं कुछ स्वप्न अपने मन में सँजोता आया हूँ। परन्तु वास्तविक जग से सम्बन्ध होते ही उनमें से कई टूटकर चकनाचूर हो गए हैं। एक बड़ा कवि बनने का भी मेरा स्वप्न है। और भी मेरे कुछ स्वप्न हैं।" किंचित काल ठहर कर तालाब की ओर देखते हुए वह पुनः कहने लगा---"पर, यह बात ज़रूर है कि मनुष्यों के स्वप्नों का इस शांत सरोवर में पड़े हुए प्रतिबिम्बों से जो सादृश्य है, वह मुझे बड़ा दिलचस्प मालूम होता है। कुछ समय पहले, संध्याकालीन आकाश के रंग-बिरंगे प्रतिबिम्ब धारण करने वाले इस सरोवर में देखो, अब चन्द्र और तारे किस प्रकार मस्ती से खेल रहे हैं? दृश्य बदल गया है। इसी तरह मनुष्यों के स्वप्न भी बदलते रहते हैं।"

बातों की धुन में उन्हें पता तक न चला कि कब सूर्यास्त हो गया और कब पूर्णिमा के चन्द्र ने अपनी धवल ज्योत्स्ना का मोहक जाल समस्त चराचर पर फैला दिया। रूपहली किरणों से सरोवर का जल चमक रहा था। सारा वातावरण सौम्य और शीतल बन चला था।

"चलो, अब लौट चलें। हम बहुत देर बैठ चुके हैं यहाँ।" कह कर चन्द्रकान्त उठा। हेमलता भी उठकर उसके साथ चलने लगी।

"ऐसे स्थान पर कितनी ही देर बैठें, उठने की इच्छा नहीं होती।"---हेमलता ने कहा।

"हूं"---कहकर चन्द्रकान्त मूक हो गया।

तालाब से सड़क की तरफ जानेवाले सकरे रास्ते से दोनों साथ-साथ चले जा रहे थे। चलते-चलते अनजाने, वे एक-दूसरे के इतने नजदीक आ गए कि चन्द्रकान्त के हाथ से हेमलता के हाथ का हल्का-सा स्पर्श हो गया। चन्द्रकान्त के सारे शरीर में जैसे बिजली दौड़ गई। हेमलता का शरीर भी किञ्चित सिहर उठा। वह कुछ अधिक अन्तर लेकर चलने लगी। पर, इस हल्के-से स्पर्श का अनुभव फिर हो, इसलिए दोनों के हृदयों में बेचैनी पैदा हो गई।

वे दोनों उस मधुर तन्द्रा में ही चल रहे थे। चन्द्रमा-सुधा ढालकर दोनों को नहला रहा था ; रास्ता दिखा रहा था।

चलते-चलते वे एक सिनेमा-घर के नजदीक पहुँचे। आज सड़क के किनारे जलने वाले दीपक बुझे पड़े थे। फिर भी उस इमारत पर, दीपावली के समान दीपकों की पंक्तियाँ जल रही थीं। सिनेमा-गृह और फिल्म के नामों के अक्षरों में जलते दीपक बैठा दिए गए थे। उनके सामने लोगों की बेकाबू भीड़ लगी हुई थी, यहाँ तक कि उन्होंने सड़क को भी प्रायः रोक रखा था। लगता था कि कोई नई फिल्म आयी होगी, और वह बड़ी लोकप्रिय होगी।

उस भीड़ को चीरती हुई आनेवाली – "साहब-साहब!" की पुकार ने चन्द्रकान्त का ध्यान खींच लिया। करीब आठ-दस वर्ष के एक बालक ने उसे रोक लिया था। उसका चेहरा बड़ा उदास दिख रहा था। बदन पर वह नीली-काली धारियों वाली कमीज पहने था, जो कन्धे पर फटी थी।

जब चन्द्रकान्त ने उसकी ओर देखा, तो वह बोला—

"साहब, कुछ मदद कीजिए। मैं गरीब विद्यार्थी हूँ। हाई स्कूल में पढ़ता हूँ। दरजे में मेरा नम्बर पहला है।"

"तुम्हारे घर में कौन-कौन हैं?"—चन्द्रकान्त ने उससे पूछा।

"मेरी माँ और चार साल की एक छोटी बहन—इस तरह हम तीन प्राणी हैं। दो साल पहले हमारे पिताजी का अन्तकाल हो गया। माँ एक घर की रसोई बनाने जाती है। परन्तु सिर्फ उतने से ही हमारी गुजर नहीं होती। इसलिए मैं रोज सिनेमा के वक्त यहाँ आकर खड़ा हो जाता हूँ।"

चन्द्रकान्त का हृदय उस बालक की दयनीय दशा देखकर द्रवित हो गया।

"देखूँ, तुम्हारे हाथ में यह क्या है?"—चन्द्रकान्त ने यूँ ही पूछा। लड़का अपने हाथ में हेडमास्टर के द्वारा दिया हुआ सिफारिश-पत्र मोड़कर लिए हुये था। उसने वह सिफारिश-पत्र चन्द्रकान्त को दे दिया। चन्द्रकान्त ने उसे खोलकर पढ़ा। उस लड़के का नाम विनायक दामोलकर था। वह उनके हाई स्कूल का एक मेधावी और होनहार छात्र था। पर, अत्यन्त गरीब होने के कारण वह अपनी फीस और पुस्तकों आदि का समुचित प्रबन्ध नहीं कर सकता था। अतएव सबसे प्रार्थना की गई थी कि उसकी यथा शक्ति मदद करें।

"चन्द्रकान्त का ध्यान बीच-बीच में उस लड़के की ओर जा रहा था। लड़का उसकी ओर दयनीय और बड़ी आशा-भरी दृष्टि से देख रहा था। चन्द्रकान्त के मस्तिष्क में कोलाहल मच गया।

"बच्चे, तुम्हें जितनी भी मदद की जाय, वह अनुचित न होगी। उलटे, यदि वह न की जाय, तो बड़ा अन्याय होगा—मेरा दिल दुखेगा। परन्तु इस समय मेरे पास इतना ही है। इसे ले लो। मैं जब-जब यहाँ आया करूँ, तब-तब मुझसे मिलते रहा करो। कक्षा में अपना पहला नम्बर कभी न छोड़ना, समझे?"

इतना कहकर चन्द्रकान्त ने लड़के के हाथ में एक अठन्नी रख दी। यह देखकर हेमलता ने भी अपनी पर्स से एक रुपया निकाल कर उसे दे दिया।

लड़के की आँखों में आँसू भर आए।

चन्द्रकान्त की पलकें भी गीली हो गयीं। हेमलता और चन्द्रकान्त आगे बढ़े। चलते-चलते चन्द्रकान्त ने कहा—

"जब ऐसे दृश्य देखता हूँ, तो मेरा मन इतना मथ जाता है कि मैं कह नहीं सकता। अभी मैंने सबको समान अवसर मिले, इस विषय पर तुमसे कुछ कहा था। उसीका जीता-जागता उदाहरण तुमने अपनी आँखों देख लिया न? ऐसे दृश्य देखकर किसके हृदय पर चोट न लगेगी? और ऐसे समय, जब हम सरकार की वर्तमान शिक्षा विषयक नीति को देखते हैं, तो लगता है, जैसे घाव

पर नमक छिड़क दिया गया। ......" फिर कुछ ठहर कर वह बोला—"और तुम्हें लगता है कि मैं काव्य की उपासना में ही लगा हूँ। मैं ऐसे दृश्य पर एक करुण काव्य लिख दूँ, तो तुम्हारी दृष्टि से मेरा काम समाप्त हो जाता है। परन्तु काव्य लिखकर और दुःख व्यक्त कर, मेरे मन को कैसे संतोष होगा? उलटे, जिस समाज-रचना के कारण यह बुरी हालत पैदा हो गई है, उस समाज-रचना को जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी बदलकर नई समाज-रचना की धुन ही मुझ पर सवार होगी।"

इस समय तक वे कार के पास पहुँच गये थे। इसलिए चन्द्रकान्त ने अपनी बातें बन्द कर दीं। जिस पीपल के पेड़ के नीचे कार खड़ी थी, उसकी शाखाओं और पत्तियों से निर्मित हुई मनोहर आकृति ने हेमलता का ध्यान आकृष्ट कर लिया। वह बोली—"यह देखा, प्रकृति का डिजाईन? सिर्फ काले और सफेद-दो रंगों से ही कितनी सुन्दर आकृति बन गई है यह!"

हेमलता की कल्पना और उसकी सौन्दर्य-दृष्टि की चन्द्रकान्त ने मन-ही-मन तारीफ की। अब उसके मस्तिष्क से पहले के विचार जाते रहे। वह कुछ प्रसन्नता से बोला—"हाँ, तुम्हारा कहना बिल्कुल सच है। बड़ा सुन्दर डिजाइन बन गया है, इसमें शक नहीं।"

पहले हेमलता कार में जाकर बैठ गई। उसका एक हाथ दरवाज़े पर था। चन्द्रकान्त बाद में बैटा। बैठते समय द्वार पर रखे हेमलता के हाथ का, उसे पुनः एक बार स्पर्श हुआ। उसने मदहोश होकर उसे कुछ क्षण उसी तरह रहने दिया।

उस सुखद स्पर्श की स्मृति में खोये हुए, उसके मन को यह भी पता न चला कि वह कब लक्ष्मीनगर पहुँच गया?

१२

उस वर्ष मराठी-साहित्य-सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में, पूना में होने वाला था। इस सम्मेलन में उपस्थित रहनेके लिए चन्द्रकान्त को विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया था; क्योंकि "प्रतिभा" मासिक पत्रिका द्वारा घोषित पुरस्कार, सम्मेलन के सभापति द्वारा वितरण किये जाने वाले थे। इसके साथ ही सम्मेलन के कार्य-क्रम में "वर्तमान काव्य के इष्ट और अनिष्ट प्रवाह" नामक विषय पर वाद-विवाद आयोजित किया गया था और एक कवि सम्मेलन भी होनेवाला था। इन दोनों कार्य-क्रमों में भाग लेने के लिए सम्मेलन की कार्य-कारिणी सभा के प्रधान मन्त्री ने चन्द्रकान्त से बड़े आग्रह-पूर्वक प्रार्थना की थी।

इससे पहले चन्द्रकान्त दो बार साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशनों में उपस्थित हो चुका था। पहली बार सिर्फ इसलिए गया था कि उसे सम्मेलन देखने की इच्छा थी और दूसरी बार इसलिए गया था कि उसका अधिवेशन कलापुर में ही हुआ था। उस समय, वह कवि के रूप में धीरे-धीरे उदित हो रहा था। परन्तु उसका नाम इतना विख्यात नहीं हुआ था। इसलिए उस समय वह सम्मेलन में दोनों बार एक दर्शक की हैसियत से ही उपस्थित हुआ था। पर, इस समय ऐसी बात न थी। अब कवि की हैसियत से वह रसिकों में प्रसिद्धि प्राप्त करने लगा था। लोग उसे देखने और उसकी कविताएँ सुनने के लिए आतुर हो उठे

थे। इस स्थिति में यह कैसे सम्भव था कि सम्मेलन के कार्य-कर्त्ता ऐसे कवि को खास तौर से निमन्त्रित न करते ?

चन्द्रकान्त ने वाद-विवाद में भाग लेने का निश्चय किया। परन्तु इतने बड़े जन-समूह के बीच उसका कविता-पाठ किस तरह प्रभावशाली हो सकेगा, इसका उसे शक होने लगा। उसके पास आवाज की देन न थी। उसे कविता कहने की अच्छी-अच्छी तर्जें भी मालूम न थीं। इसलिए वह बड़े सोच-विचार में पड़ गया था।

जब वह हेमलता के बँगले पर पहुँचा, तो बातचीत के सिलसिले में उसने सम्मेलन की ओर प्राप्त हुआ निमंत्रण-पत्र उसे दिखाया। निमंत्रण-पत्र देखकर हेमलता ने चन्द्रकान्त के लिए यह बड़े गौरव की बात समझी और उसे खुशी हुई। उसने चन्द्रकान्त से पूछा—"आपने निमंत्रण स्वीकार कर लिया है न ? अपनी स्वीकृति भेज दी न ?"

"अभी नहीं, वही तो सोच रहा हूँ। वादविवाद में भाग लेने का तो मैंने निश्चय कर लिया है; पर, कविता-पाठ के लिए क्या करूँ, यह समझ में नहीं आ रहा है। कविता गाकर कहनेका मुझे अभ्यास नहीं है, और फिर इतने बड़े जन-समूह में तो बिल्कुल ही नहीं है। कहने की तर्जें भी मुझे ठीक तरह से नहीं आती हैं। आवाज भी सुरीली नहीं है। यदि गद्य के ढंग पर अपनी कविताएँ पढ़ूँ, तो श्रोताओं पर उनका प्रभाव पड़ेगा, या नहीं, यह संशयास्पद है। यदि श्रोताओं पर किसी कविता का उचित प्रभाव न पड़ा, तो उसकी कल्पनाओं की सारी उड़ानें हवा में विलीन हो जाएँगी......"

"फिर मैं सुझाऊँ आपको एक कल्पना ?"

"हाँ सुझाओ, कौन-सी है तुम्हारी कल्पना ?"—चन्द्रकान्त ने कुछ उत्सुकता से पूछा।

"यदि मैं सम्मेलन में आपकी कविताएँ गा कर सुनाऊँ, तो......"

"वाह, यह तो बड़ी सुन्दर कल्पना है !"

हेमलता ने सम्मेलन में उसकी कविताएँ गाकर सुनाने की इच्छा प्रदर्शित की—यह देखकर चन्द्रकान्त को अत्यन्त आनंद हुआ। उसके आनंद के दो

कारण थे। पहला यह था कि सुन्दर कविता रसिकों को आनंद देती ही है, परन्तु वही जब मीठे स्वर में सुन्दर ढंग से गाकर पढ़ी जाय, तो सोने में सुगंध आ जाती है। आनंद का दूसरा कारण यह था कि मेरी कविताएँ सम्मेलन में गाकर पढ़ने की इच्छा प्रकट करके उसने यह दिखा दिया कि मेरे प्रति उसके हृदय में कितना स्नेह और ममत्व-भाव है।

हेमलता भी पूना का साहित्य-सम्मेलन देखने जाना चाहती थी। उसकी यह आन्तरिक अभिलाषा थी। इस बहाने उसे पूना जाकर, अपनी पुरानी सहेलियों में पुनः सम्मिलित होने का अवसर भी प्राप्त होने वाला था, जिसे वह अपने हाथ से क्यों जाने देती?

चन्द्रकान्त पूना में अपनी छोटी बहिन गोदावरी के घर ठहरने वाला था। पिछली दिवाली में गोदावरी लक्ष्मीनगर न आ सकी थी; अतएव वह उसे पूना आने के लिए बार-बार पत्र लिखती रहती थी।

हेमलता ने अपनी सहेली सुलभा साठे को पत्र द्वारा अपने आगमन की सूचना भी दे डाली।

+ + +

चन्द्रकान्त को देखते ही गोदावरी की आँखों में खुशी के आँसू चमक उठे। गत डेढ़-दो वर्षों से बहिन-भाई एक-दूसरे से न मिले थे। इसलिए इस समय मिलकर उनके हर्ष की सीमा न रही। दोनों ने अपने मन में बहुत-सी बातें संचित कर रखीं थीं, जो वे एक-दूसरे से कहना चाहते थे। उन्हें वह मौका आज मिला था। इस तरह की बातें कहने और सुनने में, जो एक अपूर्व आनंद प्राप्त होता है, उसे केवल बहिन-भाई ही जानते हैं।

गोदावरी ने अपने पड़ोसियों से बड़े अभिमान-पूर्वक पहले से ही कह रखा था कि मेरा दादा चन्द्रकान्त एक कवि है। पूना में हो रहे साहित्य-सम्मेलन में भाग लेने के लिए उसे विशेष रूप से आमंत्रित किया गया है। यहाँ उसे, उसकी सर्वोत्तम कविता के लिए सभापति द्वारा एक सौ रुपये का पुरस्कार प्राप्त होने वाला है। वह जब यहाँ आयगा, तो मेरे ही घर ठहरेगा। इसलिए जब

पड़ोसियों को पता चला कि गोदावरी के घर मेहमान आया है, तो उनकी आँखें भी दरवाजों और खिड़कियों से गोदावरी के घर की तरफ खिंच गयीं हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? वे देखना चाहते थे कि कविजी रूप-रंग में कैसे हैं। दूसरी बात थी मनुष्य की स्वाभाविक जिज्ञासा। जब किसी के घर कोई मेहमान आता है, तो पड़ोसियों को सहज भाव से यह जानने की जिज्ञासा होती है कि वह कौन है, कैसा है, किस तरह बातें करता है और किस काम से आया है? यह कहने की आवश्यकता नहीं कि गोदावरी के घर चन्द्रकान्त के आने से, उसके पड़ोसियों की भी यही दशा हो गई थी।

गोदावरी चूल्हे के पास बैठी हुई चाय बना रही थी। उसके सामने चन्द्रकान्त दीवाल से टिककर एक पीढ़े पर बैठा हुआ था। गोदावरी के दो बच्चे थे। चार साल का लड़का अनिल और दो साल की लड़की बेबी। इन बच्चों ने अपने मामा को घेर रखा था। अनिल ने अपनी दोनों बाहें चन्द्रकान्त के गले में डाल दी थीं और वह एक प्रकार से उससे लटक गया था। बेबी रानी उसकी गोद में बैठी हुई थी—बिल्कुल चुपचाप, जैसे इसीमें उसे जीवन का सारा सुख प्राप्त हो गया था।

"अनिल, मामा थक गया है। उससे इस तरह लिपटो नहीं, बेटा! अभी तो वह चार दिन यहीं रहेगा। और बेबी, तू 'चिज्जी' लेगी क्या? देख, मामा तेरे लिए कैसी-कैसी मिठाइयाँ लाया है!" गोदावरी ने बड़े दुलार से कहा।

'चिज्जी' का नाम सुनते ही अनिल की पकड़ ढीली पड़ गयी और बेबी भी चन्द्रकान्त की गोद से उतर कर एक-एक कदम इस तरह रखती हुई, जैसे गिन-गिन कर रख रही हो, माँ के पास चली गई।

उसकी इस चाल की ओर कौतुक से देखते हुए चन्द्रकान्त ने कहा—

"बेबी ने अभी-अभी चलना शुरू किया है शायद? जल्दी शुरू कर दिया!"

"तो क्या वह अब छोटी है? अगले बैसाख में दो साल की हो जायगी, और तब तीसरा साल लग जायगा।" पास आई बेबी को वात्सल्य से खींचकर अपनी गोद में बैठाती और उसका गाल चूमती हुई गोदावरी बोली।

'चिज्जी' मिल जानेपर दोनों फिर अपने मामा के पास दौड़ आए और उससे चिपक गए।

गोदावरी ने चन्द्रकान्त के आगे भी मिठाइयों की एक प्लेट रख दी।

"वामन राव आफिस से कब लौटते हैं?"—लड्डू का एक कौर मुँह में डालते हुए चन्द्रकान्त ने पूछा।

"उनके आने का क्या पूछते हो! ऑफिस से छूटते हैं छः बजे, फिर साइकिल से यहाँ आते-आते पौने सात हो जाते हैं।"

"और सबेरे कब जाना पड़ता है उन्हें?"

"सुबह घर से साढ़े दस बजे निकल जाते हैं। परंतु मुझे रसोई दस के भीतर ही तैयार कर देनी पड़ती है। खाना खाकर हाथ धोते ही उन्हें चल देना पड़ता है। उनका कारखाना यहाँ से ४-५ मील दूर है। इस तरह रोज सुबह से ही मुझे बड़ी दौड़ धूप करनी पड़ती है। सिर्फ इतवार के दिन थोड़ी साँस ले पाती हूँ। कल शनिवार है न? कल भी उनकी छुट्टी कुछ जल्दी हो जायगी, पर, घर पहुँचते-पहुँचते पाँच तो बज ही जायँगे।"

किरकी के नजदीक, हाल ही में एक बिस्कुट का कारखाना खुला था। गोदावरी का पति वामनराव इसी कारखाने में नब्बे रुपए मासिक वेतन पर क्लर्क का काम करता था।

चाय पीने के बाद सब लोग रसोई से उठकर बैठक के कमरे में आए। कसबापेठ जैसी पुरानी बस्ती में वामन-राव का मकान था। मकान क्या था, दूसरी मंजिल पर एक लम्बा-सा कमरा था, जिसमें पारटीशन देकर छोटे-छोटे तीन-चार कमरे बना लिए गये थे। पहले में रसोई तथा नहाने के लिए और दूसरे में सोने के लिए इंतजाम कर लिया गया था एवं तीसरा बैठकखाना था। दूसरी मंजिल पर, सड़क के किनारे होने से मकान में उजेले और हवा की कमी न थी। बैठक के कमरे में समान मुख्तसिर था। एक पुरानी छोटी-सी पालिश उड़ी हुई मेज, उस पर अस्तव्यस्त रीति से फैली हुई पुस्तकें, मासिक पत्रिकाओं के अंक और दो-तीन समाचार-पत्र रखे हुए, उसी पर एक तरफ कुछ छोटी-छोटी चित्रवाली पुस्तकें और चौखट निकला हुआ एक स्लेट का टुकड़ा भी पड़ा था।

यह सामान शायद अनिल महाशय का होगा। फर्श पर मेज के नीचे एक सरोता, सुपारी की डिब्बी और बेबी के कुछ खिलौने पड़े हुए थे। मेज के आगे लोहे की एक कुरसी रखी थी। दीवालों पर पहले, कब सफेदी की गई थी यह शायद घर का मालिक ही जानता था। गोदावरी ने उन्हें जगह-जगह लीपा था और लिपाई की पट्टियों के भीतर कहीं-कहीं सफेदी के अस्तित्व का पता चल जाता था। एक खूँटी पर दो पुराने कोट और एक मैली कमीज टँगी थी। दूसरी खूँटी पर एक शीशा लटक रहा था। दीवाल पर दो-तीन केलेंडर शोभा दे रहे थे। एक अभिनेत्री के चित्रयुक्त केलेंडर के तारीख वाले सब कागज फट गये थे। शायद उस चित्र के कारण ही उसे स्थान-भ्रष्ट नहीं किया था। इन सबके बीच वहाँ, एक ग्रूप-फोटो भी टँगा हुआ था।

"चलो बेबी, हम देखें उस फोटो में कौन-कौन है!" कहकर चन्द्रकान्त बेबी को गोद में लेकर उस फोटो के पास गया। बिस्कुट के कारखाने में कोई मंत्री महोदय किसी समय पधारे थे। उसी समय वह फोटो खींचा गया था। गोदावरी ने उस फोटो द्वारा चन्द्रकान्त से कारखाने के कुछ लोगों का परिचय करा दिया।

इसके बाद चन्द्रकान्त का ध्यान रास्ते की तरफ वाली दीवाल की खिड़कियों की ओर गया। उनमें लोहे के सींकचों के बदले, लकड़ी के डंडे दूर-दूर लगे हुए थे। यह देखकर चन्द्रकान्त ने कहा—"यह घर बड़ा खतरनाक है। बेबी कभी इन खिड़कियों के पास तो नहीं जाती?"

"कुछ न पूछो भाई! जब खड़ी होना सीख रही थी, तब ठीक इन्हीं खिड़कियों के डंडे पकड़ने के लिए दौड़ती थी। बेधड़क इन्हें पकड़कर खड़ी हो जाती थी। और इधर, मेरी जान सूख जाती थी। दौड़कर उसे वहाँ से हटाना पड़ता था। एक बार तो भगवान ने ही कृपा की, जो बच गई। मैं किसी काम से थोड़ी देर के लिए नीचे चली गई थी। यहाँ बेबी और अनिल दोनों खेल रहे थे। मैं अनिल से कह गई थी कि बेबी को खिड़की के पास न जाने देना। पर, जब ऊपर आई, तो मैंने देखा कि बेबी दोनों मुट्ठियों में डंडे मजबूती से पकड़े है। गरदन खिड़की के बाहर झुका दी है और मौज से नीचे सड़क की

ओर देख रही है। यह देखा, तो मेरा कलेजा धक्-से हो गया। मैं लपकी और धीरे से उसे पीछे से पकड़कर उठा लिया। बस, खैरियत हो गई, वरना ....."

"और अनिल क्या कर रहा था उस वक्त ?"

"मैंने उससे कह दिया था कि वहाँ न जा। बस, वह रोने लगी; तो मैंने भी कह दिया—जा, तुझे जाना है, तो ?"—अनिल ने अपनी कैफियत पेश की।

'वाह अनिल, इसी तरह सम्हालते हैं क्या अपनी बहिन को ! तू होशियार है न ?'—चन्द्रकान्त ने अनिल से कहा।

'पर, मामा, इसके बाद मैंने उसे कभी उस तरफ नहीं जाने दिया। पूछ लो माँ से। क्यों माँ ?'—अपनी होशियारी पर जो कलंक लग गया था, उसे ही धो डालने के लिए जैसे अनिल ने कहा। इस तरह वे लोग बातें कर रहे थे। गोदावरी के मुँह से अपने प्रिय अनिल और बेबी की बातें सुनते हुए चन्द्रकान्त को अपार हर्ष हो रहा था। इसके साथ ही अपनी बहिन के मुँह से पूना की मँहगाई, राशनिंग और अल्प वेतन की बातें सुनकर उसे विषाद भी हो रहा था, जो उसके चेहरे पर झलक पड़ता था। बातों के सिलसिले में गोदावरी ने उससे कहा —'क्या बताऊँ, दादा, महीने का अन्त आते-आते ऐसी दशा हो जाती है कि कुछ कहते नहीं बनता। महीने केअन्तिम सप्ताह में तो जेब बिल्कुल खाली रहती है। पास में पैसा न होने से दोनो बच्चों के मुँह ऐसे लटक जाते हैं, जैसे किसी ने खूब पीट दिया हो। फिर न सब्जी आती है और न किसी बीमारी का इलाज ही हो सकता है। आखिरी सप्ताह का राशन भी नहीं ला सकते। पहले तो, राशन मिलता ही कितना है, ऊपर से अगर एक सप्ताह का राशन छोड़ दें, तो आफत हो जाती है। बस, अध-पेट रहने का मौका आ जाता है। कहीं से उधार लाएँ तो काम चल सकता है। परन्तु उनका स्वभाव ऐसा है कि चाहे जो हो, उधार कभी नहीं लाएँगे। उन्हें भूखे पड़े रखना मंजूर है, पर किसी से जाकर उधार लाना, बिल्कुल पसंद नहीं है। फिर मैं ही उनकी चोरी से अड़ोस-पड़ोस वालों के घर जाती, और उधार काम चलाती हूँ। बेबी का चावल बिना नहीं चलता। दोनों जून उसे चावल चाहिए। अनिल पहले-पहल मिलों की रोटियाँ

खाता ही न था। बड़ी मुश्किल से अब उसे कुछ अभ्यास हुआ है। हम दोनों सुबह के भोजन में नाम-मात्र के लिए थोड़ा-सा चावल खाते और बच्चों को दोनों जून चावल ही देते हैं। वे मिलों को पसन्द ही नहीं करते। यदि दूध दें, तो आजकल यह हाल है कि रुपया सेर मिलता है और उसमें भी आधा पानी मिला होता है। फिर भी सिर्फ दूध के लिए महीने में बीस-पच्चीस रुपए हो जाते हैं। यह तो मेरी खुश-किस्मती है कि तुम्हारे बहनोईजी को बीड़ी, सिगरेट पान आदि की आदत नहीं है। बस, उन्हें तो दोनों जून भोजन चाहिए और दिन-भर में दो प्याली चाय। यदि छुट्टी का दिन हुआ, तो दिन में कभी-कभी तीसरी बार भी चाय पी लेते हैं। सड़क पर से रोज सिनेमा के विज्ञापन निकलते रहते हैं। अनिल विज्ञापन ले आता और पीछे पड़ जाता है कि चलो हमें सिनेमा दिखाओ। तब उसे मनाते-मनाते हम दोनों की आफत हो जाती है। सिर्फ बच्चों के लिए हम लोग तीन-चार महीने में एकाध फिल्म देख लेते हैं.........'

इसी समय दरवाजे में कुछ आहट हुई। जैसे, कोई साइकिल को ऊपर चढ़ा रहा है। गोदावरी बोली—'वे तो आगए शायद ?'

ज़ीने में पैरों की आहट हुई। थोड़े ही देर में वामनराव बैठक में आए।

'कहिए चन्द्रकान्त जी, कुशल से तो हैं ? सफर में भीड़ के कारण कोई तकलीफ तो नहीं हुई ?'—बदन से कपड़े उतार कर उन्हें खूँटी पर टाँगते हुए वामनराव ने कहा।

'भीड़ तो थी ही, बल्कि दिसंबर के कारण और भी अधिक थी। पर, उससे मुझे कोई खास तकलीफ नहीं हुई। बात यह है कि हेमलताजी मेरे साथ आई हैं। मेरे बहुत इन्कार करने पर भी उन्होंने दोनों के लिए सेकण्ड क्लास के टिकट खरीद लिए थे। इसलिए सफर आराम का ही रहा।'

'वे नहीं आई यहाँ ?

'वे स्टेशन से ही बाला-बाला अपनी एक सहेली के घर चली गईं। मैंने बहुत आग्रह किया कि हमारे घर चलो और चाय पीने के बाद अपनी सहेली के

घर चली जाना। पर उन्होंने क्षमा माँगा और फिर कभी आने का वचन दे दिया। उनकी सहेली 'डेक्कन जिमखाने' में रहती है।'

'आपका सम्मेलन तो कल से आरम्भ हो रहा है न?'

'हाँ! कल और परसों—यही दो दिन बड़े महत्व के हैं। सोमवार को सबेरे तो अंतिम कार्य-क्रम है। आप आएँगे सम्मेलन में?'

'कल तो मुझसे न हो सकेगा। यदि बन सका, तो परसों रविवार को आ सकूँगा—कम-से-कम आपके कार्य-क्रम में तो हाजिर रहने की ज़रूर कोशिश करूँगा।'

'दादा, मैं जरूर तुम्हारे साथ रोज चलूँगी। सम्मेलन का प्रत्येक कार्य-क्रम देखूँगी।'—गोदावरी ने कहा।

'हाँ, तुम अपने दादा के साथ जरूर रोज जा सकती हो। बहिन को अपने भाई के लिए जो अभिमान होता है, उसकी बराबरी बहनोई कैसे कर सकता है?'

'बेशक नहीं कर सकता।'—कहकर गोदावरी रसोई की ओर चल दी।

इसके बाद वामनराव ने चाय पी और साले-बहनोई यहाँ-वहाँ की बातें करने लगे। इधर दोनों बातों में व्यस्त थे और उधर रसोई में अनिल माँ से हठ कर रहा था—'मैं मामा के साथ खाने बैठूँगा। अभी नहीं खाऊँगा।' उसके ये शब्द चन्द्रकान्त के कान में पड़े। उसने यह भी सुना कि माँ उससे कह रही थी—'तू जल्दी सो जाता है बेटा! उन्हें खाने के लिए अभी बहुत देर है। तब तक मुझे नींद आने लगेगी। मामा तो अभी चार दिन रहने वाला है। सुबह उसके साथ तुझे परोसूँगी। अभी मान जा। आ तुझे परोस दूँ। चटपट खाले और सो जा।' पर, अनिल अपने ही हठ पर अड़ा था। तब चन्द्रकान्त रसोई में गया और बोला,—'कहो अनिल बाबू, क्या बात है? तुम बड़े नाराज दीख रहे हो!

'बात कुछ नहीं है दादा, यह कहता है कि मैं मामा के साथ खाना खाऊँगा।'

'बस, इतनी ही बात है! तो गोदूबाई, एक काम करो। हम लोगों को अभी परोस दो। आज हम लोग जल्दी खा लेंगे और सिनेमा देखने चलेंगे।

अनिल, तुम भी चलोगे न हमारे साथ सिनेमा ? तो फिर जल्दी खाना खालो। देखें, पहले कौन खाता है—तुम या बेबी ?'

सिनेमा का नाम सुनते ही अनिल के आनन्द की सीमा न रही। उसने माँ की बात एकदम मान ली। उसका आनन्द और उसके हावभाव देख-कर बेबी भी यूँ ही उसकी नकल करने लगी।

भोजन के बाद सिनेमा जाने का प्रोग्राम था। गोदावरी बच्चों को कपड़ा पहना रही थी ?यह देखकर चन्द्रकान्त ने कहा —

'गोंदूबाई, तुम बच्चों को छोड़ो। उन्हें कपड़े मैं पहनाए देता हूँ। तब तक तुम अपने कपड़े बदल डालो। औरतों के कपड़े बदलने में बड़ी देर लगती है।'

चन्द्रकान्त ने यह बात बिल्कुल सहज भाव से कही थी। परन्तु गोदावरी के चेहरे पर किंचित खिन्नता की छाया फैल गई और वह बोली—'मैं अब कपड़े नहीं बदलती। जैसी हूँ, वैसी ही चलूँगी। तुम लोग अपने कपड़े पहनकर तैयार हो जाओ जल्दी! तब तक मैं बच्चों को तैयार किए देती हूँ।'

गोदावरी की बातें सुनते हुए चन्द्राकान्त का ध्यान उसकी साड़ी की ओर गया। वह साड़ी बिल्कुल मामूली थी। उसका रंग उड़ गया था और वह जीर्ण हो चली थी। कोई भी स्त्री घर से बाहर जाते समय उसे बदल कर दूसरी साड़ी पहनती, वह इतनी खराब हो गई थी। पर, गोदावरी उसे बदलना नहीं चाहती—इसका क्या मतलब ? चन्द्रकान्त सोच में पड़ गया। पर, जब उसका ध्यान अपनी बहिन के चेहरे पर गया, तो वह इसका मतलब समझ गया।

चन्द्रकान्त विषाद-पूर्ण अन्तःकरण से बाहर आया और उसने अपने कपड़े पहने।

सिनेमा से लौटने पर गोदावरी ने चन्द्रकान्त के लिए बिस्तर तैयार कर दिया। घर में एकही गद्दा और एकही कम्बल था। चन्द्रकान्त के लिए गद्दा बिछा दिया और कम्बल एक चादर मिलाकर ओढ़ने के लिए पैताने रख दिया। वामनराव के लिए दरी बिछा दी और ओढ़ने के लिए एक धोती दे दी। फिर वह सोच में पड़ गई कि मैं क्या बिछाऊँ और क्या ओढ़ूँ ? चन्द्रकान्त ने उसे इस भ्रम में देखा, तो वह बोला,—'गोंदूबाई, मुझे ओढ़ने

के लिए एक चादर काफी होगी। तुम अपने लिए एक कम्बल उठा लो। चाहो तो मुझे मेरी धुली हुई धोती दे दो। मैं उसे इस चादर के साथ मिला लूँगा। इतने से मेरा काम चल जायगा।'

"नहीं दादा, यहाँ ठंड अधिक पड़ती है। इतने कपड़ों से तुम्हारा काम न चलेगा।"

"नहीं, मेरा काम चल जायगा। मेरे बदन में गरम स्वेटर भी तो है। तुम कम्बल ले जाओ।"

चन्द्रकान्त की यह बात सुनकर गोदावरी अपने ओढ़ने के लिए कम्बल उठाकर ले गई।

परन्तु जब सुबह चन्द्रकान्त जागा, तो उसने देखा कि उसपर कम्बल ओढ़ा दिया गया है और अनिल भी उसकी बगल में सुला दिया गया है। वह पानी पीने के लिए उठा और उसने देखा कि गोदावरी एक बारदाने पर सोई हुई है। उसने बेबी को अपनी छाती से चिपका लिया है और एक बहुत पुरानी जीर्ण साड़ी एक-दो पर्त करके ओढ़ ली है।

यह देखकर उसके मन में आया—"बहिन हो, तो ऐसी! छोटी बहिन है, फिर भी उसे लगा, जैसे अपने उष्ण स्नेह से उसने अपने बड़े भाई को आवृत्त कर दिया हो।

\+ \+ \+

रविवार की सुबह। चन्द्रकान्त नल से मुँह धोकर लौट रहा था। उस समय नीचे लिखा संवाद उसके कान में पड़ा—

"दादा, परसों जाने के लिए कह रहे हैं। तो कल कोई पकवान बनाऊँ क्या?"

"पर जानती हो, आज तारीख कौन-सी है? मेरे पास कहाँ है?" शायद पैसों का उल्लेख वामनराव ने इशारे से ही किया होगा।

इसके बाद चन्द्रकान्त भीतर आया और इस अन्दाज़ से बोला; जैसे उसने उनका वह संवाद सुना ही न हो।

"गोदूबाई, मैंने सोचा है कि कल, मैं तुम लोगों को पुरस्कार मिलने के उपलक्ष में एक दावत दे दूँ। हेमलता जी को भी यहीं खाने के लिए बुला लेंगे। मैं तुम लोगों का मुँह मीठा करना चाहता हूँ।"

"वाह, तुम जा रहे हो, इसलिए हमी तुम्हें एक दावत देने का विचार कर रहे थे और तुमने बीच ही में यह क्या व्यर्थ की बात लाकर खड़ी कर दी!"

"इसमें व्यर्थ की बात कौन-सी है? तुम लोग लक्ष्मीनगर तो अभी जल्दी जाओगे नहीं। इसलिए तुम लोगों का मुँह यहीं मीठा किए देता हूँ। इसमें व्यर्थ की बात क्या है,—यह मेरी समझ में नहीं आता।"

अंत में चन्द्रकान्त की बात सबने मान ली।

जैसा कि तय हो चुका था, गोदावरी भी चन्द्रकान्त के साथ सम्मेलन के प्रत्येक कार्य-क्रम में उपस्थित रहती थी। चन्द्रकान्त ने हेमलता से उसका परिचय करा दिया था और वे दोनों साथ-साथ ही रहा करती थीं। जब चन्द्रकान्त को सभापति के द्वारा पारितोषिक दिया गया और उन्होंने उसका गौरवपूर्ण उल्लेख किया, तो उसे सुनकर गोदावरी के हृदय में आनंद का ज्वार आगया।

१३

आज सिर्फ हेमलता और चन्द्रकान्त ही घूमने बाहर गए हुए थे। शाम के पाँच बज-चुके थे। गोदावरी को रसोई बनानी थी। पिछले दो दिनों से वह उनके साथ सम्मेलन के सभी कार्य-क्रमों में उपस्थित रही थी, इस कारण वह घर की कुछ भी व्यवस्था ठीक तरह से नहीं देख पाती थी। इसलिए आज उसने स्वयं ही कह दिया कि वह उनके साथ नहीं जा सकेगी। चन्द्रकान्त ने जैसा तय किया था, दावत का आयोजन किया गया था ; परन्तु वह सुबह न रख कर रात को रखी गयी थी, जिससे किसी को दौड़-धूप न करनी पड़े। हेमलता भी दावत में शरीक होने वाली थी और गोदावरी आज शाम को खासकर इस दावत की रसोई बनाने के लिए ही घर रह गई थी। हेमलता ने भी गोदावरी की सहायता के लिए घर ही पर ठहर जाने की इच्छा प्रकट की थी। पर, गोदावरी ने उससे कहा—"आप क्यों ठहरती हैं? कौन ऐसी बड़ी रसोई बनानी है! आप दादा के साथ घूम आइए।"

शनिवारवाड़ा पीछे छूट गया और वे नए पुल पर पहुँचे। इतनी दूर निकल आने पर भी, रास्ते में उन दोनों में विशेष बातें नहीं हुईं। दोनों प्रायः मौन थे। हेमलता को चन्द्रकान्त के चेहरे पर आज एक विशेष प्रकार के आनन्द की छटा दिखाई दे रही थी। उसके चेहरे पर रह-रह कर जो भाव परिवर्तित हो रहे थे, उसे देखकर हेमलता ने तर्क किया कि उसका मन इस समय सम्मेलन की आनन्ददायिनी स्मृतियों को दोहराने में खो गया है, और

इसीलिए उसने स्वयं कोई बात छेड़कर उस मीठी तंद्रा से उसे जगा देना उचित न समझा।

हेमलता का तर्क बिल्कुल सही था। वह हेमलता के साथ चल रहा था सही, पर उसका मन सम्मेलन के कुछ प्रसंगों के आसपास ही मँड़रा रहा था।

सभापतिजी द्वारा पुरस्कार दिया जा रहा था। उस समय उसकी कविता के विषय में जिन दो-तीन वक्ताओं ने भाषण दिए थे, उनमें से एक वक्ता मराठी-साहित्य-जगत् के एक मार्मिक समीक्षक थे। उनके नीचे लिखे कुछ वाक्य इस समय भी उसके अन्तर्मन को सुनाई दे रहे थे।

"जब हम चन्द्रकान्तजी की कविताओं को देखते हैं, तब हमें लगता है कि मराठी-काव्य का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। एक समय ऐसा आगया था, जब हमें यह सन्देह होने लगा था कि मराठी-काव्य-सरिता सूख रही है। परन्तु अब वह समय लद गया है और ऐसे सुचिन्ह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहे हैं कि मराठी-काव्य-सरिता में वर्षाकालीन बाढ़ आने लगी है। नदी के मूल प्रवाह में छोटे-बड़े अनेक प्रवाह मिल जानेसे वह पुष्ट बनता है। आधुनिक काव्य-सरिता को पुष्ट बनाने वाला एक विशेष रूप का प्रवाह चन्द्रकान्तजी ने बहा दिया है। यह बात दूसरी है कि बरसाती बाढ़ के साथ गन्दे पानी के कुछ प्रवाह भी मूल प्रवाह में मिलकर उसे मलीन कर रहे हैं। परन्तु इस समय हमें उनकी चर्चा नहीं करनी है......इसलिए मैं यह आशा करता हूँ कि चन्द्रकान्तजी को आज जो यश प्राप्त हुआ है, वह उनके भावी यशोमन्दिर की नींव बने और उनके उज्ज्वल भविष्य के साथ काव्य-सुन्दरी का भी भविष्य जगमगा उठे।"

इसके बाद पारितोषिक लेते समय और उत्तर में थोड़ा-सा भाषण करने के लिए उसके खड़े होने पर श्रोताओं ने जो प्रचंड करतल ध्वनि की थी, और गोदूबाई तथा हेमलता ने अपने नेत्रों द्वारा उसकी जो आरती उतारी थी, उसका उसे स्मरण हुआ। क्षण-भर के लिए उसका हृदय भर आया था और उस समय उसके मुँह से शब्द नहीं निकलते थे। इसके बाद वह जैसे-तैसे बोलने

लगा—"मैं एक अत्यन्त साधारण शारदोपासक हूँ। दूर एक कोने में रहता हूँ। मुझ जैसे एक मामूली व्यक्ति का जो सम्मान किया गया है, उसे देखकर मेरी वाणी कुंठित हो गई है। मैं समझता हूँ कि यह सम्मान मेरा नहीं, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से देवी शारदा का ही है और इसीलिए लगता है कि शायद मुग्ध होकर वह शब्दों के द्वारा प्रकट होने में असमर्थ हो गई है। मैं यह भी सोचता हूँ कि *आज के समारोह में सम्मान की अपेक्षा प्रोत्साहन का* ही भाग अधिक होगा और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आपके इस बढ़ावे से उत्साहित होकर आपके द्वारा व्यक्त की गई आशाओं को कम-से-कम अंशतः ही पूर्ण करने का प्रयत्न अवश्य करूँगा।"

इस प्रकार की स्मृतियों में वह ऊब-डूब रहा था कि इसी समय उसका ध्यान सहज भाव से अस्त हो रहे सूरज की ओर आकृष्ट हुआ। उसकी किरणों का दाहक तेज लुप्त हो गया था और वे सौम्यता से अब चराचरों को सहलाने लगी थीं। जिन-जिन वस्तुओं से उनका स्पर्श होता था' उन-उन वस्तुओं पर लालिमा की सौम्य और सुन्दर छटा छा जाती थी। रविराज की इस कारीगरी ने चन्द्रकान्त के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उसने हेमलता की ओर देखा। उसके गोरे मुखमण्डल पर अपनी लालिमा बिखेर कर उन किरणों ने उसे अपूर्व शोभा प्रदान कर दी थी। टहलने जा रहे तरुणों-तरुणियों पर, वृक्षों की चोटियों पर, ऊँची इमारतों के ऊपरी भागों पर, आकाश में दूर-दूर विचरण करने वाले मेघों पर क्रम-क्रम से लाल रंग चढ़ाता हुआ सूर्य अंत में पश्चिम के द्वार की ओट में जाकर छिप गया था। उसके आगमन के उपलक्ष्य में पश्चिमा ने अपने आँगन में केसरिया रंग की जो छटा बिखेर दी थी, उसकी ओर चन्द्रकान्त मंत्र-मुग्ध होकर देखने लगा।

चन्द्रकान्त आगे बढ़ते हुए अधिक दूर न जाकर, पुल के उस पारवाले बाग में चलकर बैठने का निश्चय कर, हेमलता से बोला,—

"मुझे तो ये सारे दृश्य प्रीति के प्रभाव के ही द्योतक जान पड़ते हैं। रविराज की इस जादूगरी को देखते हुए मन में कल्पना आती है कि वे कहीं अपनी प्रेयसी-पश्चिमा के मन्दिर के समीप पहुँचते ही अपनी दाहकता न भूल गए

हो ! कहीं उनके हृदय में भरी हुई अगाढ़ प्रीति ही न उमड़ उठी हो और इस रूप में सारे चराचर पर बिखर गई हो, जिससे उनपर भी प्रीति का सौम्य रंग चढ़ गया हो ! अथवा यह भी हो सकता है कि वे स्वयं अपनी प्रेयसी के घर जा रहे हैं, इसीलिए चराचर को यह सन्देश देने के लिए कि—"तुम भी इसी तरह प्रेम-रंग में नहा कर आओ—" उन्होंने स्वयं अपने हृदय के प्रेम-रंग को इसी उद्देश्य से उन पर उड़ेल दिया हो। कोई यह कल्पना भी कर सकता है कि क्या दिन-भर जन-सेवा का कठोर व्रत धारण करने वाले रविराज के अन्तरंग में भी इतने कोमल भाव वर्तमान होंगे।

चन्द्रकान्त जब इस प्रकार कह रहा था, तब हेमलता उसपर एक-दो बार कौतुक-मिश्रित उड़ता हुआ दृष्टिपात कर बाग की ओर देखती हुई चुपचाप चल रही थी। बाग बहुत बड़ा था। पेड़-पौधों की सुन्दर छटा से लगता था कि उसका माली अपने कार्य में बड़ा कुशल है। बग़ीचे के भीतर जो रास्ते थे, उनके दोनों तरफ फूलों की क्यारियाँ थीं। वे अलग-अलग आकार की थीं और रंग-बिरंगे फूलों से खिल रही थीं। अन्तर्भाग में गोलाकार, चौकोर और त्रिकोणाकार क्यारियों में कई सुन्दर फूलों और पत्तियों वाले पौधे लगे हुए थे। खाली स्थानों में लोगों के बैठने के लिए बैंचें रखी थीं। शाम का वक्त होने के कारण लोग बाग में आ-जा रहे थे। बैठने के लिए शान्त स्थान की खोज करते-करते दोनों बाग के मध्य भाग में आए, जहाँ फौवारा था। वहाँ समीप ही उन्हें एक खाली बेञ्च दिखाई दी और दोनों उसकी ओर मुड़े।

जेब से रूमाल निकाल कर चन्द्रकान्त ने बैठने की जगह झटकार कर साफ की। जब दोनों बैठ गए, तो चन्द्रकान्त ने कहा—"इसमें शक नहीं कि कल तुमने बड़ी सुन्दरता से कविताएँ गाकर सुनाईं! तुम हर एक चरण से इतना समरस हो जाती थीं कि तुम्हारी प्रत्येक कविता पर, श्रोताओं की तालियाँ बज उठती थीं।"

"वाह! परन्तु इसका सारा श्रेय मुझे नहीं है। इसका बहुत-सा श्रेय तो कवि का ही है। यदि आपकी मूल कविता में इतने गुण न होते, तो क्या वह श्रोताओं को पसन्द आती? मेरी जगह यदि कोई दूसरा गाकर पढ़ता तो भी..."

"मैं नहीं ऐसा सोचता। कवि के भावों से एकरस हो जाना सबसे नहीं बन सकता। इसलिए कल के श्रेय का बहुत-सा भाग तुम्हें ही देना होगा।"

इसके बाद कुछ समय तक चन्द्रकान्त स्तब्ध बैठा रहा। परन्तु उसके चेहरे पर जो भाव उमड़े हुए थे, उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि उसके मन के भीतर कुछ खलबली मची हुई है और वह, शायद इस विचार में खो गया है कि उसे किस तरह व्यक्त किया जाय। फिर वह एक पुष्पों से खिली क्यारी की ओर देखकर कहने लगा—"यदि दो-तीन महीने पहले मुझसे कोई कहता कि तुम्हारा और मेरा परिचय होगा और तुम मेरी कविताएँ सम्मेलन में पढ़ोगी, तो मुझे कभी यह सच न लगता। देखो, मनुष्य के परस्पर सम्बन्ध किस तरह संयोग से हो जाते हैं! तुम्हारे चाचा का पूना से तबादला न होता, तो कदाचित् तुम लक्ष्मीनगर भी न आतीं। फिर हम दोनों की मुलाकात कैसे होती? और परिचय भी कैसे होता? पर देखो, हमारा-तुम्हारा परिचय हुआ। उस परिचय को तुमने बढ़ने दिया। मेरे लिए तुम्हारे हृदय में ममत्व-भाव पैदा होने लगा। मेरी कविताओं की तुम दाद देने लगी। मुझपर तुम्हें अभिमान होने लगा और मेरे साथ सम्मेलन में हाज़िर होकर तुमने रसिकों को मेरी कविताएँ गाकर सुनाईं और एक तरह मेरे यश की समभागिनी हुईं? यह सब जैसे किसी स्वप्न की तरह अकल्पित और आकस्मिक लगता है। स्वप्न भी मीठा होता है, यह अनुभव मुझे आज तक न हुआ था। मैं आज तक स्वप्न की सफलता के बजाय उसकी विफलता के ही दृश्य देखता आया हूँ। परन्तु जब मैंने तुम्हारी निगाहों में अपने प्रति स्नेह-भाव देखे, तब मुझे यह आशा हुई कि मेरा कम-से-कम एक स्वप्न तो जरूर सफल हो जायगा। मेरा मन उल्लसित हो उठा। कल्पना में जो स्वप्न था, उसे साकार करने में वह रमने लगा। हेम—हेमलता, सच बताओ, वह साकार होगा क्या? आज तक जिस तरह तुमने मेरा साथ दिया, उसी तरह आगे जीवन-भर के लिए भी मेरा साथ दोगी क्या?"

चन्द्रकान्त के स्वर में कोमलता आगई थी। उसकी आँखों में प्रीति की आर्तता भर आई थी। हेमलता को वह स्पर्श कर गई।

उसने अपने नेत्रों द्वारा ही उत्तर दिया। उसका हृदय भी चन्द्रकान्त की

बातों से बोझिल-सा होगया था। उसकी वे भाव-दर्शक आँखें जैसे कह रही थीं—

"चन्द्रकान्त, इससे बड़ा मेरा और क्या सौभाग्य होगा कि मैं आप जैसे व्यक्ति के प्रेम की पात्री हो जाऊँ? वह सौभाग्य आप मुझे दे रहे हैं, इसमें आप ही का बड़प्पन नहीं है क्या?........."

परन्तु चन्द्रकान्त को इतने से ही सन्तोष न हुआ। उसने हेमलता के थर-थराते हुए हाथ को अपने हाथ में लेकर उसे कोमलता से दबाते हुए कहा—

"बोलो, हेमलता बोलो, तुम्हें स्वीकार है क्या?

उसने किंचित गरदन हिलाकर इशारे से ही हाँ कहा।

इसके बाद बहुत समय तक हाथ में हाथ डाले वे दोनों बैठे हुए स्पर्श-संगीत के सुख का अनुभव लेते रहे।

उधर अँधेरा धरा को अपने बाहुपाश में अधिकाधिक कसमसाकर भर रहा था।

उसके मिलन की ओर आकाश की चन्द्रिकाएँ आँखें मिचकाकर देख रही थीं!

×　　　×　　　×

रात को सब लोग भोजन कर रहे थे। चन्द्रकान्त के आग्रह से गोदावरी ने भी अपनी थाली सबके साथ ही परोस ली थी। हँसी-मजाक के बीच भोजन हो रहा था। बातचीत के सिलसिले में चन्द्रकान्त के विवाह का विषय निकल पड़ा।

गोदावरी ने कहा—"दादा, यह तो सब ठीक हुआ। पर, अब मुझे जल्द एक भाभी ले आओ। तुम यह काम आखिर और कब तक टरकाए रहोगे? माँ बेचारी बिल्कुल अकेली है। उसे भी एक साथ मिल जायगा। तुम जानती हो हेमा बहिन, हमारे दादा की एक अजीब हठ है? कहते हैं, जब मेरी पसन्द की लड़की मिलेगी, तभी मैं विवाह करूँगा। तब तक कोई भी उनके सामने बिवाह की बात न निकाले, यह हुक्म है उनका। अब ऐसे हठ को क्या कहा

जाय? जब तक इन्हें अपने पसन्द की लड़की नहीं मिलती, तब तक हमें अपनी भाभी की प्रतीक्षा में बैठे रहना पड़ेगा! है न?"

हेमलता ने चन्द्रकान्त की ओर देखकर किंचित स्मित किया।

"जो कवि होते हैं, उनमें एक-न-एक झक रहती ही है। हमारे इन कवि जी की भी यह उसी प्रकार की एक झक है।"—

वामनराव ने कहा।

"क्यों दादा, कब मिलेगी तुम्हें अपनी पसन्द की लड़की? अब और कितने दिन हमें प्रतीक्षा कराते रहोगे उसकी?"

"यह मैं कैसे कह सकता हूँ गोदूबाई? पर, इसमें शक नहीं कि लड़की बड़ी शरीर मालूम होती है। कौन जाने, कहाँ दुबक कर बैठी हुई है? तुम लोगों की अधीरता को देखकर वह जब प्रकट होगी तब होगी!"—चन्द्रकान्त ने हेमलता की ओर एक कटाक्ष फेंककर हँसते-हँसते उत्तर दिया।

"तुमको तो हमेशा मजाक सूझती है दादा! यदि इसी तरह हठ पकड़े बैठे रहोगे और इतनी छानबीन करते रहोगे, तो देखना कि कहीं किसी अप्सरा के बदले कोई कुब्जा तुम्हारे गले न पड़ जाय। ऐसा अकसर हो जाता है। इसीलिए कहती हूँ दादा को अधिक छानबीन के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए।"

इस तरह हँसी-मज़ाक के बीच भोजन समाप्त हुआ।

गोदावरी ने जो विषय निकाला था, उसका अन्त यद्यपि इस प्रकार हँसी-मज़ाक में हो गया, फिर भी चन्द्रकान्त और हेमलता की परस्पर बातचीत सुनकर और उनके बीच हो रहे आँखों के इशारे देखकर उसे यूँही लगा—

"सच, अपने दादा को यदि हेमलता जैसी पत्नी मिल जाय तो......? कितनी अच्छी लड़की है यह! कैसा अच्छा स्वभाव है इसका! और दादा के लिए ममत्व की कितनी भावना भी भरी हुई है इसके हृदय में! यह क्या बात है, कौन जाने? कुछ समझ में नहीं आता!"

\+ \+ \+

अन्त में चन्द्रकान्त के जाने का दिन आया।

गोदावरी सबेरे जल्दी उठ गई। अपना दादा आज चला जायगा, इस

विचार से उसे बुरा लगने लगा। अनिल और बेबी भी चन्द्रकान्त से बहुत प्यार करने लगे थे। वे उसे एक मिनट भी न छोड़ना चाहते थे। गोदावरी ने चन्द्रकान्त से कहा भी—

"दादा, इतनी जल्दी क्यों जा रहे हो? पूरे चार दिन भी तो नहीं रहे! तुम थे तो ये तीन दिन कितने मजे से बीत गए! अब तुम्हारे जाने पर, हमें आठ-दस दिन तक इस घर में अच्छा न लगेगा! कल तुम अनिल को छोड़कर घूमने चले गए थे न, तो वह मुझसे रूँआँसा होकर पूछ रहा था—'माँ, मामा अपने गाँव चले गए क्या?' क्या आज ही जाना जरूरी है? आज तो और रह जाओ!"

"प्रिय मनुष्य एक दिन क्या महीनों भी रहें, तो कम होता है। गोदूबाई हम नौकर लोग हैं। नौकरी का फन्दा हमारे गले में पड़ा हुआ है। जरा भी इधर-उधर हुए कि वह कस जाता है। फिर कभी आऊँगा, तो बहुत दिन तक तुम लोगों के बीच रहूँगा, ऐसा इन्तज़ाम करलूंगा। इतना रहूँगा कि तुम्हारा मन भर जायगा तुम जैसी प्रिय बहिन और अनिल तथा बेबी जैसे प्यारे बच्चों के बीच रहने में मुझे क्या अच्छा नहीं लगता?'—यह कहते हुए चन्द्रकान्त का कंठ भर आया।

जाने से पहले चन्द्रकान्त ने अनिल और बेबी के लिए बाजार से किस्म-किस्म की मिठाइयाँ और खिलौने आदि खरीद दिए। मतलब यह कि बच्चे इन्हीं चीजों से रमें रहें और उसके जाते वक्त उन्हें दुख का अनुभव न हो परंतु माँ के दौड़-धूप से बच्चों के ध्यान में आ गया कि आज मामा यहाँ से अपने गाँव को भाग रहा है और उनके छोटे-छोटे मुँह और भी अधिक छोटे हो गए।

जाने से पहले चन्द्रकान्त ने अपनी बहिन को भैया-दूज के उपलक्ष में एक सुंदर जरी की साड़ी उपहार में दी और पचीस रुपए के नोटों की एक गड्डी बेबी के हाथ में थमा दी।

बहिन और भाई गद्‌गद हो गए।

———

१४

दो-चार दिन से शंकर देख रहा था कि पार्वती अपने काम पर से जल्दी लौट आती है। उसने पार्वती से पूछा—'कुछ दिनों से देख रहा हूँ तू काम से बहुत जल्दी लौट आती है। किसी घर का काम छोड़ दिया है क्या ?'

'हाँ।'—सिर्फ इतना ही उत्तर देकर पार्वती मौन हो गई।

'किसके घर का ?'

'सुरेश बाबू के घर का।'

'एक तरह से यह ठीक ही किया। मैं तो कितने दिनों से कह रहा था कि इतना काम न किया कर।'

पार्वती कुछ न बोली। परन्तु जबसे इस विषय पर बात शुरू हुई थी, तबसे उसके चेहरे पर कुछ ऐसे भाव उमड़ पड़े थे, जिन्हें देखकर लगता था कि यह विषय उसको अप्रिय है और इसके लिए उसे कुछ दुःख भी हो रहा है।

शंकर की बात सुनकर उसे संतोष हुआ कि उसके पति को उसके काम छोड़ने का सच्चा कारण नहीं मालूम हुआ है और वह यही समझ रहा है कि अधिक काम न कर सकने के कारण ही उसने सुरेश के घर का काम छोड़ दिया है।

परन्तु सुरेश के घर का काम उसने इसलिए नहीं छोड़ा था कि उससे वह निपटता न था।

इसके बाद उसके हाथ तवे पर गरम-गरम रोटियाँ सेंकने में लगे हुए थे

और उसका मन उस अप्रिय स्मृति के चक्कर में फस गया था, जिसके कारण उसे सुरेश के घर का काम छोड़ देना पड़ा।

पहले-पहल पार्वती सुरेश को चन्द्रकान्त की तरह ही समझती थी और उससे बातचीत कुछ खुलकर किया करती थी।

एक दिन पार्वती सुरेश के घर काम करने गई। उस वक्त सुरेश ने स्टोव्ह जलाकर, उसपर पानी उबलने के लिए रख दिया था। पार्वती ने सोचा, आखिर बर्तन साफ करने के लिए मुझे रुकना ही होगा; इसलिए उसने सुरेश से कहा।—मैं चाय बनाए देती हूँ। आप बाहर बैठिए।'

अन्धा क्या चाहे, दो आँखें। सुरेश के लिए यह बड़ा अच्छा प्रस्ताव था। उसने सोचा, चलो एक बात से तो छुट्टी मिली। वह चट वहाँ से हटा और बाहर अपने बैठक के कमरे में आ गया।

पार्वती चाय बनाकर ले आई। वह उसकी चुस्कियाँ लेता हुआ बोला—

'वाह पारू, मैंने कभी नहीं सोचा था कि तू इतना बढ़िया चाय बना सकती है! तो अब कल से मैं चाय नहीं बनाऊँगा। दोपहर की चाय तू ही बना दिया कर!'

पार्वती भी इन्कार न कर सकी।

धीरे-धीरे बर्ताव में स्वतंत्रता आते ही एक दिन उसने पार्वती की सारी राम-कहानी, उससे पूछ ली। पार्वती भी वह सब कहानी सच-सच सुना दी। "कर्ज अदा करने के लिए हम लोगों को यहाँ आना पड़ा और ये काम करने पड़े।" जब यह बात उसने कहा, तो सुरेश ने खेद प्रकट किया।

वह बोला—'यदि तू यह बात मुझे पहले सुना देती, तो मैं तुझे अधिक तनख्वाह देता। खैर, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। अगले महीने से दो रुपए अधिक दिया करूँगा और तेरे पति की तनख्वाह बढ़ा देने के लिए भी बाबा साहब से कह दूँगा।......और हाँ, तुझे कभी किसी चीज की जरूरत पड़ जाय, तो मुझसे माँग लिया कर। संकोच करने की जरूरत नहीं; समझी?'

पेट के लिए अपने गाँव को छोड़कर यहाँ आई हुई उस गरीब स्त्री को

इससे अधिक और क्या चाहिए था ? वह सुरेश को जैसे अपना बड़ा हितू समझने लगी और उसके सब काम मन लगाकर करने लगी ।

भोली बेचारी ।

एक दिन वह चाय के बरतन साफ कर अलमारी के ऊपर रख रही थी । वह स्थान कुछ ऊँचाई पर था । इसलिए गरदन ऊँचा हो जाने से उसका आँचल सिर से खिसक कर बाएँ कन्धे पर लटकने लगा । बरतन रख चुकने पर उसने मुड़कर देखा, तो दरवाजे में सुरेश उसके खुले हुए उरोजों और केशकलाप की ओर ललचाई हुई आँख लगाए था । ज्योंही पार्वती ने गरदन मोड़ी, त्यों ही वह तुरन्त इस अन्दाज से, वहाँसे सटक गया, जैसे उसने कुछ देखा हो नहीं है । पार्वती मन-ही-मन लजा गई ।

धीरे-धीरे पार्वती ने देखा कि उसके साथ सुरेश के बर्ताव का ढंग बदल चला है और यह देखकर उसके मन में सुरेश के प्रति एक प्रकार का संदेह तथा भय पैदा हो गया ।

उपरोक्त घटना के कुछ दिन बाद .... ।

पार्वती चाय की प्याली तिपाई पर रखने के लिए आई । परन्तु सुरेश ने प्याली उसके हाथ से अपने हाथ में ले ली और ऐसा करते समय उसके हाथ को छू दिया । उस समय उसने ऐसा भाव दिखाया, जैसे अनजाने ही वह स्पर्श हो गया है । पर ....

परन्तु पार्वती ने यह समझा कि स्पर्श अनजाने हुआ है ।

और इसके बाद दूसरे ही दिन का वह आखिरी प्रसंग...

उस दिन पार्वती सुरेश के यहाँ काम पर जाने के लिए अपने घर से निकली । उसने अपने मन में निश्चय कर लिया, आज वह सुरेश से कह देगी कि कल से वह काम पर न आ सकेगी और वे कोई दूसरा इंतजाम कर लें । यह तो उसने सुरेश से पहले ही कह दिया था कि वह गर्भवती है, और कुछ दिन बाद उसे सब काम छोड़ देने पड़ेंगे । इसलिए उसने तय किया कि यदि सुरेश काम छोड़ने का कारण पूछेगा, तो वह यही कारण बता देगी ।

परन्तु वहाँ यह मौक़ा ही न आया । बात कुछ दूसरी होगई ।

नित्य की भाँति उसने चाय बनाई। सुरेश पलंग पर पड़ा हुआ कुछ पढ़ रहा था, इसलिए पार्वती प्याली तिपाई पर रख दी और वह वापस भीतर के कमरे में जाती हुई बोली—"चाय रख दी है!" इसके बाद वह दो-चार क़दम ही आगे बढ़ी थी कि किसी ने उसके हाथ को मज़बूती से पकड़कर पीछे खींचा। उसने मुड़कर देखा, तो वह सुरेश था। यह देखते ही कि वह ज़ोर से चिल्लानेवाली है, सुरेश ने एकदम उसका हाथ छोड़ दिया। पार्वती क्रोध का तीव्र कटाक्ष उसकी ओर फेंककर द्वार की ओर भागी और सीधी अपने घर चली गई। शंकर काम पर गया था। इसलिए उसने जल्दी-जल्दी घर का ताला खोला और वह भीतर आकर धड़ाम से कम्बल पर पड़ रही। उसके हृदय की बढ़ी हुई धड़कन मंद नहीं हो रही थी। फिर भी, एक भारी संकट से छुटकारा पा गई—यह सोचकर, उसकी जान-में-जान आई। परन्तु उसे बड़ा ताज्जुब हुआ कि वह अपना क्रोध इतना कैसे दबा सकी? क्रोधावेश में थरथराते हुए ओंठों तक आया हुआ "लफं—" शब्द भी मुँह से निकलने के पहले ही वह निकल भागी!

इस समय भी, इस स्मृति के साथ उसे अपने संयम पर आश्चर्य हुआ और उसे लगा कि जो कुछ, मैंने उस समय किया, वही उचित था; वही बुद्धिमानी थी। यदि चिल्लाती भी, तो उससे क्या होना-जाना था? नतीजा यह होता कि शंकर और उसे-दोनों को नौकरी से हाथ धोना पड़ता। उसने शंकर से भी यह बात नहीं कही थी। यदि कह देती, तो हो सकता था कि वह मारे गुस्से के पागल हो जाता और कोई कुविचार पूर्ण कार्य कर डालता। इसलिए वह मौन रही। परन्तु इस विचार से कि मुझपर इतना अन्याय और अत्याचार हुआ—मेरे शील पर इतना भारी संकट आया, फिर भी मैं अपने मुँह से एक शब्द तक न निकाल सकी, उसे ज़रूर खेद हुआ और उसकी आँखों से आँसू बह निकले। श्रीमानों की दुनिया में ग़रीबों के शील के साथ इसी तरह खिलवाड़ हुआ करता है—इसकी उस बेचारी को क्या कल्पना थी।

\+ \+ \+ \+

साहित्य-सम्मेलन में चन्द्रकान्त का जो सम्मान हुआ था, उसका वर्णन

समाचार-पत्रों में पढ़कर बबनराव के कलेजे पर साँप लोटने लगा था। दूसरे की भलाई उस जैसे स्वभाववाले मनुष्य से देखी ही न जाती थी। इसलिए वह मन में संचित की हुई इस गंदगी को कहीं बाहर जाकर उगल देने के इरादे से ही आज सुरेश के घर आया था। वह कोई भी बहाना लेकर आजकल सुरेश के घर बारंबार पहुँचता था। सुरेश की बातों से उसने अनुमान किया था कि सुरेश की चन्द्रकान्त से नहीं पटती है और उसका यह अनुमान कुछ अंश में सही भी था। सुरेश विशेष रूप से हेमलता की ओर आकर्षित हो गया था पर, हेमलता का खिंचाव चन्द्रकान्त की तरफ ही अधिक था। यह देखकर चन्द्रकान्त के प्रति सुरेश का तिरस्कार-भाव और अधिक बढ़ गया था, और अब तो हेम उसके साथ साहित्य-सम्मेलन में भी गई थी।

बबनराव को देखते ही सुरेश—"आइए-आइए" कहता और स्टोव्ह की कालिख से काले हुए अपने हाथ पोंछता हुआ बाहर निकला।

"क्या हो रहा है, साहब?" बबनराव ने मुस्कराते हुए पूछा।

"कुछ नहीं, चाय बनाने की तैयारी में हूँ। स्टोव्ह में ज़रा कालिख लग गई थी; उसे पोंछकर साफ कर रहा था। आइए, भीतर के कमरे में ही आ जाइए! यहीं बैठे-बैठे बातें करेंगे।"

बबनराव उसके साथ भीतरी कमरे में पहुँचा। उसकी तीव्र दृष्टि एक बार सब चीज़ों पर घूम गई। कमरे में तीन दिन से बुहारी नहीं लगी थी, बर्तन भी साफ नहीं दिख रहे थे। कमरे का वह सारा बदला हुआ रूप देखकर बबनराव ने कहा—"आप के घर पारू आती है न काम पर?"

"आती थी। पर, दो-तीन दिन से उसने काम छोड़ दिया है।"

"क्यों?"

"अजी वह शायद प्रेगनेण्ट (गर्भवती) है। इसलिए उसने कहा—"अब मैं काम नहीं कर सकूँगी।" मैंने कहा—"ठीक है।"

"देखा साहब, कैसे दिमाग़ चढ़ गए हैं, इन लोगों के आजकल! यही पारू जब दो साल पहले यहाँ आई थी, तब कैसी मेमने की तरह सीधी दिखती थी। चन्द्रकान्त ने ही बड़ी कोशिश कर उसके पति को यहाँ का काम दिला

दिया। परन्तु इसमें शक नहीं कि चन्द्रकान्त भी पूरा काइयाँ है!"—छद्म हास्य करते हुए बबनराव बोला।

"सो किस तरह भई?"

"आप हीं कह रहे हैं न कि वह गर्भवती है। बट फार ए लांग पीरियड शी बोर नो चाइल्ड (परन्तु बहुत दिनों तक उसे कोई बच्चा नहीं हुआ)।"—बबनराव ने अपने तर्क-शास्त्र के ज्ञान को अंग्रेज़ी में बघारना शुरू किया और फिर शीघ्र ही मातृभाषा का आश्रय लेकर बोला—"मेरे कहने का मतलब यह है कि चन्द्रकान्त ने उसे नौकरी भी दी और........" आगे का वाक्य उसने अधूरा ही छोड़ दिया।

पर, सुरेश उस अधूरे वाक्य के अर्थ को समझ गया। बबनराव के हावभाव ने भी उस अर्थ के समझने में सहायता पहुँचाई।

"बबनराव तुम्हारी तारीफ़ है यार! तुम्हें हर एक बात बिल्कुल रत्ती-रत्ती पता रहता है"

"छिः-छिः-छिः,"—बिल्कुल नाटकीय ढंग से कान पर हाथ रखता हुआ बबनराव कहने लगा—"आपको यों‌ही ग़लतफ़हमी हो रही है। अजी साहब हमें इन लोगों के मामलों से क्या लेन-देन! हमारा काम ही हमारे पास क्या कम है? यहाँ फ़ुरसत है किसे? हमारे यहाँ की वह नौकरानी है न मंजुला? एक दिन न जाने कैसे बात निकली, तो वही सब कुछ बता रही थी। वह उसी चाल में शंकर के घर के पास ही कहीं रहती है। कह रही थी कि चन्द्रकान्त समय-कुसमय शंकर के घर जाता रहता है। वहाँ खाना खाता है, चाय पीता है। अकेले में पार्वती से घुल घुल कर बातें करता है, मजाक करता है आदि-आदि। वरना, मुझे क्या जरूरत कि मैं इन बातों का पता लगाता फिरूँ?"

"छिः, यह तो बहुत बुरी बात है! मैंने कभी नहीं सोचा था कि ऐसा होगा। अब पता चला कि जब कभी चन्द्रकान्त की बातें चलती थीं, तो पारू के मन की कली-कली इस तरह खिल जाती थी कि कुछ पूछिए नहीं। यह चन्द्रकान्त बनता तो बड़ा सदाचारी और मज़दूरों का हिमायती है, पर......। यदि कोई यह बात सुन ले, तो उसपर विश्वास भी नहीं करेगा......

"ऐसा ही होता है ! और फिर ऐसी कोई बात हुए बगैर मजदूरों की सेवा करना सूझता किसको है ! पर ख़ैर, हमें क्या करना है, जो हम, लोगों की मैली चादर धोते फिरें । छोड़िये इन बातों को और भूल जाइए कि मैंने आज आपसे क्या कहा ।"

परन्तु सुरेश से न रहा गया और अन्तमें उसने हेमलता का विषय निकाला । वह बोला—"चन्द्रकान्त आजकल हेमलता के आसपास भी बहुत मँडराता रहता है । एक बार तो वह अकेला ही उसके साथ, बाबा साहब की कार में कविता-पाठ के लिए कलापुर गया था और रात में लौटा था । और इस बार तो साहित्य-सम्मेलन के लिए दोनों साथ-ही साथ पूना गए हैं । जबसे तुमने पारू की बात कही है, तबसे मुझे यह सब बड़ा अनिष्ट कारक मालूम हो रहा है । बाबा साहब के कान पर डाल दूँ क्या यह बात ? हेम-कालेज की छोकरी ! क्या समझेगी, इन चालाकियों को ?......"

"छिः-छिः, मैं इस विषय में क्या कह सकता हूँ ! कुछ भी हो, आखिर ये हैं बड़ों की बातें; और हम हेड क्लर्क भी हुए तो क्या, है तो एक क्लर्क ही । हम जैसे मामूली आदमी ऐसी बातों में अपनी क्या राय दे सकते हैं ? आपकी बात अलहिदा है, साहब आप बड़े आदमी हैं ?"—बिल्कुल सरलता का भाव दिखाते हुए बबनराव बोला ।

फिर वह विषय यहीं समाप्त हो गया ।

परन्तु बबनराव के चले जाने पर सुरेश के मन में हेमलता-सम्बन्धी विचार पुनः उठने लगे । उसने जबसे हेमलता को देखा था, तभी से वह उसकी ओर आकर्षित हो रहा था । उसके मन की उड़ानें शुरू हो गई थीं । हेमलता बाबा साहब की लड़की थी, और बाबा साहब उसके मामा के कारखाने में एक बड़े अधिकारी थे । इसलिए उसकी उड़ानें निराधार भी नहीं कही जा सकती थीं । जिस समय वह बाबा साहब और हेमलता से बातें करता था, उस समय वह अमेरीका जाने और अपने जीवन की महत्वाकांक्षाओं के विषय में बड़ी-बड़ी डींगें मारता था । वह कहता था कि उसके मामा हर एक मामले में उससे सलाह लिया करते हैं और जब दोनों की रायें मिल जाती हैं, तभी कोई काम आरम्भ

होता है। आजकल मामा के उद्योग-धन्धों का विस्तार इतना बढ़ गया है कि अकेले उनसे सँभाले नहीं सँभलता। इसलिए उनकी बड़ी इच्छा है कि मैं अमेरीका जाकर जल्द लौट आऊँ और उनकी मदद करूँ। ये सब बातें वह बड़े मज़ेदार ढंग से कहता था और बड़े ध्यान से देखता था कि बाबा साहब तथा हेमन्तता पर उनका क्या प्रभाव होता है।

एक बार वे तीनों इसी प्रकार एकत्रित बैठे हुए गप्पे हाँक रहे थे कि सुरेश कहने लगा—"कुछ ही दिन हुए, मामा ने पूना के समीप हजार-बारह सौ एकड़ जमीन खरीद ली है—इसका तो पता आपको होगा ही। एक कृषि-विशेषज्ञ से जब उसकी जाँच कराई गई, तो मालूम हुआ कि वह जमीन गन्ने की काश्त के लिए बहुत ही उपयुक्त है। बस, फिर क्या था; मामा के दिमाग में वहाँ सौ-डेढ़ सौ टन शक्कर बनाने का एक कारखाना खोलने की बात समा गई। जब पिछली बार वे यहाँ आए थे, तब उन्होंने ये सब बातें मुझसे कही थीं। उन्होंने यह भी कहा था कि किसी जगह एक मशीन बिकाऊ है—एकदम स्कोडा-मशीन। उनकी राय तो यह थी कि मैं अमरीका जाना स्थगित कर दूँ और तुरन्त इस नए कारखाने की जिम्मेदारी सँभाल लूँ। पर, मैंने उनसे कहा—"अभी तो आरम्भ ही है, ऐसी हालत में कारख़ाने की जिम्मेदारी उठाने की अपेक्षा बेहतर यही होगा कि मैं अमेरीका हो आऊँ, वहाँ से डिग्री लाऊँ और फिर यहाँ का सारा भार सम्भालूँ। तब तक आप यहाँ प्रारंभिक कार्य पूरे कर लीजिए। तब कहीं उन्हें मेरी बात जँची......"

"अच्छा, तो बड़े मालिक अब शीघ्र ही अपना नौवाँ कारखाना भी खोल रहे हैं? कहाँ की मशीनरी बिक रही है?"—बाबा साहब ने पूछा।

"यह तो मैं नहीं जानता। कहते थे कि "टाइम्स" में विज्ञापन निकला है।"

"इसमें शक नहीं कि इस उम्र में उनके काम करने की यह लगन अत्यन्त प्रशंसनीय है।" बाबा साहब के यह कहने पर सुरेश बोला—"अजी बड़े मालिक की आप जो तारीफ कर रहे हैं, वह तो ठीक ही है। परन्तु उन्होंने मुझ जैसे युवक पर जो इतने बड़े काम की जिम्मेदारी रखनी चाही है, वह क्या मेरे लिए कुछ भी तारीफ की बात नहीं है?"

इतना सब कुछ कहनेका, उसका सारा प्रयास क्या व्यर्थ ही था ?

वैसे देखा जाय, तो जहाँ तक बाबा साहब का सवाल था, उनपर उसकी बातों का कोई प्रभाव न पड़ता हो, यह बात न थी। थोड़ा बहुत प्रभाव उनपर अवश्य पड़ता था। परन्तु हेमलता के चेहरे के भावों से यह लगता था कि उसपर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। भला हेमलता जैसी काव्य-वृत्ति वाली युवती को इन औद्योगिक उलट-फेरों और स्कोडा-क्रिप जैसी मशीनरियों की शुष्क बातों में क्या मज़ा आ सकता था ? इसलिए लम्बी-चौड़ी बातों के पीछे छिपी हुई सुरेश की अमीरी शान हेमलता के मन पर कुछ भी जादू न कर सकती थी। ऐसे समय सुरेश को लगता कि उसका दिल चन्द्रकान्त पर चला गया है और इसलिए वह उसके प्रति इतनी उदासीन रहती है।

और फिर वह अस्वस्थ हो जाता और पागल की तरह यह सोचने लगता कि हेमलता के दिल से चन्द्रकान्त को किस तरह निकाल बाहर करूँ ?

ऐसी परिस्थिति में, बबनराव ने पारू के विषय में उससे जो बातें कहीं थीं, *उन्हें सुनकर उसे बड़ा सन्तोष हुआ था; क्योंकि उनके कारण उसके हाथ में* चन्द्रकान्त-मर्म को भेदने वाला अचूक तीर आ गया था।

१५

चन्द्रकान्त जब पूना से वापस आया, तो उसने पहला धक्का देने वाला जो समाचार सुना, वह था कम्पनी द्वारा घोषित किए गए बोनस के विषय में।

नित्य की भाँति उस दिन जब वह आफिस में गया, तब उसके एक सहकारी दरशने बाबू ने धीमी आवाज़ में उससे पूछा—"क्यों चन्द्रकान्तजी, तुम्हें पता लगा क्या?"

"किस बात का भई? मैं तो आज ही थोड़ी देर पहले पूना से लौटा हूँ। फिर मुझे क्या मालूम होगा?"

"कम्पनी ने पिछले साल के मुनाफे से सिर्फ दो महीने का वेतन ही बोनस के रूप में देना घोषित किया है।"

"कहते क्या हो? केवल दो ही महीने का वेतन? ताज्जुब है!"

उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। आश्चर्य के साथ ही उसकी मुद्रा पर खेद, संताप और निराशा के भाव भी झलक उठे। उसके मस्तिष्क में विचारों ने कोलाहल मचा दिया।

और इसमें अस्वाभाविक क्या था?

स्वतंत्रता-काल में राष्ट्रीय-सरकार ने अनियंत्रण की नीति का अवलम्बन किया, जिससे व्यापारियों और मिल-मालिकों की पाँचों अँगुली घी मे हो गई। उन्हें मुनाफ़ा पाटनेका इतना अच्छा मौक़ा मिल गया, जितना युद्ध-काल मे भी नहीं मिला था। इस प्रकार अनायास ही हाथ लगे मौके से जो लाभ न उठावे, वह

व्यापारी कैसा ? कन्ट्रोल उठा ही था कि चीजों के भाव इस तरह बढ़ने लगे, जैसे हवा भरने से रबर का गुब्बारा बढ़ने लगता है। उस समय हमारे देश के व्यापारियों और मिल-मालिकों ने देश-हित की परवाह नहीं की, और न अपने देश-भाइयों की दशा का ही कुछ ख़याल किया। युद्ध-काल की महँगाई के कारण जनता पहले से ही परेशान थी। उसी परेशान जनता की जेब से बचे-खुचे पैसों को खुरच-खुरचकर निकालने का इन व्यापारियों ने जैसे एक रोज़गार ही बना लिया। उन्होंने अपनी नई अधिकारारूढ़ राष्ट्रीय-सरकार की जय बोली और उसकी कृपा से उन्हें जो स्वर्ण अवसर प्राप्त हो गया था, उसका इन्होंने भले-बुरे मार्ग से दिल खोलकर लाभ उठाया। जब मुनाफे का पैसा ही पाप पर आधारित होता है, तब वहाँ छोटे और बड़े पाप में तारतम्य दिखाने की वास्तविकता का क्या अभिप्राय ? क्या छोटा और क्या बड़ा पाप तो आख़िर पाप ही है न ? फिर बड़ा पाप ही क्यों न किया जाय ? और वैसे देखा जाय, तो व्यापारी स्वहित देखते थे—अपनी भलाई देखते थे। क्या वह पर्याय से देश की ही भलाई नहीं हुई ? आख़िर वे भी तो इसी देश के अंग थे, और देश के अंग की भलाई क्या देश की भलाई नहीं हुई ? परन्तु सरकार को छोड़कर और किसी भी देश-वासी के दिमाग में यह दलील प्रवेश नहीं करती थी—जनता इस सत्य को समझती ही नहीं थी। बताइए, इससे अधिक कृतघ्नता और क्या हो सकती है ?

शक्कर पर से भी नियंत्रण उठा और शक्कर की मिलों के मालिकों के भाग्य जाग उठे। शक्कर को वह भाव मिला, जो उन्होंने कभी स्वप्न में भी न सोचा था। बस, उन्होंने सिद्ध कर दिया कि स्वहित-साधन में वे कपड़े की मिलों के मालिकों से रत्तीभर भी कम नहीं हैं। जब चाय के कारण मानव-जीवन की दैनिक आवश्यकता बनी शक्कर, बाज़ार से ग़ायब हो गई, तो लोगों के प्राण सूख गये। उनके मुँह से निराशा-भरे स्वर निकलने लगे—"अजी किस-किस चीज की चिन्ता करें—कपड़े की ? अनाज की ? या शक्कर की ? बस, जी रहे हैं किसी तरह !" इस अल्पावधि में शक्कर की मिल वालों ने इतना मुनाफा पीटा, जिसका कोई हिसाब नहीं ?

खुद लछमीनगर शुगर-मिल्स को भी इस साल बेहिसाब मुनाफा हुआ-लाखों रुपये का। इसलिए चन्द्रकान्त का ख़याल था कि इस वर्ष मिल के स्वामी ज़रूर कुछ उदारता दिखाएँगे और खुशी से हर एक मज़दूर को कम से-कम चार छः महीने की तनख्वाह बोनस के रूप में दे देंगे। वरना, पिछले दो-तीन सालों से तो वे अपने मज़दूरों को बोनस के नाम अँगूठा ही दिखाते आए थे। कभी कह दिया मुनाफा ही नहीं हुआ, कभी थोड़े मुनाफे की बात सामने ले आए और कभी चिल्ला उठे कि कम्पनी को घाटा हुआ है। इस तरह एक-न-एक कारण उपस्थित कर वे बोनस के प्रश्न की जड़ ही काट डालते थे। परन्तु चालू साल में कल्पनातीत मुनाफा होते हुए भी मालिकों द्वारा दिया जाने वाला बोनस सिर्फ दो महीने के वेतन तक ही सीमित रहे, यह सुन चन्द्रकान्त को सहज ही बड़ा आश्चर्य हुआ। वह चिढ़ा, उसे क्रोध आ गया। अति वृष्टि के कारण नदी, नाले, कुवे, तालाब आदि जल से लबालब भर जाते हैं, और फिर अतिरिक्त जल इधर-उधर बह निकलता है। परन्तु निश्चित समय पर और निश्चित परिमाण में पानी छोड़ने वाली नल की चाबी पर इस अतिरिक्त जल का कोई असर नहीं पड़ता। नल का पानी सीमित ही बना रहता है। चन्द्रकान्त ने प्रत्यक्ष देखा था कि कम्पनी के हिसाब की किताबों के हर एक पृष्ठ पर अतिरिक्त मुनाफे के आँकड़े थे। परन्तु जिस तरह अतिवृष्टि में अतिरिक्त जल का नल पर कोई असर नहीं पड़ता, उसी तरह मिल के मालिकों का बोनस-सम्बन्धी व्यवहार था, ऐसा चन्द्रकान्त को प्रतीत हुआ।

इस बोनस पर बड़ी आशा से सारे मजदूरों की आँखें लगी हुई थीं। महगाई चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। मजदूरों को जो वेतन मिलता था, वह उन्हें मुश्किल से अपना पेट भरने के लिए ही पर्याप्त होता था। मिल वाले वेतन बढ़ाएँगे, यह आशा व्यर्थ थी। इसलिए जीवन की मामूली आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए—जो वेतन से पूरी नहीं होतीं—मजदूरों की आँखें बोनस की ओर लगी रहें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? विशेषतः शक्कर के कारखाने को प्राप्त हुए मुनाफे की रकम देखकर मजदूरों की आशाओं में पर निकल आए थे। परन्तु उन पर पानी फिर गया। इस वर्ष कुछ हजारों का ही बोनस घोषित कर मिल-

वालों ने यह प्रत्यक्ष दिखा दिया कि मुनाफे में मजदूरों का कितना हिस्सा होता है। उधर सरकार बार-बार मजदूरों को अधिक उत्पादन करने का सलाह देती रहती था। परन्तु यह कोई न सोचता था कि मजदूरों का भी पेट होता है और वह भरा हुआ रहे तभी उनके हाथ से ठीक तरह काम हो सकता है। फिर भी शायद सरकार सोचती थी कि ऐसी विकट परिस्थिति में देश के लिए मजदूरों को यह त्याग करना ही चाहिए ? क्या उनका यह फर्ज नहीं कि वे देश के लिए कुछ भूखे रहें ?

इस प्रकार इस घटना पर विचार करते-करते चन्द्रकान्त का मस्तिष्क भन्ना उठा। अन्त में उसने निश्चय किया कि आज रात को मजदूरों की पाठशाला में इस विषय पर उनकी राय जानूँगा और देखूँगा इस घोषणा से उन पर क्या असर हुआ है और फिर अपना आगामी कार्य-क्रम निश्चित करूँगा।

रात को वह पाठशाला में गया। मजदूर आ गए थे और पढ़ाई शुरू हो चुकी थी। बात-चीत के सिलसिले में एक मजदूर ने चन्द्रकान्त से कहा—"सुनते हैं कि दो महीने का वेतन ही हमें बोनस में मिलेगा—यानी पन्द्रह और पन्द्रह कुल तीस रुपए ! हमने रात और दिन पसीना बहाया, उसका यही इनाम है क्या ? अच्छा न्याय है भई !"

चन्द्रकान्त कुछ कहे, इससे पहले ही दूसरा बोला—

"अरे, यह क्या बक रहा है ? बोनस देना तो मालिक की खुशी पर है। जो दें, उसे चुपचाप ले लो। अगर वे बोनस न दें, तो तुम क्या कर लोगे उनका ? तुम मज़दूरी करते हो, उसका वेतन तुम्हें मिल ही रहा है। बोनस तो उनकी खुशी की बात है। दें न दें।"

इस प्रकार की उल्टी-सीधी बातें चन्द्रकान्त के कान में पड़ीं। उसने समझ लिया कि कुल मिलाकर बोनस के समाचार से मज़दूरों में असन्तोष फैला रहा है और कुछ लोग चिढ़ भी गए हैं। पर, कोई यह नहीं सोच पा रहा था कि इस अन्याय को दूर करने के लिए करें, तो क्या करें। प्रायः सभी का यह मत था कि इसके लिए आन्दोलन किया जाय और अंत तक लड़कर इस सवाल का अंतिम फैसला कर लिया जाय। इसलिए उन्होंने चन्द्रकान्त से सलाह

ली और अंत में उससे कहा,—"तुम जैसा कहो, हम करने के लिए तैयार हैं। तुम हमें रास्ता दिखाओ और हम सब उसपर तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे। पीछे नहीं हटेंगे, यह हम तुम्हें विश्वास दिलाते हैं।"

इस आश्वासन के कारण चन्द्रकान्त को कुछ धीरज बँधा और उसके मन को थोड़ा सन्तोष भी हुआ। उसने लोगों से कहा—

"मुझे भी इस बात से बड़ी चिढ़ उठती है कि रात-दिन पसीना बहाओ तुम, और उसका पूरा लाभ उठाएँ मिल वाले! सच पूछा जाय, तो मिलवालों को जो मुनाफा होता है, उसके मालिक तुम भी हो। इसलिए यदि वे तुम्हें उसका वाजिबी हिस्सा देते हैं, तो यह उनकी कोई मेहरबानी नहीं है, बल्कि वह तुम्हारा हक़ ही है। यदि वह तुम्हें पूरा नहीं मिलता, तो यह तुमपर अन्याय है और इसका प्रतिकार करना आवश्यक है। असल बात यह है कि तुम्हारी माँग के पीछे संगठन की प्रबल शक्ति नहीं है। इसलिए मिलवाले तुम्हारे सामने एक टुकड़ा फेंक कर तुम्हें शान्त कर देते हैं। तुम चुपचाप उसे स्वीकार कर लेते हो। तुम डरते हो कि वे मालिक हैं, हम उनसे अधिक कैसे माँगे! जो उन्होंने दिया है, वह उनकी कृपा है। इसलिए पहला बात यह है कि तुम पढ़ो। पढ़कर अपने हक़ पहचानो। अपने भीतर की कमजोरी दूर करो और भय को भगा दो। सब मिलकर एक संगठन बनाओ और उस संगठन के जरिए अपनी माँगें पेश करो। संगठन के पीछे जो प्रबल शक्ति होगी, उसके सामने मिलवालों को तुम्हारा न्यायोचित माँग ठुकराना कठिन हो जायगा। साथी प्रकाश ने उस दिन अपने भाषण में जो कहा था, उसे भूल जाने से काम नहीं चलेगा......"

आखिर तय हुआ कि लक्ष्मीनगर-मिल्स के मजदूरों का एक यूनियन बनाया जाय। इसकी स्थापना के लिए २६ जनवरी का दिन निश्चित किया गया, क्योंकि जनता इसी पवित्र दिन आज एक स्वतंत्रता प्राप्त करने की शपथ ग्रहण करती आई थी। अतः आर्थिक स्वतंत्रता के दिन भी इसी दिन संगठन करना उचित था।

बस, उस दिन से चन्द्रकान्त का सारा खाली समय मजदूरों का संगठन

करने में बीतने लगा। वह पूना में रहते हुए एक दिन प्रकाश से जाकर मिला था। उस वक्त उन्होंने उससे लक्ष्मीनगर में मजदूरों की एक यूनियन की स्थापना करने के लिए कहा था। पर, उसकी यह कल्पना न थी कि पूना से लौटते ही, उसे यह काम इतनी जल्दी शुरू कर देना पड़ेगा।

इससे पहले लक्ष्मीनगर में मजदूरों का कोई संघ न था, कोई संगठन न थी। बहुतसे लोग अपढ़ थे। उनके लिए यूनियन का महत्व और उसकी उपयोगिता जल्दी समझ लेना कठिन था। इसलिए कुछ मजदूर यूनियन में शामिल होने से हिचकिचाते थे। वे सोचते थे कि ऐसा करने से मिलवाले उनसे नाराज़ हो जाएँगे और आज, जो रूखी-सूखी मिल रही है उनसे भी उन्हें हाथ धोना पड़ेगा। चन्द्रकान्त को ऐसे लोगों का अज्ञान और भय दूर करना पड़ता था। वह उन लोगों से दूसरी जगह की यूनियनों की बातें कहता और उनके जो वृत्तान्त अख़बारों में छपकर आते, उन्हें उनके सामने पढ़कर सुनाता तथा समझाता था। जो मज़दूर पाठशाला में नहीं आते वे उनके घर वह स्वयं जाता था और उन्हें यूनियन के बारे में समझाता था। हर तरह से उनकी शंकाओं और कुशंकाओं को दूर करके उन्हें यूनियन की तरफ आकर्षित करता था।

अंत में २६ जनवरी आ गई। उस दिन चन्द्रकान्त ने पाठशाला के मैदान में मज़दूरों की सभा बुलाई। सारा मैदान मजदूर स्त्री-पुरुषों और बच्चों से खिल उठा था। आरम्भ में चन्द्रकान्त ने साथी प्रकाश के द्वारा भेजा गया संदेश पढ़कर सुनाया —

"आप लोग २६ जनवरी के शुभ मुहूर्त पर अपने कारखाने के मजदूरों का संगठन स्थापित कर रहे हैं, यह बड़ी खुशी की बात है। मजदूरों को अपनी शिकायतें मिलकर एक आवाज में प्रभावशाली ढंग से पेश करने के लिए यूनियन के समान दूसरा साधन नहीं है। इस समय अच्छी तरह संगठित होकर देश में फैल रही प्रतिगामी शक्ति का नाश करना ही मजदूरों का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण काम है। मुझे आशा है कि आपकी यूनियन आपके कारख़ाने के मज़दूरों की समस्याएँ तो हल करेगी ही, पर इसके साथ ही देश के इस

महत्वपूर्ण कार्य को भी सम्पन्न करने में यथाशक्ति सहायक होगी। मैं आपकी यूनियन को अपनी शुभकामनाएँ भेजता हूँ।"

तालियों की प्रचंड तड़तड़ाहट में मजदूरों ने हृदय से इस संदेश का स्वागत किया। इसके बाद इस विषय पर चन्द्रकान्त ने भी एक छोटा-सा भाषण दिया और "लक्ष्मीनगर मजदूर-संघ" के स्थापित होने की घोषणा की।

थोड़े ही दिनों में संघ की कार्य-कारिणी-समीति की बैठक में चन्द्रकान्त ने बोनस का सवाल पेश किया। इसपर बहुत-सी चर्चा हुई और अंत में उसने कम्पनी के मालिकों के पास भेजने के लिए एक प्रार्थना-पत्र का मजमून तैयार किया। उसमें कम्पनी को गत पन्द्रह वर्ष के कार्य-काल में कितना मुनाफा हुआ था, उसमें से हिस्सेदारों को कितना बाँटा गया और मजदूरों के हिस्से में कितना आया, इसके आँकड़े दिए। इन आँकड़ों द्वारा उसने यह स्पष्ट दिखा दिया कि हिस्सेदारों को अपनी पूँजी की भरपाई के बाद ऊपर से बोनस और शेयर्स भी मिले हैं। पर, मजदूरों को दिए गए बोनस की रकम सिर्फ कुछ हजार ही रही है और कम्पनी ने उनके रहने के लिए अच्छे मकान भी नहीं बनाए हैं।

इसके बाद वह नियन्त्रण उठा लिये जाने के बाद वाले समय पर पहुँचा। उसने यह बताया कि इस अवधि में कम्पनी को किस तरह अधाधुन्ध मुनाफा हुआ है, अतएव स्वाभाविक रूप से मजदूरों की आशाएँ भी कैसे बढ़ी हैं। परन्तु उनकी आशाओं को कम्पनी के वर्तमान बोनस-सम्बन्धी निर्णय से किस कदर आघात पहुँचा है। इसका वर्णन करने के बाद उसने मजदूरों की माँगें पेश कीं—

पिछले वर्ष के मुनाफे से मजदूरों को छः महीने के वेतन के बराबर बोनस दिया जाय। उस मुनाफे से कुछ रकम अलग निकाल कर रखी जाय और वह मजदूरों के लिए पक्के मकान बनवाने के मद में खर्च की जाय।

इस प्रकार का प्रार्थना-पत्र कम्पनी के पास भेज देने के बाद उसका उत्तर आने तक चन्द्रकान्त यूनियन के काम में व्यस्त हो गया।

\+ + +

आजकल यूनियन के कार्य में चन्द्रकान्त इतना व्यस्त हो गया था कि दूसरी किसी भी बात की ओर ध्यान देने के लिए उसे फुरसत नहीं मिलती थी। रात को वह पाठशाला का कार्य करता था और दिन को तथा सुबह यूनियन का। उसका स्वभाव था कि वह जिस काम को हाथ में लेता और जब तक उसे पूरा नहीं कर डालता, तब तक अपने ध्यान को अन्यत्र न जाने देता था। पहले-पहले यह बात उसे बड़ी कठिन प्रतीत हुई। सुबह एक घण्टे के लिए ही क्यों न हो, हेमलता के घर रोज जाने का, उसका नियम-सा हो गया था। इसलिए जब वह समय आता और यदि वह किसी मजदूर से बातें करता होता, तो उसका मन हेमलता के बँगले पर जा पहुँचता और उसके आस-पास मँडराने लगता था। उसके सहवास की मधुर स्मृतियों में वह खो जाता और उसके मन में आता कि मजदूर से बातें बंद कर हेमलता के बँगले पर चल दूँ। परन्तु शीघ्र ही वह इस मोह को संवरण कर लेता, होश में आता, + अपने मन की खूब भर्त्सना करता और फिर प्रस्तुत काम में लग जाता था।

नित्य आनेवाले चन्द्रकान्त ने इस प्रकार अचानक आना क्यों बंद कर दिया, यह बात हेमलता को महसूस हुई और उसके मन की बड़ी विचित्र दशा हो गई। दो-चार दिन उसने अपने मन को यह कहकर समझाने की कोशिश की कि शायद किसी काम में व्यस्त हो जानेसे वह न आ सका हो। इस तरह अपने मन को समझानेमें उसके कुछ दिन बीते। परन्तु जब उसे पता लगा कि वह मजदूरों का यूनियन बनाने के काम में लगा है, तब वह कुछ उदास हो गई। उसे चिन्ता होने लगी कि मेरा चन्द्रकान्त मुझसे दूर हो जायगा क्या? उससे न रहा गया और उसने एक-दो बार गनपत के द्वारा उसे अपने बँगले पर आने का संदेश भेजा। एक बार चन्द्रकान्त आया और खड़े-खड़े ही उससे मिल कर चला गया। उसने कहा कि मैं इस समय बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य में व्यस्त हूँ, इसलिए अधिक नहीं ठहर सकता। उसने सारांश में अपने काम की रूपरेखा भी उसे बता दी।

परन्तु संक्रान्ति के दिन वह स्वयं जानबूझ कर हेमलता के बँगले पर पहुँचा।

उसे देखते ही हेमलता के चेहरे पर प्रफुल्लित कमल की ताजगी आ गई। उससे न रहा गया और उसके मुँह से ये शब्द निकल पड़े—

आखिर आज चन्द्रमा का उदय हो ही गया।

तब तो सारा कल्मष लोप हो जाना चाहिए! चन्द्रकान्त ने स्निग्धता से उत्तर दिया।

'उसके लिए चन्द्रोदय रोज होना चाहिए। एक दिन के चन्द्रोदय से महीने-भर का कल्मष दूर नहीं होता।'

'शायद तुम्हारा ख्याल है कि चन्द्रमा को तुम्हारा कल्मष दूर करने के सिवा और कोई काम नहीं है?'

इसके बाद कुछ समय तक दोनों इसी प्रकार मीठी-मीठी बातें करते रहे। बहुत दिनों के बाद दोनों की भेंट हुई थी, इसलिए दोनों खुलकर बातें करते और उल्लसित होते थे। हेमलता तो विशेष रूप से प्रसन्न दिख रही थी। इस विचार से कि मेरा चन्द्रकान्त मुझे भुला नहीं है।

चाँदी की कटोरी से मीठे काँटेदार तिल लेकर उन्हें चन्द्रान्त के हाथ में रखते हुए उसके हाथ का उसकी अँगुलियों से स्पर्श हो गया और दोनों के शरीर रोमाँचित हो उठे। चन्द्रकान्त देर तक उसके सुकुमार हाथ को अपने हाथ में लिये रहा।

———

१६

पाँच छः दिनों के बाद ही एक ऐसी घटना हुई, जिससे हेमलता को यह जबरदस्त शंका होने लगी कि चन्द्रकान्त चाहे उसे भूला न हो, फिर भी कहीं, वह उससे दूर तो चला जायगा ?

उस दिन भी चन्द्रकान्त अपने आप थोड़ा समय निकाल कर उसके बँगले पर आया था।

पूना की 'उष:काल' नामक सुप्रसिद्ध फिल्म-कम्पनी ने अपनी एक फिल्म के गीत लिखने के लिए चन्द्रकान्त को बुलाया था। इस फिल्म के समाप्त होने पर यदि उसकी इच्छा हुई तो कम्पनी उसे गीतकार की हैसियत से स्थाई रूप में अपने यहाँ रखने के लिए तैयार थी। उस सम्बन्ध में प्रारम्भिक बातें करने के लिए, कम्पनी ने उसे पूना आने की प्रार्थना की थी। "उष:काल" जैसी विख्यात फिल्म-कम्पनी की ओर से गीत लिखने के लिए बुलावा आना, सचमुच बड़े अभिमान की बात थी। वह कम्पनी भारत की सर्वश्रेष्ठ कम्पनियों में गिनी जाती थी। यदि ऐसे समय चन्द्रकान्त की जगह दूसरा कोई होता, तो वह थोड़ा भी समय नष्ट न कर पहली गाड़ी से ही कम्पनी की ओर दौड़ पड़ता। ऐसा अवसर पाने के लिए जहाँ निरन्तर प्रयत्न होते रहते हैं, वहाँ अनायास ही आए इस अवसर को स्वीकार करने में कौन विलम्ब करता ?

परन्तु चन्द्रकान्त इस प्रवृत्ति का नहीं था।

इसका मतलब यह नहीं कि उसे इस निमन्त्रण में आनन्द नहीं हुआ, या

उसने अपने लिए यह अभिमान की बात न समझी। परन्तु उसके सामने प्रश्न बिल्कुल भिन्न था। फिल्म कम्पनी में चले जाने से उसकी आर्थिक स्थिति सुधरती और उसे ख्याति भी खूब प्राप्त होती, इसमें संदेह नहीं। वह यह महसूस करता था। पर, साथ ही उसे यह भी लगता था कि ये दो बातें छोड़कर और कोई बात सिद्ध न होगी। उलटे उसे स्पष्ट दिख रहा था कि अन्य सब बातों की हानि ही होगी। जिस आर्थिक-सम्पन्नता के अभाव में उसे अपनी महत्वाकांक्षा त्याग देनी पड़ी थी, अनेक अपमान सहन करने पड़े थे, और उसका घर बिगड़ गया था, उसकी आर्थिक-सम्पन्नता के अभाव की पूर्ति का एक सुवर्ण अवसर अचानक उसके सामने आ गया था। यदि यह अवसर देखकर कुछ समय के लिए उसे कुछ संभ्रम हुआ हो, तो आश्चर्य ही क्या है? परन्तु वह एक जागृति बुद्धि वाला और ज्वलंत ध्येयवादी तरुण था। वैयक्तिक सुख और वैभव की मोहनी बहुत देर तक उसके चित्त को विचलित न कर सकी थी। जबसे उसने होश सम्हाला था; तभी से आर्थिक सम्पन्नता से कुछ भिन्न ध्येय ही अपने सामने रख लिया था। बचपन से ही वह अपने मन को यह पटाता आया था कि उसे साधारण लोगों की अपेक्षा कुछ भिन्न प्रकार का जीवन व्यतीत करना है। कुछ अलग पदार्थ ही प्राप्त करनी है। फिल्म-कम्पनी में जाने से उसके सारे ध्येय मिट्टी में मिल जाते। साथ ही जिन लोगों के बीच आज तक वह रहा था, जिनके दुखों से वह दुखी हुआ था, जिन्हें सुख प्राप्त कराने के लिए हृदय से कुछ करने की उसकी इच्छा थी, जिन्हें अपने साथ लेकर हाल ही में वह एक विशिष्ट मार्ग से चलने लगा था, उन्हें रास्ते में ही छोड़ कर वह अकेला सुख और वैभव में रहे? छिः! छिः उसकी आज तक की साधना क्या झूठी थी? और यदि वह उन्हें इस तरह आधे रास्ते पर छोड़कर चल दे, तो साथी प्रकाश भी अपने मन में क्या सोचेंगे? उन्होंने उसके प्रति जो बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रखी हैं, वे सब एकदम झूठ होंगी और इससे उनके हृदय को जबरदस्त धक्का लगेगा।

साथी प्रकाश का स्मरण आते ही चन्द्रकान्त के हृदय में प्रकाश चमक उठा। उनके त्यागमय जीवन की याद आ गई। राष्ट्र-सेवा के लिए उन्होंने किस तरह प्रोफेसरी ठुकरा दी। उन्हें लम्बी तनख्वाह मिलती थी। सारे सुख और

वैभव उनके चरणों पर लोटते थे। परन्तु सुखमय जीवन की मोहनी उनके मन को न लुभा सकी। जिसे अपने जीवन में कोई महत्कार्य कर दिखाना है, उसे इस प्रकार के सुखमय जीवन का त्याग करना ही आवश्यक होता है। यह विचार चन्द्रकान्त के मन को स्पर्श कर गया।

उसने मन-ही-मन कहा—'मैंने मजदूरों को संगठित करने का कार्य अपने हाथ में ले लिया है। मजदूरों ने बड़े विश्वास से अपना सारा भार मुझपर डाल दिया है। तो क्या मैं उन्हें धोखा दे दूँ? मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि दिन-दहाड़े उनके साथ अन्याय हो रहा है। तो क्या मैं अपने स्वार्थ के लिए उनकी ओर से अपनी आँखें बन्द कर लूँ? क्या उसका प्रतिकार करने के लिए मैं उनका साथ छोड़ दूँ? और यह सब क्यों? केवल अपने वैयक्तिक सुख के लिए!'

'नहीं-नहीं, कम-से-कम मुझसे तो यह कभी न होगा!'

इस प्रकार के विचारों में ऊबता-डूबता हुआ, हेमलता की राय जानने और यह अनुमान लगाने के लिए कि वह इस कार्य में उसे कहा तक प्रोत्साहन देती है, यह बड़ी आशा से उसके बँगले पर पहुँचा। चन्द्रकान्त को देखते ही उसने सदा की भाँति हर्ष-पूर्वक उसका स्वागत किया और उसके द्वारा दिया गया फिल्म-कम्पनी का पत्र पढ़कर तो उसके आनन्द की सीमा न रही।

'सम्मेलन में आपका जो सम्मान हुआ, उसीका असर जान पड़ता है यह। फिर आपने इसका उत्तर भेज दिया या नहीं?'

'नहीं अभी तो नहीं भेजा है। क्या उत्तर भेजूँ यही सोच रहा हूँ?

'क्यों ऐसी कौन सी बड़ी पहेली है यह?'

'यह पहेली से भी कठिन है।'

'इसका मतलब? क्या इन्कार कर देना चाहते है आप?—उसके स्वर में तीव्रता थी।

हाँ! – चन्द्रकान्त ने गंभीरता पूर्वक कहा।

यह देख कर कि मेरे उत्तर से उसकी मुद्रा पर असंतोष की छाया स्पष्ट रूप से झलक उठी है चन्द्रकान्त ने कहा —

''यह आमंत्रण स्वीकार करने से भय है कि मुझे अपना ध्येय छोड़ना

पड़ेगा; और ध्येयवादी मनुष्य को अपना ध्येय प्राणों से भी अधिक प्यारा होता है।

"कौन-सा ध्येय ? काव्य-लेखन का ही न ? परन्तु इसके लिये तो आपको वहाँ अधिक क्षेत्र मिलेगा।"

'काव्य लेखन के लिए ? वाह, यह भी खूब कही ! हेमा मुझे आश्चर्य होता है कि तुम भी काव्य और गीत में जो अंतर है, उसे नहीं समझती ! मैं वहाँ गीत तो बहुत लिखूँगा पर, इससे मेरा काव्य समाप्त हो जायेगा। यह तो एक बात हुई। दूसरी बात यह है कि मैंने मजदूरों को संगठित करने का कार्य हाल में ही आरंभ किया है, वह मुझे अधूरा छोड़ देना पड़ेगा। काव्य-लेखन की तरह मजदूरों के संगठन का कार्य भी मुझे प्रिय है।

'आपको मजदूरों का संगठन प्रिय है परंतु मनुष्य प्रिय नहीं है। मेरा प्रेम प्रिय नहीं है।

'तुम्हारा प्रेम प्रिय है। पर ध्येय के आड़े आनेवाला प्रेम प्रिय नहीं है।

'मजदूरों के संगठन का ध्येय भी कोई ध्येय है ! काव्य-लेखन का ध्येय तो मैं समझ सकती हूँ। उसे मान भी सकती हूँ। सम्मेलन से लौटने के बाद मैं सोचा करती थी कि वहाँ जो आपका इतना बड़ा सम्मान हुआ है, उसे देखकर तो आप अपना सारा ध्यान काव्य-लेखन की ओर ही मोड़ देंगे। मैं पगली थी, जो सोचती थी कि जिस प्रकार चन्द्रकान्त जी मुझे चाहिए, वही अब कुछ दिन बाद मुझे दिखाई देंगे। परन्तु यहाँ आकर देखती हूँ, तो सब बातें उलटी नजर आ रही हैं। मजदूरों की ओर आपका आकर्षण दिन प्रति दिन बढ़ रहा है। इसलिए आपको मेरे घर भी आने का अवकाश नहीं मिलता है। और अब तो आपने हद ही कर दी कि अनायास आए हुए इस सुवर्ण अवसर को आप उनके कारण ठुकराने जा रहे हैं। सच चन्द्रकान्त जी ! मैं कैसे कहूँ, काश आप मेरे दिल को समझ पाते !'

'हेम, क्या तुम सोचती हो कि मैं तुम्हारे मन को नहीं समझा हूँ ? परन्तु तुमने भी मेरे मन को समझा है क्या ? जिस परिस्थिति में मेरे मन की बाढ़ हुई है, उस परिस्थिति से तुम बिल्कुल अछूती रही हो। इसलिए तुम मेरे मन की

बेचैनी का महत्व महसूस नहीं करतीं। मेरे मन पर बचपन से ही जैसे-जैसे प्रभाव पड़ते आए हैं, वैसे-वैसे मेरे मन और विचारों को आकार प्राप्त होता गया है। इसका कारण शायद यह हो कि मैं कवि हूँ, अथवा मेरा मन अधिक संस्कार-क्षम है। फिर यहाँ आकर मैं अपने आसपास जो जीवन देख रहा हूँ, वह मुझे स्वस्थ नहीं बैठने देता। मेरी कल्पना थी और वह पागल पन की कल्पना थी कि, तुम मुझसे समरस हो जाओगी। मेरे ध्येय-मार्ग पर चलकर सहचरी के रूप में तुम मेरा साथ दोगी। परन्तु तुममें और मुझमें अन्तर है, बहुत बड़ा अन्तर है—न तय होने वाला अन्तर है, इसे आज मैंने महसूस किया। इधर आते समय मुझे लगा था कि तुम मेरे निर्णय का समर्थन करोगी, मुझे प्रोत्साहन दोगी, परन्तु नहीं, मुझे अपना मार्ग अकेले ही अतिक्रमण करना चाहिए......'

इस तरह कहते हुए-विशेषतः अन्तिम वाक्य कहते हुए उसकी मुद्रा दयनीय दिखने लगी और अनजाने ही उसकी आँखों से दो अश्रु-बिन्दु टपक पड़े। पर, शीघ्र ही उसकी मुद्रा पर और आँखों में तेज चमक उठा। चेहरा कुछ निश्चयी-सा दिखने लगा और 'अच्छा हेम'—कहकर उसने उससे विदा ली।

चन्द्रकान्त के, दृष्टि से ओझल होते ही हेमलता ने इस तरह चारों देखा, जैसे कोई मनुष्य स्वप्न से जागकर आसपास चमत्कारिक दृष्टि से देखता है। कह नहीं सकते, क्यों उसकी आँखें सजल हो गई और उसकी दृष्टि अन्ध हो गई। उसने एक बार आँखें पोछीं, फिर भी उसके आँसू नहीं थमते थे। वह कुरसी से जैसे-तैसे उठी, अपने शयनागार में जाकर बिस्तर पर लेट रही और तकिए में मुँह छिपाकर फफक-फफक कर रोने लगी।

उस दिन कलापुर के रोटरी क्लब में कोई कार्य-क्रम था और बाबा साहब तीसरे पहर से वहाँ गए हुए थे। जाते समय हेमलता से कह गए थे कि उन्हें लौटने में काफी रात हो जायगी, अतः भोजन वगैरह के लिए उनकी प्रतिक्षा न की जाय।

बाहर अन्धकार अधिकाधिक घना हो रहा था। सड़क पर उसके किनारे उस पार मकानों में दीपक जल गए थे। परन्तु उसकी इच्छा न हुई कि वह उठकर अपने कमरे की रोशनी जला ले। उसके मन में आया—'मुझे जो भय था

कि चन्द्रकान्त मुझसे दूर चला जायगा, वह सच निकला। अपने हृदय का प्रकाश जाता रहा, अब बाहर कितना भी प्रकाश हो, उससे मुझे क्या वास्ता ?' वह इसी प्रकार विचारों में खोयी-सी पड़ी रही। बीच में मौसीजी एक बार बैठकखाने में आईं और हेम के कमरे में अन्धेरा देखकर मन-ही-मन बुदबुदायीं—'हेम शायद घर में नहीं है। कहीं बाहर चली गई है।' और वे फिर अपने काम में लग गईं। हेमलता ने मौसी के ये शब्द सुन लिए थे। बाद में सड़क पर से आने-जाने वाले मजदूरों की, परस्पर एक-दूसरे से ऊँचे स्वर में होनेवाली बातचीत भी उसके कान में पड़ी। आठ बज चुके थे। फिर भी वह उसी तरह पड़ी रही। उसे उठने की इच्छा ही न होती थी। फिर पारू आई। उसने बटन दबाकर कमरे में रोशनी जला दी। हेमलता को बिस्तर पर पड़ी देखते ही वह बोली—'आँ, बीबीजी, आप थी यहाँ ? मौसीजी समझीं कि आप कहीं बाहर घूमने चल दी हैं! आप इस तरह असमय क्यों सो रही हैं ? तबियत ठीक नहीं है क्या ? सिर में दर्द है क्या ?'

'हाँ।'

'फिर बाम लाकर मल दूँ ?'

'नहीं, अब जरूरत नहीं है। दर्द कम हो गया है। थोड़ी देर इसी तरह पड़ी रहूँगी, तो बिल्कुल अच्छा हो जायगा।'

'तो मैं जाऊँ फिर ?'

'हाँ, जा! परन्तु रोशनी बुझाती जा।'

जबसे चन्द्रकान्त से उसका परिचय हुआ था, तबसे घटित एक-एक प्रसंग सिनेमा की रील की तरह उसकी नजरों के सामने से सरक रहा था। थोड़े दिन पहले वह जिस हिंडोले में बैठकर बड़े आनन्द से झूल रही थी, वह टूट गया था और वह नीचे गिर पड़ी थी। उसके हृदय में तीव्र वेदना होने लगी। मैं अपनी प्रीति के प्रभाव से चन्द्रकान्त के मन को जीत लूँगी, उसे राजनीति के सूक्ष्म और अनिश्चित वातावरण से निकालकर काव्य के नन्दन-वन में रमा सकूँगी—उसकी यह कल्पना असत्य सिद्ध हो गई थी। इस बात का उसे बड़ा दुख हुआ। उसके प्रेम को ठुकरा कर वह दूर जा रहा है—उसे यही भ्रम होने लगा।

क्या उसे मेरे प्यार की अपेक्षा मजदूरों के संगठन का आकर्षण अधिक है, या मुझसे उसका जो प्रेम था; वह ऊँचे दरजे का नहीं था?......यह विचार उसके मन में आया। लगे हाथ उसे पूना के बाग की घटना और मकर-संक्रान्ति के दिन का प्रसंग—दोनों का स्मरण हुआ। इन प्रसंगों से वह यह नहीं कह सकती थी कि चन्द्रकान्त का प्रेम हार्दिक न था। तो फिर क्या सचमुच ही मेरे प्रेम की अपेक्षा उसे मजदूरों का संगठन अधिक प्रिय है क्या? मेरे प्रेम की अपेक्षा उसे मजदूरों के काम का महत्व अधिक लगता है।

पुनः उसके मनमें आया —'नहीं, प्रेम की ऐसी महिमा नहीं है। भावना के आवेश में चन्द्रकान्त ने कुछ भी कह डाला है। बस, यही बात है! वह शीघ्र अपनी गलती को महसूस करेगा। और फिर मेरे पास वापस आ जायगा। मेरा प्रेम उसे मेरी ओर अवश्य खींच लायेगा।

उसके अस्वस्थ मन को इस विचार से थोड़ा धीरज बँधा—उसे कुछ संतोष हुआ।

\+ + +

जब चन्द्रकान्त हेमलता से विदा लेकर गया, तब उसका मन अत्यन्त बोझिल हो रहा था। उसे कुछ समय के लिए एकान्त की जरूरत थी। अतः उसने सीधी टेकड़ी की राह पकड़ी। सूर्यास्त हुए बहुत देर हो चुकी थी। सारा वातावरण जैसे धूसर हो गया था। जब चन्द्रकान्त टेकड़ी की ओर जाने वाली सड़क पर आया, तब उसने बायीं ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। उधर गन्ने के खेत थे और वहां पहले गन्ने की जो फसल लहलहा रही थी, वह शायद हाल ही में कट चुकी थी; क्योंकि उसकी सूखी पत्तियाँ तमाम खेतों में बिखरी पड़ी थीं। चन्द्र-कान्त को सड़क की दूसरी ओर से मुड़कर जाना था, इसलिए वह उस तरफ देखने लगा। उसने देखा कि गन्ने से लदी कोई पन्द्रह-बीस गाड़ियाँ वहाँ से कतार में गुजर रही हैं। ऊपर तक खचाखच भरी उन गाड़ियों में जो बैल जुते थे, वे बड़ी मुश्किल से धीरे-धीरे अपने बदन को सामने की ओर खींच रहे थे। वे उस भारी भार से बिल्कुल दबे से जा रहे थे। चन्द्रकांत उन गाड़ियों को पारकर आगे बढ़ा, इससे पहले ही माल से लदा एक मोटर ट्रक बेतहाशा

दौड़ता हुआ उसके सामने से निकला। वह धूल के बादल उड़ाता हुआ निकल गया और जैसे चन्द्रकान्त का दम घुट गया। पहले से ही उसका मन अप्रसन्न था और अब उसने सड़क की यह धूल देखी, तो वह और भी अधिक अप्रसन्न हो गया। गाड़ियों के दिन-रात आने-जाने से उस सड़क पर बे-हिसाब धूल हो गई थी। सड़क के किनारे जो पेड़-पौधे लगे थे, उनकी ओर उसका ध्यान गया। उनकी हरी पत्तियों पर धूल की तहें जम जाने से उनका रंग मटमैला हो गया था।

चन्द्रकान्त टेकड़ी पर पहुँचा। वहाँ बिल्कुल सन्नाटा था। परिंदा भी पर नहीं मार रहा था। अनेक कामों में फँसे रहने के कारण बहुत दिनों से वह यहाँ नहीं आ सका था। उसे अचानक उस दिन की याद आ गई, जिस दिन वह अपने साथियों के संग यहाँ आया था। उसके एक मित्र पावगी ने उस समय, उसका जो मजाक उड़ाया था, उसका उसे स्मरण हुआ। पावगी ने कहा था—

"तुम्हें चन्द्रकान्त मणि की कथा मालूम है न? कहते हैं कि वह मणि चन्द्र के प्रकाश में घुलने लगता है। चन्द्रकान्त को कोई चन्द्रमुखी तो मिलने दो, फिर देखो वह कैसे घुल जाता है।"

उसे भ्रम हुआ, जैसे पावगी ही उसके सामने बैठकर कह रहा है। उस समय उसकी यह बात सुनकर, उसके हृदय में गुदगुदी हुई थी। परन्तु अब उस स्मरण से उसका हृदय मथ गया। फिर भी उसने अपने मन को संतोष दिया—छिः। उस दिन पावगी ने श्लेष में कुछ भी कह दिया था—इससे अधिक उसका कोई महत्व नहीं था। चन्द्र के प्रकाश में घुल जाने वाला चन्द्रकान्त मणि निर्जीव है। पर, यह चन्द्रकान्त मनुष्य है उसके अपने विचार हैं, उसकी अपनी भावनाएँ हैं। उसके सामने एक ध्येय है। उसका व्यक्तित्व इतना मुलायम नहीं है, जो प्रेम के प्रभाव से गलकर नष्ट हो जाय।

परंतु शीघ्र ही उसके दूसरे मन ने उससे कहा—चन्द्रकांत मणि भी कहाँ मुलायम रहता है? वह भी तो कड़ा ही होता है न! पर, उसके मुलायम या कड़े होने का सवाल ही पैदा नहीं होता यहाँ। वह तो चन्द्र-प्रकाश के प्रभाव का परिणाम है। क्या उसी तरह प्रेम का भी प्रभाव नहीं होता? अन्यथा कैसा भी कड़ा और निश्चयी मनुष्य क्यों न हो, प्रेम की रज्जु से बँध जाने पर नरम हो ही जाता है।"

परन्तु उसके पहले मन ने उससे फिर कहा—परंतु क्या सच्चा प्रेम ध्येय के आड़े आता है, क्या वह व्यक्तित्व का दम घोंट देता है; जब हम प्रेम को जीवन की एक अपरिहार्य घटना कहते हैं, तब क्या वह जीवन के मार्ग में रूकावट डालता है ? क्या उसे ऐसा करना चाहिए ? क्या उसे जीवन के विकास में बाधा डालना चाहिए ? और हेमलता मुझसे प्यार करती है—इसका मतलब यही हुआ न कि, वह मेरे व्यक्तित्व से प्यार करती है ? मुझमें जो गुण हैं, उनपर प्रेम करती है, या मैं अपने व्यक्तित्व और गुणों के बल पर जो सुख और वैभव प्राप्त कर सकूँगा—इसकी उसने एक कल्पना बना ली है, उसी से प्यार करती है ? मैं अपने ध्येय की कीमत देकर जो सुख खरीदूँ वह उसे चाहिए। व्यक्तित्व का नाश करने के लिए उत्तेजन देने वाला प्रेम कैसा प्रेम है ? जो सुख खोजता है, वैभव खोजता है, पर हृदय को नहीं खोजता—उसे सच्चा प्रेम कैसे कह सकते हैं ? फिर क्या हेमलता का प्रेम सच्चा प्रेम नहीं है ? क्या वह भ्रम है मृगजल है ? क्या मैं इस भ्रम में फँस गया ? क्या मैं अपनी प्यास बुझाने के लिए इस मृगजल के पीछे दौड़ गया ? इसमें वंचना के सिवाय मेरे हाथ और क्या लगेगा ? क्या मैं इस वंचना को इसी तरह चलने दूँ ? क्या मुझे यह मोह नहीं छोड़ देना चाहिए ? अपने ध्येय के आड़े आने वाले फिल्म-कम्पनी के एक मोह को मैंने छोड़ दिया। इसी तरह हेमलता का मोह भी मुझे त्याग देना चाहिये। इसके लिए जितने भी प्रयास करने पड़े, मैं करूँगा। मैं प्रेम अवश्य चाहता हूँ। परंतु जो प्रेम मेरे व्यक्तित्व को जलाकर राख कर दे, वह प्रेम मुझे नहीं चाहिए। एक-दूसरे के व्यक्तित्व का विकास हो, तभी वह सच्चा प्रेम है—कम-से-कम मुझे तो इसी स्वरूप की संजीवनी प्रीति चाहिए। हलाहल जैसी दाहक प्रीति की मुझे ज़रूरत नहीं।

बस, मैंने निश्चय कर लिया। मुझे अपने मन को रोकना चाहिए। मैं इस प्रकार के प्रेम से निश्चयपूर्वक अपने को दूर रखूँगा। हेमलता के हृदय में प्रीति की यदि सच्ची ज्योति जल रही होगी, तब वह स्वयं मेरे पास चली आएगी और मेरे जीवन-मार्ग पर मेरी सहचरी बनेगी।

और मान लो, वह नहीं आई, तो मैं अपने ध्येय-मार्ग पर अकेला ही चलता रहूँगा, यह निश्चय मैं कर ही चुका हूँ।

१७

इस वर्ष सूर्य नारायण ने ग्रीष्म के प्रारम्भ से ही प्रखरता धारण कर ली थी। न जाने धरती-माता से ऐसा कौन-सा अपराध हो गया था, जिससे वे उसपर इतने कोपायमान हो गए थे। ग्रीष्म के दिनों में जब ठंडे स्थान में बैठे हुए मनुष्य भी गरमी के मारे 'हाय-हाय' करते रहते हैं, तब लक्ष्मीनगर में, टीन की चद्दरों के बने मकानों में रहने वालों की क्या दशा होती होगी, इसकी कल्पना न की जा सकती है और न दी जा सकती है। उसका तो अनुभव ही होना चाहिए।

ठीक दोपहर का समय है। हवा बिल्कुल बंद है। बाहर चिल-चिलाती धूप में देखा नहीं जाता है। चूल्हे पर रखे गरम तवे की तरह टीन की चद्दरें बदन को जैसे जलाए दे रही हैं। भीतर स्त्रियाँ और छोटे बच्चे उस गरम हंडे में जैसे उबल रहे हैं। साड़ियों या धोतियों के अंचलों से बेचारी पसीना पोंछ रही हैं और 'हाय-हाय' करती हुई तड़प रही है। मर्द काम पर बाहर चले गए हैं, इसलिए इस दंड से उन्हें छुटकारा मिल गया है।

लक्ष्मीनगर में रहने वालों का, यह हमेशा का अनुभव है।

पिछले साल पार्वती के लिए लक्ष्मीनगर की पहली गरमी थी।

खेतों में काम करने वालों के लिए गरमी, सरदी और वर्षा-तीनों ऋतुएँ एकसी होती हैं फिर भी गरमी की चिलचिलाती धूप में उन्हें आराम रहता। है खेतों में झोपड़ियाँ होती हैं—कुयें के नजदीक पीपल या बरगद के छाया

दार पेड़ होते हैं। उनकी शीतल छाया में महाबलेश्वर का आनन्द आता है। जबसे पार्वती ससुराल आई थी, और खासकर जबसे दुर्भाग्य उसके पीछे पड़ गया था। तबसे उसकी हालत अच्छी नहीं रही थी। फिर भी उसके नैहर के दिन बड़े सुख में बीते थे। इसलिए वह पिछले साल ही लक्ष्मीनगर की गरमी का रूखा और भयानक स्वरूप देखकर बिल्कुल घबड़ा गई थी। इस साल तो वह गर्भवती थी, और फिर गरमी ने प्रारम्भ से ही ऐसा रौद्र रूप धारण कर लिया था। दोपहरी के घाम में उसे गश सा आने लगता था और सिर में पीड़ा होने लगती थी।

उसकी यह दशा देखकर शंकर ने उसे पीपलगाँव भेज देने का निश्चय किया। आखिर महीने दो महीने के बाद तो उसे वहाँ भेजना ही था। उसने सोचा बेहतर यही होगा कि वह अभी वहाँ चली जाय, जिससे गरमी में उसका स्वास्थ्य बिगड़ने न पाये। मुझे यहाँ जो तकलीफ होगी, उसे मैं बरदाश्त कर लूँगा। उसने चन्द्रकान्त से भी इस विषय में सलाह ली और उसने सलाह दिया कि वह पीपलगाँव भेज दी जाय। उसने तय किया कि चार दिन के बाद ज्योंही उसकी रात-पाली पूरी होगी, त्योंही वह "आफ" कोजोड़कर तीन दिन की बिना तनख्वाह की छुट्टी लेगा और पारू को साथ लेकर पीपलगाँव पहुँचा आयेगा।

पार्वती एक-एक दिन गिन रही थी।

गरमी में दिन वैसे ही लम्बे होते हैं, परन्तु वे पार्वती को और भी अधिक लम्बे लगने लगे थे और वह बिल्कुल ऊब उठी थी।

कड़ी धूप का वक्त था। मुँह बाहर नहीं निकाला जाता था। शंकर बिस्तर पर करवटें बदलता हुआ तड़प रहा था। वह रात-पाली होने से रात भर जागा था, फिर भी उसे नींद नहीं आ रही थी। बाबा साहब के यहाँ कोई मेहमान आए थे, इसलिए पार्वती उनके बँगले पर गई थी। थोड़ी ही देर में शंकर ने देखा कि वह चिल-चिलाती धूप में हाँफती हुई लौट आई है। वह कमरे के भीतर आई ही थी, कि एकाएक उसे गश आगया और वह धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी। "इतने धूप में हाँफते हुए आने की क्या जरूरत थी;"

—शंकर के ये शब्द मुँह में ही रह गए। वह एकाएक पेट के बल गिरी थी इसलिए शंकर ने समझ लिया था कि उसके पेट में जबरदस्त चोट लगी है। पार्वती चोट न सह सकी और विह्वल हो उठी। न उसे कुछ सूझा, न उसकी समझ में कुछ आया। उसने शंकर से किसी को बुला लानेके लिये कहा। उसकी यह विचित्र हालत देखकर शंकर घबड़ा गया। उसने चट कमीज पहनी। इतने में वहाँ पड़ोस की एक स्त्री आ गई और पूछने लगी—"पारू, तुझे क्या हो गया है?" शंकर ने उस स्त्री से थोड़ी देर वहीं बैठने के लिये कहा और वह घर से बाहर निकला। उसके पैर उसे दवाख़ाने की ओर ले जाने लगे। आख़िर कारखाने का ही तो दवाख़ाना था वह। उसमें मामूली जुकाम, खाँसी, बुख़ार आदि की दवाओं का संग्रह था और चोट आदि लग जाने पर प्रारम्भिक इलाज के थोड़े बहुत साधन भी वर्तमान थे। जिस तरह वहाँ उचित समय पर आवश्यक दवाएँ मिलना कठिन था, उसी तरह यह भी मुश्किल था कि डाक्टर साहब वहाँ ठीक समय पर हाजिर मिल जाएँ। वे कम्पाउण्डर के जिम्मे दो-चार बोतलें छोड़कर कम्पनी के कृषि-क्षेत्रों पर काम देखने के लिए चले जाते थे। अब वे सचमुच वहाँ कम्पनी का काम देखते थे या अपनी प्राइवेट प्रेक्टिस करते थे—इसे या तो वे खुद जानें, या जानें उनका कम्पाउण्डर जिसके हाथ में वे रोगियों की किस्मत छोड़ कर चल दिया करते थे। इस समय भी जब शंकर वहाँ गया तो डाक्टर साहब दवाखाने में हाजिर न थे। एक कुरसी पर उनका कम्पाउंडर बैठा हुआ ऊँघ रहा था। उसने शंकर से कहा कि डाक्टर साहब कम्पनी के काम से बाहर गए हुए हैं और शाम को छः बजे तक लौटेंगे। यह सुनकर शंकर थोड़ी देर तक पागल की तरह स्तब्ध खड़ा रहा। फिर अचानक उसके मस्तिष्क में एक विचार उठा और वह आफिस की ओर दौड़ा। परन्तु फिर एकाएक उसे स्मरण हुआ कि रविवार के कारण आफिस बन्द है—इसलिए वह चन्द्रकान्त के घर की ओर मुड़ा।

चन्द्रकान्त घर पर ही था। घबड़ाए हुए शब्दों में उसने जब चन्द्रकान्त को वह समाचार सुनाया, तो उसका कलेजा भी धक् से हो गया। भर-दोपहर के वक्त शंकर को आया हुआ देखकर सत्यभामा बाई भी बाहर निकल आईं।

सारा हाल सुनकर उन्होंने चन्द्रकान्त से कहा,—"मैंने सुना है कि सामने की चाल में नारायणराव के घर, कल ही शाम को पूना से एक लड़की आई है और वह नर्स है। तुम लोग वहाँ चले जाओ और उसे ले आओ। तब तक मैं जाकर पार्वती को देखती हूँ।" माँ को पार्वती के घर भेजकर चन्द्रकान्त शंकर के साथ नारायणराव के घर गया।

चन्द्रकान्त को देखते ही नारायणराव बोले—"कहो चन्द्रकान्त, बड़ी धूप में चले आ रहे हो! क्या यूनियन का कोई काम आ गया है?"

"छिः-छिः? कल पूना से तुम्हारे घर कोई लड़की आई है क्या? सुनते हैं वह नर्स है!"

"हाँ-हाँ, आई तो है! वह मेरी ही लड़की है। क्यों, कुछ काम है उसे—बुलाऊँ?" इतना कहकर उन्होंने दरवाजे की ओर मुँह करके पुकारा—"श्यामा, ओ श्यामा, ज़रा बाहर आना! देखो, तुम्हारे लिए चन्द्रकान्तजी आए हैं।"

थोड़ी देर में करीब बीस-इक्कीस साल की एक तरुणी रूमाल से मुँह पोंछती हुई बाहर आई। वह छरहरे बदन की थी। रंग साँवला था। चेहरे पर पुछे हुए चेचक के दाग़ थे। साधारणतः वह कुरूप ही मानी जा सकती थी। चन्द्रकान्त का ध्यान उसकी आँखों की ओर गया। उनमें उसे एक प्रकार का करुण भाव दिखाई दिया और जाने, क्यों उसे देखते ही चन्द्रकान्त का हृदय क्षण-भर के लिए व्यथित हो गया।

उसके बाहर आते ही नारायणराव ने कहा—"ये हैं चन्द्रकान्त शहाणे। तुमसे......"

"आप ही कवि चन्द्रकान्तजी हैं? मेरे बड़े भाग्य, जो अचानक आपके दर्शन करने का मौका मिला!" नमस्ते के लिए हाथ जोड़ते हुए वह बोली। उसके नमस्ते का उत्तर देकर चन्द्रकान्त ने सिर्फ—"हूँ" कहा और उसे अपने आने का कारण संक्षेप में सुना दिया। लड़की ने खेद प्रकट किया और कहा—"अभी चलती हूँ आपके साथ।" वह जल्दी-जल्दी भीतर गई। चन्द्रकान्त उसकी तत्परता से चकित हुआ और उसकी ओर आदर मिश्रित कौतुक से देखने लगा।

उसके केश-कलाप ने उसका ध्यान खींच लिया। वह मन-ही-मन बोला—"वाह, निसर्ग ने कम-से-कम सुन्दरता का एक चिन्ह तो इसे जरूर प्रदान कर दिया है।"

नारायणराव ने चन्द्रकान्त से बातें शुरू कर दीं और पूछा—"कम्पनी से तुम्हारे प्रार्थना-पत्र का कोई उत्तर आया या नहीं?"

चन्द्रकान्त ने कहा—"अभी तक तो नहीं आया। इससे तो यही दिखता है कि कम्पनी सीधी तरह कोई समझौता करने के लिए तैयार नहीं है। लगता है, शीघ्र ही हमें कोई कड़ा कदम उठाना होगा।"

इस तरह बातें चल रही थी कि वह लड़की चमड़े का एक छोटा-सा बेग हाथ में लेकर बाहर आई और बोली-"हाँ साहब,चलिए-चलें।"

"आपने छाता नहीं ले लिया? धूप बड़ी तेज पड़ रही है।" द्वार के बाहर आने पर चन्द्रकान्त ने सहज भाव से श्यामला से कहा।

"थोड़ी ही दूर तो जाना है इसके लिए छाते की क्या जरूरत? मैं इतनी-सी धूप में कुछ पिघल नहीं जाऊँगी।"—श्यामला ने लापरवाही से जवाब दिया।

उसके उत्तर के भीतर से झाँकने वाली उसकी लापरवाही को, जो वह स्वयं अपने विषय में दिखा रही थी, चन्द्रकान्त ने महसूस किया।

इसके बाद कुछ देर तक सब लोग चुपचाप चलते रहे। फिर श्यामला ने बातें करना आरंभ किया,—"आप साहित्य-सम्मेलन में पूना गए थे न? समाचार-पत्रों में पढ़ा था मैंने। मेरी भी बड़ी इच्छा थी, परंतु क्या करूँ, काम में इतनी फँसी हुई थी कि समय ही न मिल सका।"

"आप पूना में क्या ससून-हास्पिटल में हैं?"

"हाँ, अभी-अभी तो नियुक्त हुई हूँ। पूरा एक साल भी नहीं हुआ है।"

इस तरह इधर-उधर की बातें करते हुए, वे शंकर के घर आ पहुँचे।

पार्वती कमरे में लेटी हुई थी और चार-पाँच औरतें उसे घेरे हुए, कोई बैठी और कोई खड़ी थीं। उन्हें आया देखकर सत्यभामा बाई जल्दी-से बाहर निकलीं और चन्द्रकान्त तथा शंकर से बाहर ही ठहरने के लिए कहकर, श्यामलता को भीतर ले गईं।

श्यामलता ने भीतर जाकर देखा, कि पार्वती के चारों ओर कुछ औरतें बैठी और कुछ खड़ी हैं! वे सब उदास दिख रही थीं। पारू जमीन पर पड़ी हुई कराह रही थी। उसके पेट से अब भी टीस निकल रही थी। थोड़ी दूर पर खून से भरे कुछ कपड़े पड़े हुए थे। श्यामला ने सब औरतों को एक तरफ हटा दिया। वह सारा केस देखते ही समझ चुकी थी। फिर भी उसने रोगी की जाँच की और उसे इन्जेक्शन आदि लगाए। किंचित खिन्न मुद्रा से उसने पारू की दयनीय दृष्टि की ओर देखा।

करीब आध घण्टे के बाद श्यामला बाहर आयी और उसने चन्द्रकान्त और शंकर से धीमी आवाज में सब हाल कह सुनाया। "क्या कहा, गर्भपात? अरे रे!" बस, इतने ही शब्द चन्द्रकान्त के मुँह से निकले। शंकर को भी अपना दुःखावेग रोकना कठिन हो गया। रोकते-रोकते भी एक सिसकी उसके मुँह से निकल पड़ी।

श्यामला ने पारू को कुछ दिन के लिए अन्यत्र भेज देने की सलाह दी। उसने कहा—"इससे जलवायु बदल जायगी और उसके मन को भी अच्छा लगेगा।" पारू चार-छः दिन के बाद पीपलगाँव तो जा ही रही थी। इसलिए यही तय हुआ कि वह कुछ दिन वहीं जाकर रहे। इस समय उसका स्वास्थ्य इतना खराब था, कि उससे इतना लम्बा सफर नहीं हो सकता था। इसलिए चन्द्रकान्त ने सलाह दी कि जब तक उसका स्वास्थ्य कुछ ठीक हो, तब तक वह मेरे घर रहे और श्यामला रोज आकर उसके स्वास्थ्य की देखरेख करे। उसने शंकर से भी कहा—"तुम भी हमारे घर रहो।" सत्यभामा बाई ने भी यही सलाह दी। श्यामला ने सुझाया कि यदि उसका यहाँ रहना सम्भव न हो, तो वह कलापुर के अस्पताल में रख दी जाय। परन्तु चन्द्रकान्त ने इस सुझाव को एकदम अस्वीकार कर दिया और कहा—"गाँव जाते समय तक वह हमारे घर ही रहेगी और आपको रोज आकर उसके स्वाथ्य की देखरेख करनी होगी, यही सबसे अच्छा होगा।"

अन्त में सबने चन्द्रकान्त की बात मान ली।

पार्वती के गर्भपात का समाचार लक्ष्मीनगर में सर्वत्र बिजली की तरह फैल

गया। हर एक ने इसके लिए दुःख प्रकट किया। कोई-कोई तो इसका दोष मिलवालों पर रखने लगे। उनका कहना था कि यदि हम लोगों के मकान पक्के बने होते और उसमें सरदी, गरमी तथा वर्षा से बचने का समुचित प्रबन्ध होता, तो शायद ऐसी घटना न होती।

लक्ष्मीनगर में ऐसे भी कुछ व्यक्ति थे, जिसके हृदय में इस घटना से पार्वती के प्रति अनुकम्पा तो पैदा नहीं हुई, बल्कि उनके कुत्सित भाव खिल उठे। उनमें से बबनराव भी एक थे। जब उस दिन आफिस में सुरेश से उसकी भेंट हुई, तो उसने कहा—

"आपने सुनी होगी कल के "एबारशन" (गर्भपात) की बात? सुना है कि अब पार्वती चन्द्रकान्त के घर रहने चली गई है!"

"हाँ, सुना तो मैंने भी है।"

"अब तो आपको विश्वास हुआ कि मैं जो कह रहा था, वह सच था?"—यह कहते हुए उसने जिस अन्दाज से आँखें मिचकाई और छद्म हास्य किया, एक श्रेष्ठ खल-नायक को शोभा दे सकता था।

पारू के साथ शंकर भी चन्द्रकान्त के घर रहने चला गया था।

उस रात वह काम पर नहीं गया। इस घटना से वह जैसे बिल्कुल पागल-सा हो गया था। उसने ठीक तरह से खाना नहीं खाया और न चन्द्रकान्त से कुछ बातें ही कीं। जब रात को वह बिस्तर पर पड़ा, तो उसकी दृष्टि के सामने उसे अपने टूटे हुए सपनों की दुनियाँ दिखने लगी, जिससे बहुत देर तक उसको नींद न लगी।

उधर पार्वती की दशा उससे भी अधिक दयनीय हो रही थी। उसका दुःख केवल शारीरिक ही नहीं, मानसिक भी था। और सच पूछा जाय, तो वह मानसिक ही विशेष था। शारीरिक दुःख तो वह दो-चार दिनों में भूल जाती; परन्तु उसे लगता था कि मानसिक दुःख वह नहीं भूल सकेगी। शायद यही कारण था, जिससे कराहने के साथ बीच-बीच में उसे सिसकियाँ भी आ जाती थी। उसकी यह दशा देखकर सत्यभामाबाई को पहले यही लगा कि उसका कोई अंग दर्द कर रहा होगा, इसीलिए उन्होंने उसी दृष्टि से उसे सन्तोष देने की

कोशिश की। परन्तु बाद में उन्हें भी यह समझने में देर न लगी कि उसे बार-बार रूलाने वाला घाव शारीरिक नहीं, बल्कि मानसिक है। वह दो दिन में भुलाया जा सकने वाला नहीं है, वह शायद दो साल भी बना रहेगा।

पार्वती की आँखों के सामने पिछली स्मृतियाँ खड़ी रहतीं। उसने शंकर के साथ जो प्रेमलाप किया था और सुख के जो सपने सँजोये थे, उन सबकी उसे याद आती और फिर उसकी आँखें आँसुओं से भर जातीं। वह कल तक पीपलगाँव के मनोहर चित्र देख रही थी। वहाँ पहुँचने पर सास और ससुर उसे देखकर कितने हर्ष-विभोर हो जाते और वहाँ उसका कितना प्रेमपूर्ण स्वागत होता। परन्तु अब उसे लगने लगा कि मैं इस दशा में कैसे उन्हें अपना मुँह दिखाऊँगी! अब मुझे देखकर उन्हें कितना दुःख होगा! भविष्य के ये चित्र उसके हृदय को बार-बार व्यथित करने लगे।

पार्वती तीन-चार दिन चन्द्रकान्त के घर रही। इस अवधि में उसके स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिए श्यामला भी रोज़ चन्द्रकान्त के घर एक-दो बार चक्कर लगा जाती थी। चन्द्रकान्त प्रायः रोज़ ही सुबह संघ के काम के निमित्त घर से बाहर रहता था। इसलिए उस समय उससे उसकी मुलाकात न होती थी। परंतु रात को वह पारू से या सत्यभामा बाई से बातें करने के लिए फिर आ जाती थी। उस समय चन्द्रकान्त घर रहता था और तब दोनों की मुलाकात होती थी। चन्द्रकान्त रात्रि-पाठशाला का काम समाप्त कर करीब साढ़े नौ बजे लौटता था। उस समय तक बराबर श्यामला की बातें चलती रहती थीं। उस की बातों से पार्वती को अच्छा लगता था, इसलिए सत्यभामाबाई भी उसे आग्रह से अपने घर बैठाए रखती थीं।

और बाद में पार्वती जब गाँव चली गई, तो भी श्यामला पहले के समान सत्यभामा बाई के घर आती रही।

एक दिन रात को चन्द्रकान्त, पाठशाला का काम पूरा कर लौट रहा था। जब वह अपने घर के नजदीक आया, तब घर से निकलते हुए संगीत के मधुर स्वर उसके कान में पड़े। कोई बड़ी मीठी आवाज़ से गा रहा था। वह ताड़ गया कि श्यामला गा रही है। गीत समाप्त होने तक वह बाहर ही खड़ा रहा।

वह "द्रौपदी की पुकार" वाला गीत गा रही थी, जो करुण-रस से ओतप्रोत था। चन्द्रकान्त समझ गया कि वह माँ के आग्रह से ही यह पौराणिक गीत गा रही है। गीत तो अच्छा था ही, पर वह मुग्ध हो गया था उसकी मधुर आवाज पर। गीत सुनते हुए उसके मन में आया—"भगवान की भी बड़ी विचित्र लीला है, जो ऐसी गुणी लड़की को उसने इस प्रकार साधारण रूप दिया, बल्कि प्रायः कुरूपता ही उसके पल्ले बाँधी।"

जब गीत समाप्त होने पर वह भीतर गया, तब उससे न रहा गया और उसने श्यामला से कहा—"वाह, आपने अभी तक अपना यह गुण हम लोगों से छिपा कर रखा था।"

चन्द्रकान्त के इस कथन से और यह महसूस कर कि उसने मेरा गाना सुन लिया है, श्यामला कुछ लज्जित हो गई। कितना खुलकर उसने वह गीत गाया था!

इसके बाद सत्यभामा बाई ने कहा—"सच देखा तूने, कितना मीठा गला है इनका? आजकल की लड़कियों को पौराणिक गीत आते ही नहीं हैं, फिर उन्हें गाने की तो बात ही दूसरी है।"

"मुझे मेरी माँ ने बचपन में यह गीत सिखाया था। इसी तरह के और भी कुछ पौराणिक गीत सिखाए थे। जब तक वह थी, तब तक मुझसे इन्हें गवाया करती थी। बहुत दिनों के बाद आज आपकी आज्ञा से मैंने इसे गाया है। इसीलिए आपने देखा होगा कि मैं बीच-बीच में भूल-सी जाती थी। अच्छा हुआ, जो आज आपके कारण मैंने उसे दोहरा लिया।"

"तो फिर आप रोज आकर मुझे अपना एक-एक गीत सुनाती जाएँ, जिससे आप उन्हें दोहरा लेगीं, और मेरा भी मनोरंजन होगा।"

"हाँ-हाँ, जरूर सुनाया करूँगी। आप मुझे "आप" कह कर सम्बोधित न किया करें। आप तो मेरी माँ की तरह हैं, इसलिए मुझे श्यामा ही कहा करें।"

श्यामला रोज़ सत्यभामा बाई के घर आने लगी। दोनों में बड़ी घनिष्ठता हो गई। कभी-कभी वह घर के कामों में भी सत्यभामा बाई की मदद करती थी।

एक दिन सत्यभामा बाई की तबीयत ठीक न थी। फिर भी वे चूल्हे के पास

बैठकर रसोई बनाने लगी। श्यामला ने जब यह देखा, तो उसने उन्हें ज़बरदस्ती चूल्हे के पाससे उठाया और वह खुद रसोई बनाने लगी। उस दिन सारी रसोई उसीने बनाई।

चन्द्रकान्त भोजन करने बैठा। थाली में परोसी रोटियाँ देखकर बोला—"माँ आज की रोटियाँ तो बिल्कुल अलग दिख रही हैं—बहुत मुलायम और पतली-पतली। लगता है, ये तुमने नहीं बनाई हैं। किसने बनाई हैं ये?

"नहीं बेटा, आज की रसोई मैंने नहीं बनाई है। मुझे कुछ ज्वर-सा हो आया था। इसलिए श्यामा ने मुझे जबरदस्ती चूल्हे के पाससे हटा दिया और खुद सारी रसोई बना डाली।"

"तभी आज की रसोई बड़ी स्वादिष्ट बनी है?"—चन्द्रकान्त ने मजाक में कहा।

"हाँ बेटा, अब तुझे मेरे हाथ की बनी रसोई अच्छी नहीं लगती। इसीलिए तो कहती हूँ कि जल्दी-से अपने लिए एक बहू ले आ; पर, तू मेरी सुनता कहाँ है!"

धीरे-धीरे श्यामला के बर्ताव में स्वतंत्रता बढ़ी। छुट्टी के दिन जब कभी चन्द्रकान्त घर में रहता, तो वह उससे भी बातें करने लगती। एक बार उसने चन्द्रकान्त से मजदूरों के संगठन के विषय में जानने की बड़ी उत्सुकता प्रकट की। तब चन्द्रकान्त ने उसे इस विषय की पूरी-पूरी जानकारी दे दी। उसे यह भी बताया कि संगठन का कितना महत्व है, मजदूरों के साथ आए दिन कैसा अन्याय हो रहा है और उनकी हालत कितनी गिरी हुई है। ये बात सुनकर श्यामला को भी बड़ा दुःख हुआ।

एक दिन उसने चन्द्रकान्त से कहा—"यदि आपको कोई आपत्ति न हो, तो मैं भी आपकी पाठशाला का काम कर सकती हूँ। जब तक यहाँ हूँ, तब तक रोज रात को जाकर पढ़ा आया करूँगी। इससे आप को भी थोड़ा विश्राम मिलेगा और मेरे हाथ से भी थोड़ी समाज-सेवा हो जायगी आखिर आप भी कितना काम करेंगे? रात को पढ़ाते हैं, सुबह यूनियन का काम करते हैं और ग्यारह से पाँच तक ऑफिस में रहते हैं।"

"तुम्हारा व्यवसाय भी तो समाज-सेवा ही से भिन्न नहीं है। फिर भी यदि तुम मेरी मदद करना चाहती हो, तो खुशी से कर सकती हो। इससे मुझे आनंद ही मिलेगा।"

"हाँ—हाँ, तुझे तो आनंद मिलेगा ही। एक तो तू चौबीस घंटे बाहर रहता ही है और अब श्यामा को भी अपने साथ बाहर ले जाना चाहता है, जिससे उसके कारण मेरा जो थोड़ा-बहुत मनोरंजन होता है, वह भी अब न हो सके। श्यामा, तुम इसके कहने में न आना बेटी?"—सत्यभामा बाई ने कहा।

"ऐसा क्यों कहती हो माँ? यदि मैं चन्द्रकान्तजी को थोड़ी मदद दे दूँगी, तो क्या उन्हें कुछ विश्राम नहीं मिलेगा? फिर समाज सेवा का एक अच्छा अवसर मेरे हाथ लगता है, तो उसे मैं कैसे छोड़ दूँ? काम के बाद मैं आपके पास आ जाया करूँगी अब तो आपको कोई आपत्ति नहीं है?"

चन्द्रकान्त को श्यामला के प्रेमपूर्ण और कोमल अन्तःकरण के दर्शन हुए तो उसे बड़ी खुशी हुई।

जो तरुणी अपने इन गुणों के बल पर, किसी भी महत्वाकांक्षी युवक की गृहस्थी बड़े सुख से सजा सकती थी, उसी के मुख से समाज-सेवा के विरक्तिमय उद्गार निकलें! कहीं इसका कारण, उसे अपनी सौन्दर्य हीनता से प्राप्त होने वाली अवहेलना तो नहीं है?—चन्द्रकान्त के मन में सहसा यह विचार उठा।

१८

जब श्यामला ने चन्द्रकान्त के कामों में सहयोग देने की इच्छा प्रकट की, तब उसे बड़ी खुशी हुई; क्योंकि अब वह अपना सारा ध्यान यूनियन के काम में लगा सकता था। अब उसे रात्रि-पाठशाला की चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं थी। श्यामला से अधिक दिनों का परिचय न होते हुए भी, वह अपने-आप मेरे कामों में सहयोग देने के लिए तैयार हो गई, इसका उसे बड़ा ताज्जुब हुआ। उसकी आँखों के सामने एकदम हेमलता की मूर्ति खड़ी हो गई। पिछली बार जब वह हेमलता के घर गया था, और उस समय उन दोनों में जो बातें हुई थीं, उनके कारण उसकी यह आशा कि हेमलता और उसके बीच का अन्तर कम हो जाएगा, बिल्कुल अस्त हो गई थी। इसलिए वह अपने मन में, जहाँ तक हो सकता था, हेमलता-सम्बन्धी विचार आने ही न देता था। वह यूनियन के काम में ही इतना व्यस्त रहता था कि इसके मन को इधर-उधर भटकने के लिए अवकाश न मिलता था। परन्तु मन की सुप्रसिद्ध चञ्चलता उसे बीच-बीच में धोखा दे देती थी और हेमलता की ओर दौड़ जाती थी। वह किसी समय उसके सौन्दर्य पर लुब्ध हो गया था और उसके काव्य के प्रति उसने जो प्रेम दिखाया था, उससे उसे बड़ी खुशी हुई थी। परन्तु आजकल उसके व्यक्तित्व का संकुचित और एकांगी स्वरूप अधिकाधिक दिखाई देने पर, वह उससे दूर हटना चाहता था। उसका मोह टालने के लिए वह अपने मन पर अंकुश लगाता था। किसान जितनी तत्परता से, हरी फसल में घुसने और उसका नाश

करनेवाले जानवर को भगा देते हैं, उतनी ही तत्परता से वह अपने मन से हेमलता-सम्बन्धी विचारों को भगा दिया करता था।

इस समय उसके मन के सामने हेमलता की मूर्ति खड़ी हो गई थी और वह श्यामला से उसकी तुलना कर रहा था। वह हेमलता से जिस प्रकार के सहयोग की आशा कर रहा था, और उसकी जिस आशा को हेमलता ने निष्फल कर दिया था, वही सहयोग श्यामला बिना माँगे उसे देने के लिए तैयार हो गई-इसका उसे सहज भाव से बड़ा आश्चर्य हुआ। दोनों के स्वभाव में कितना बड़ा अन्तर था यह! पर, पुनः उसके मन में आया—दोनों भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पली हैं और ये विभिन्न परिस्थितियाँ ही इस अन्तर का कारण हैं। एक मातृ-सुख की बात छोड़ दें, तो फिर हेमलता को और किस चीज का कमी थी? उसे अपनी किसी भी इच्छा या महत्वाकांक्षा को दबाकर नहीं रखना पड़ा और न उसके सामने उन्हें किसी दूसरी दिशा में ही मोड़ने का कभी सवाल पैदा हुआ। इसलिए उसके मन पर कुछ आघात लगने या उसे अन्य प्रकार से निराश होने का कभी कोई कारण ही नहीं आया।

परन्तु श्यामला की बात ऐसी न थी। उसकी कहानी उसे याद आगई।

यद्यपि श्यामला में सौन्दर्य का अभाव था, तथापि वह बुद्धि में अपने दोनों बड़े भाइयों से अधिक तीव्र थी। उसका सबसे बड़ा भाई अविनाश उससे आठ-दस साल बड़ा था। परन्तु वह बुद्धि का इतना मन्द था कि हर दर्जे में दो-दो साल मुकाम करता हुआ जैसे-तैसे मैट्रिक तक पहुँचा था। उसे यूनिवर्सिटी में पढ़ने का भी शौक चर्राया था। परन्तु बुद्धि उस योग्य न होने से उसे वह शौक छोड़ देना पड़ा। दूसरा भाई रमेश, श्यामला से तीन-चार साल बड़ा था। उसकी बुद्धि अपने बड़े भाई से कुछ अच्छी थी। फिर भी श्यामला की बुद्धि के आगे वह फीकी पड़ जाती थी। यह बात न थी कि नारायणराव में अपने लड़कों की शिक्षा पर पैसा खर्च न किया हो, या उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का कोई मौका न दिया हो। वे रेव्हेन्यू-महकमे में नौकर थे। हमेशा उनका तबादला होता रहता था। इसलिए हर बार यह सम्भव न था, कि वे जहाँ जाते, वहाँ उनके लड़के के लिए हाई स्कूल मिल जाता। इसलिए उन्होंने पूना

में अस्थायी रूप से एक मकान किराये पर ले लिया था और लड़कों को अपनी माँ के साथ वहाँ रख दिया था, जिससे उनकी पढ़ाई में कोई बाधा न हो। हर महीने खर्च के लिए वे मनीऑर्डर से उनकी जरूरत के मुताबिक रुपये भेज दिया करते थे। लड़कों की दादी बूढ़ी थी। रुपये लड़कों के पास आते थे और अपने पोतों पर बुढ़िया का कोई दबाव न था। बस, पूना के स्वतंत्र वातावरण में अविनाश मन मौजी बन गया। उसके, चालचलन और चैन की मर्यादा ही न रही। उसका सारा ध्यान इन्हीं बातों में लगा रहता था, जिससे पढ़ाई ठप्प हो गई। रमेश पहले-पहल कुछ ठीक था; पर, अन्त में वह भी अपने बड़े भाई के चरण-चिन्हों पर चलने लगा।

इसके बाद नारायणराव ने अपनी नौकरी से अवकाश ग्रहण किया और फिर सब मिलकर पूना में ही रहने लगे। अविनाश ने इस अवधि में दो तीन साल मैट्रिक पास करने की कोशिश की और फिर हताश होकर कभी परीक्षा में न बैठने का निश्चय कर लिया। नारायणराव ने आकर सारी परिस्थिति देखी और अविनाश की शादी कर दी। उन्होंने सोचा था कि कम-से कम विवाह के बाद अविनाश सुधर जायगा और कहीं नौकरी करके उनकी गृहस्थी में हाथ बटायगा। परन्तु यहाँ भी उन्हें निराश होना पड़ा। लड़के की आदतों में कोई सुधार न हुआ, बल्कि घर में खाने वालोंकी संख्या एक और बढ़ गई। रमेश उसी समय के लगभग मैट्रिक पास हो गया। उसकी कालेज में जाकर पढ़ने की बड़ी इच्छा थी। नारायणराव भी चाहते थे कि अविनाश नहीं पढ़ा, तो कम-से-कम रमेश ही आगे पढ़े। इसलिए खर्च की तङ्गी होते हुए भी, उन्होंने उसे आगे पढ़ाना मंजूर कर लिया। इस समय श्यामला पूना के हुजूरपागा स्कूल में छठवीं अंग्रेजी पढ़ रही थी। अपनी कुशाग्र बुद्धि के कारण वह अपने दरजे में अव्वल रहती थी। साथ ही संगीत और चित्रकला में उसे हमेशा प्रथम पारितोषिक प्राप्त होते थे। जब नारायणराव ने रमेश को कालेज में भेजना शुरू किया, तब श्यामला का नाम स्कूल से कटा दिया, क्योंकि वे दोनों की पढ़ाई का खर्च बरदाश्त नहीं कर सकते थे। पेंशन लेने से उनका वेतन आधा हो गया था। पर, खर्च कुछ कम न हुआ था। अतः दोनों को पढ़ाना

उनके लिये सम्भव न था। श्यामला की भी बड़ी इच्छा थी वह खूब पढ़े। पर, जब उसने देखा कि पिताजी ने उसे मैट्रिक तक भी नहीं पहुँचने दिया, तब उसे बड़ा दुःख हुआ। उसे प्रतीत हुआ कि पिताजी ने मेरे भाइयों की पढ़ाई पर हजारों रुपये खर्च किए और अब भी कर रहे हैं, पर, मेरी पढ़ाई पर वह कुछ भी खर्च करना नहीं चाहते और इसका उसे बहुत बुरा लगा। जिस दिन उसका नाम कटवाया गया, उस दिन वह खूब रोई थी। इस पर माँ ने उसे समझाकर कहा—

"श्यामा, अब तेरा विवाह होगा। तू ससुराल जायगी और वहाँ तुझे चक्की-चूल्हा सँभलना पड़ेगा। इसलिए अब तुझे अधिक पढ़ने की क्या जरूरत है? लड़कियाँ कितना भी पढ़ें, पर, आखिर उन्हें चक्की और चूल्हा ही सम्हालना पड़ता है। इसलिए तू जितना पढ़ चुकी है, उतना ही तेरे लिए काफी है। तू समझदार लड़की है और समझदार लड़कियाँ इस तरह रोया नहीं करती।"

पर, श्यामला को इससे संतोष न हुआ।

वैसे देखा जाय, तो पाठशाला छोड़ने से पहले भी विवाह के बाजार में उसे दिखाना शुरू कर दिया गया था। परन्तु जहाँ-तहाँ उसका रूप आड़े आता था। उसकी बुद्धि कला तथा उसके अन्य बहुत-से गुणों पर किसी का ध्यान नहीं जाता था। ऐसे तमाशे बार-बार देखने पर उसे लगा कि आजकल की दुनिया में स्त्रियों के लिए सौन्दर्य की अत्यन्त आवश्यकता होती है। यदि उनमें सौंदर्य न हो, तो उनके शेष सब गुण व्यर्थ होते हैं। इसमें शक नहीं कि उसका रंग साँवला, यानी काले की तरफ ही झुकने वाला था। उसकी नाक बनाते समय ब्रह्मदेव के सामने चंपे की कली न थी और जब, वह आठ वर्ष की थी, तब उसे माता निकली थी, जिसने जाते-जाते उसके चेहरे पर अपनी चिर स्मृति छोड़ दी थी। यह सब सच था। पर इसके लिए वह बेचारी क्या कर सकती थी? उसके पास जो था, उसकी तरफ कोई नहीं देखता था। पर, जो उसके पास नहीं था, उसके लिए हर एक उसकी अवहेलना करता था। इस-

कारण उसके भीतर जो गुण थे, उनके नष्ट हो जाने और उसकी स्वच्छ आँखों में जो पानी था, उसके सूख जाने का भय अवश्य था।

जो उसे देखता, वही उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करने से इन्कार कर देता था। इस बार-बार की इन्कारी से, उसे तो दुःख होता ही था; उसके माँ-बाप का हृदय भी चिन्ता से खोखला होने लगता था। ऐसे कुछ प्रसंगों के बाद श्यामला इतनी उकता गई थी कि जब कभी किसी को, उसे दिखाने का प्रश्न उठता, तो वह स्वयं अपनी अनिच्छा दर्शा देती थी।

आगे चल कर माँ-बाप ने सोचा कि उसे पुनः शाला में भरती करा दिया जाय, जिससे कम-से-कम उसका मन पढ़ाई में लगा रहेगा और वह अपने विवाह की चिन्ता में न घुलेगी। अतः वे लोग उसे फिर से शाला में भरती हो जाने का आग्रह करने लगे। पर, अब शिक्षा प्राप्त करने की उसकी इच्छा या तो इतनी तीव्र नहीं रही थी, या उसमें उसे कोई सार नहीं दिखता था, इसलिए उसने शाला में पुनः भरती होने से इन्कार कर दिया। अंत में उसने अपने मन में कुछ निश्चय किया और कुछ संतप्त मन ने ही नर्सिंग (दाई) का कोर्स ले लिया।

वे मँहगाई के दिन थे। इसलिए उसने यह भी सोचा कि एक साल के बाद मैं नर्स बन जाऊँगी और किसी अस्पताल में नौकरी कर लूँगी, जिससे पिताजी की गृहस्थी में मेरी भी थोड़ी मदद हो जायगी। इसी बीच बढ़ती हुई मँहगाई से तंग आकर नारायणराव ने भी बड़े मालिक की खुशामद कर उनकी लक्ष्मीनगर शुगर-मिल्स के ऑफिस में एक नौकरी प्राप्त कर ली और वे यहाँ चले आए। उन्होंने शायद यह सोचा कि अविनाश का क्या भरोसा; जब तक मेरे हाँथ-पाँव में ताकत है, मुझे कमाते रहना चाहिए और इसीलिए अवकाश-प्राप्ति के बाद भी वे फिर नौकरी करने लगे। वे अविनाश को भी वहीं एक नौकरी दिला सकते थे; पर, वह पूना से कहीं बाहर जाने के लिए तैयार न था।

उसकी यह सारी कहानी चन्द्रकान्त को सिर्फ श्यामला से ही मालूम हुई हो, यह बात न थी। उसने इसका कुछ हिस्सा श्यामला से सुना था और कुछ अपनी माँ से। फिल्म में जिस तरह आगे-पीछे की घटनाओं के चित्र एक-के-

बाद एक सिलसिलेवार जोड़कर कहानी तैयार की जाती है, उसी तरह दोनों के मुँह से सुनी, असंबद्ध घटनाओं को क्रमवार जोड़कर उसकी स्मृति ने यह कहानी ठीक तरह से जमा ली थी।

चन्द्रकान्त के मन में आया—यदि ऐसी लड़की समाज के संकुचित विचारों, उसकी अनिष्ट-कारक रूढ़ियों और दूसरों पर निर्लज्जता से अन्याय कर अपना जीवन सुख एवं वैभव में व्यतीत करने वालों से चिढ़ जाय, तो आश्चर्य ही क्या है! जो अन्याय से जलता है, वही उसके खिलाफ चिल्लाता है-जैसे पेट में कसक उठी हो। जो अन्याय करता है, वह उसमें 'हस्तक्षेप क्यों करेगा? हेमलता की स्थिति अधिकांश में दूसरे प्रकार की है। इसलिए उस वर्तमान समाज-रचना के प्रति घृणा मालूम होना तो दूर रहा, इस समाज रचना में ऐसी भी कोई विपमता है, जिसे बदल देना चाहिए—यह विचार भी उसके मन में उठना सम्भव नहीं है। और, शायद इसीलिए चन्द्रकान्त के मन में समाज- सेवा के लिए जो बेचैनी थी, वह हेम के हृदय से जाकर नहीं मिड़ती थी। जब दोनों लड़कियों के स्वभाव का यह अंतर उसके ध्यान में आया, तब कहीं वह समझा कि हेमलता उसके कार्य में सहयोग ही क्यों नहीं देती। इस पर उसे अचरज तो हुआ, परंतु उसके हृदय के किसी कोने में थोड़ी-सी कसक उठे बगैर भी न रही।

पिछली मुलाकात के बाद चन्द्रकान्त फिर हेमलता से मिलने नहीं गया था और न हेमलता ने ही उसे बुलाने, या उसका कुशल-समाचार जानने के लिए उसके पास अपने किसी नौकर को भेजा था। इसलिए चन्द्रकान्त को कुछ खेद जरूर हुआ था और वह अपने पूर्व निश्चय पर अधिक दृढ़ हो गया था।

यदि वह अपने इस व्यक्तिगत विपय की ओर ध्यान भी देना चाहता, तो उसके लिए यह संभव न होता; क्योंकि यूनियन की तरफ से कम्पनी को जो प्रार्थना-पत्र भेजा गया था, एक महीना बीतने पर भी उसका कोई उत्तर नहीं आया था। अतः इस विपय में कम्पनी का क्या रुख है यह समझने में उसे देर न लगी। उत्तर के लिए अधिक दिन ठहरना कई कारणों से उचित भी न था। मार्च का महीना चालू था। इस समय कारखाने में शक्कर बन रही थी और

एक-दो महीने के बाद यह काम खत्म हो जाने वाला था। फिर कम्पनी का काम भी स्थगित हो जाता। मजदूर तितर बितर हो जाते और कम्पनी को आगामी मौसम तक उनकी कोई परवाह न होती। इसलिए जो कदम उठाना है, उसे मौसम समाप्त होने से पहले ही उठाना चाहिए। तभी वह कारगर हो सकता है। वरना फिर अक्टूबर–नवम्बर तक ठहरना होगा और यह सम्भव हो, या न हो।

जब किसी काम के करने में एक बार देर हो जाती है, तो फिर वह बहुत दिनों के लिए स्थगित-सा हो जाता है। इसलिए जब तक यह विषय ताजा है, तभी तक इसका फैसला हो जाना चाहिए। लोहा जब गरम रहता है तभी उस-पर घन की चोट ठीक पड़ती है।

इसके साथ ही पार्वती का जो गर्भपात हुआ था, उसके कारण मजदूरों की धुँधवाती हुई असंतोष की अग्नि पर मानो तेल पड़ गया था। वह घटना मजदूरों के लिए बड़ी संताप-जनक हो गई थी। उनका ख्याल था कि मिलवालों ने मजदूरों के मकानों के बारे में जो उपेक्षा दिखाई है उसीका यह भीषण परिणाम है।

इन सब बातों का विचार कर चन्द्रकान्त ने यूनियन की ओर से एक सभा बुलाई और मजदूरों के सामने सारी परिस्थिति को ठीक तरह से पेश कर उन्हें हड़ताल की अपरिहार्यता समझा दी। जब उसने सभा में इस पद के लिए मजदूरों का मत जानना चाहा, तो सबने एकमत से हाथ उठाकर अपनी अनुकूलता दर्शाई।

तब चन्द्रकान्त ने कहा—'आप लोगों ने बहुमत से हड़ताल का जो एक निर्णय किया है, और जानते हुए भी बड़ी भारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है, उसे देखकर मुझे खुशी हुई है। खुशी इसलिए हुई है कि, इतने दिनों तक इस मिल के मजदूरों पर अन्याय हो रहे थे, उन्हें वे अब महसूस करने लगे हैं और उनके प्रतिकार के लिए एकमत से तैयार हो रहे हैं। पहले वे उन गूँगे जानवरों की तरह थे, जिन्हें कोई भी कहीं भी हाँक ले जाय। पर, अब उन्होंने अपना यह स्वभाव छोड़ दिया है। इसलिए, जो प्रश्न समझौते से हल नहीं

होते, उन्हें हल करने के लिए अब हमें शान्तिमय लड़ाई का, जिसे सत्याग्रह कहते हैं, अवलम्बन करना चाहिए। इस प्रकार की शान्तिमय लड़ाई का महान् आदर्श हमारे राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी ने हमें दिखा दिया है और हम भी उन्हींके मार्ग का अवम्बन कर रहे हैं।"

"हम जिस शान्तिमय लड़ाई को शुरू कर रहे हैं, उसे सफल करने की जिम्मेदारी भी बहुत बड़ी है। मन से सारी शंकाएँ दूर कर दो, हृदय से भय को भगा दो और एकात्मता से लड़नेके लिए तत्पर हो जाओ। फिर यह पक्की तरह समझलो कि मिलवालों में तुम्हारे विरुद्ध जानेकी ताक़त नहीं रहेगी। यदि आपस में फूट हो गई, अथवा उसने किसी का लिहाज किया, तो अवश्य इससे तुम्हारा ही नुक़सान होगा और पर्याय से सारे मजदूर वर्ग की बदनामी होगी। तुम्हारे हाथ में जो हथियार है, उसकी तो बदनामा होगी ही।"

"परन्तु मेरा विश्वास है कि अपनी यह हाल ही में जन्मी-यूनियन, अंजनी-पुत्र हनुमान की तरह सूर्य को भक्ष लेगी.........'

इस वाक्य पर प्रचण्ड करतल ध्वनि से वातावरण गूँज उठा।

अप्रैल की पहली तारीख हड़ताल के लिए निश्चित हुई। नियमानुसार यूनियन की तरफ से कम्पनी को इसकी सूचना भेज दी गई। ऐसा लगता है कि मनुष्य को शक्ति-संचय की अपेक्षा उस समय अधिक आनन्द होता है, जब उस शक्ति को अजमाने का मौका आता है। इस समय तक चन्द्रकांत के सामने मजदूरों के संगठन को ताक़तवर बनाने की बात थी। अब उस यूनियन को अपनी ताक़त दिखा देनी थी। इस कारण चन्द्रकान्त को भी एक निराला ही जोश आ गया था। उसे विश्वास हो गया कि लड़ाई का आनन्द कुछ और ही होता है।

वह अपना सारा समय यूनियन के काम में खर्च करने लगा। हड़ताल सफल हो, यही उद्देश्य अब उसके सामने रह गया। श्यामला ने पाठशाला की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर उसे उस चिन्ता से मुक्त कर ही दिया था।

चन्द्रकान्त के अन्य सहयोगियों में भी विलक्षण उत्साह का संचार हो गया था। हर एक अपने-अपने काम को पूरा करने के लिए जी-जान से भिड़ गया था।

यूनियन का यह उत्साह और तैयारी देखकर कम्पनी कैसे चुप बैठी रह

सकती ? चन्द्रकान्त इस यूनियन का मुखिया और उसी के उभाड़नेसे सारे मजदूर हड़ताल करने पर तुल गए हैं, यह समाचार कारखाने के बड़े मालिक के कान पर पहुँच चुका था। इसलिए पहले उन्होंने चन्द्रकान्त को अपने घर बुलाया और उस जैसा अच्छा आदमी इस फन्दे में पड़े, इसके लिए खेद प्रदर्शित किया। इसके बाद उसे क्या-क्या तकलीफें बरदाश्त करनी होंगी, इसका भीषण चित्र उसके सामने रखा। और भी कई तरह से समझाया। धमकी भी दी। पर, चन्द्रकान्त पर इसका कोई असर न पड़ा। क्योंकि वह सब कुछ बरदाश्त करनेके लिए तैयार हो चुका था।

फिर चार-पाँच दिन बाद कम्पनी ने यूनियन की कार्य-कारिणी-समिति को बुलाया। जब सभासद वहाँ पहुँचे, तो बड़े साहब ने उनके सामने जमा-खर्च और मजदूरों को आज तक दिए गए बोनस तथा उनकी भलाई के लिए अस्पताल, मकानों आदि के खर्च के आँकड़े पेश किए और यह समझाने की कोशिश की कि इच्छा रहते हुए भी कम्पनी किस तरह अधिक बोनस देने में असमर्थ है। चन्द्रकान्त पर इन आँकड़ों का जादू कुछ भी असर न कर सका, क्योंकि वह कम्पनी के हिसाब से अच्छी तरह परिचित था। उसने वहीं उन आँकड़ों के रहस्य की कलई खोल दी। जब उसे ही उनसे कोई सन्तोष न हुआ, तो दूसरे सभासदों को कैसे हो सकता था ?

इसके बाद उसने मजदूरों को समझाकर बताया कि कम्पनी द्वारा दिए गए आँकड़े किस तरह बिलकुल झूठे और निराधार हैं। उसने यह भी कहा कि वे ये आँकड़े प्रकाशित कर तुम लोगों में फूट डालना चाहते हैं और उन्हें उनके चंगुल में न फँसनेके लिए सावधान कर दिया।

पुनः सब कार्य-कर्ता दुगने उत्साह से काम में लग गए।

हड़ताल के लिए जब सिर्फ आठ दिन रह गए थे। कार्य-कर्ताओं की तैयारी और उत्साह देखकर यूनियन को अपनी सफलता में विश्वास होने लगा।

और एक दिन अचानक सरकार की तरफ से चन्द्रकान्त को नोटिस दिया गया कि वह चौबीस घन्टे के भीतर कलापुर जिला छोड़कर बाहर चला जाय।

१६

सुबह का वक्त था। ड्राइंग-रूम के बगल वाले कमरे में बाबा साहब और हेमलता चाय पर बैठे हुए थे। तीसरा और कोई न था। चाय पी चुकने के बाद हेमलता की ओर देखते हुए बाबा साहब ने एकदम कहा—

'लगता है कि हेम को अमरिका जानेका मौका आ गया है। पर, देखें, आगे क्या होता है?'

बाबा साहब की यह बात सुनकर हेमलता उनकी ओर आश्चर्य से देखने लगी। वह उनकी बात जरा भी समझ न पाई। वह इसी तरह की विचलित मनस्थिति में बोली,—'मैं समझी नहीं, पिताजी! आप क्या कह रहे हैं? अमरिका जाने से मेरा क्या सम्बन्ध?'

और इसके बाद उन्होंने जो कहा, उसे सुनकर तो उसके आश्चर्य की सीमा ही न रही। चार दिन पहले सुरेश और उनमें बातें हो रही थीं। बातचीत के सिलसिले में सुरेश के विवाह का प्रश्न निकला, और उसी वक्त उन्हें मालूम हुआ कि वह हेमलता से विवाह करने के लिए बिल्कुल तैयार है। यह सब हाल बाबा साहब ने अपनी पुत्री को कह सुनाया।

बात यह हुई थी—चार दिन पहले तीसरे पहर, करीब चार बजे का वक्त था। आजकल कारखाने में जाते समय सुरेश हमेशा बाबा साहब के साथ रहा करता था। ज्योंही वह उनके बँगले पर आता, त्योंही वे नौकर को चाय लाने का हुक्म देकर स्वयं कपड़ा पहनना शुरू कर देते थे। रोज का यह कार्य-क्रम प्रायः

निश्चित-सा हो गया था। उस दिन भी सुरेश के आते ही यही दोनों बातें हुईं। बाबा साहब शीशे में देखकर अपनी नेकटाई की गाँठ बाँध रहे थे, कि अचानक सुरेश ने कहा,—

'अब मेरे अमरिका जाने का दिन नजदीक आया समझिए, जैसे-जैसे वह दिन नजदीक आता जाता है, वैसे-वैसे वहाँ-का, मेरा मुकाम भी एक-एक दिन घटता जाता है।'

'हूँ, कब जा रहे हो? जून के पहले सप्ताह में ही जाओगे न?'—गाँठ बँध जाने पर, उसे अँगुलियों से टटोलते हुए बाबा साहब ने पूछा।

'जी हाँ। पर, पासपोर्ट और कपड़ों आदि का प्रबन्ध बहुत पहले से ही कर लेना होगा, जिससे ऐन वक्त पर गड़बड़ी न हो।'

''बड़े साहब के रहते हुए तुम्हारे लिए कोई गड़बड़ी नहीं हो सकती!'—बाबा साहब ने कहा।

'हाँ, एक तरह यह ठीक है। फिर भी जरा हमारे घर का मजा देखिए। जैसे-जैसे मेरे जाने का दिन समीप आ रहा है, वैसे-वैसे मेरी माँ अधिकाधिक मेरे पीछे पड़ रही है। उसका कहना है कि अमरिका जानेसे पहले अपना विवाह कर लूँ। आजकल उसके हर एक पत्र में यही विषय होता है। वह कुछ यह समझ बैठी है कि आजकल जो लड़के विदेश जाते हैं, वे लौटते समय वहाँ से एक लड़की भी अपने साथ लाते और उसे अपनी पत्नी बना लेते हैं। इसलिए वह चाहती है कि मैं चटपट अपने लड़के का यहीं विवाह कर दूँ, जिससे कम-से-कम वह तो ऐसा कोई काम न करे। इसलिए वह हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ गई है। विवाह के बाद यदि मैं चाहूँ, तो अपनी पत्नी को भी अपने साथ अमरिका ले जाऊँ, इसमें उसे कोई आपत्ति न होगी।'

'मेरा भी ख्याल है कि वे ठीक कहती है।'—कपड़े पहनकर कुरसी पर बैठते हुए बाबा साहब ने कहा।

इसी समय नौकर चाय ले आया। बाबा साहब चाय की एक-एक चुस्की लेते हुए सुरेश की ओर ध्यान से देखकर कहने लगे,—

'कई दिनों से सोच रहा हूँ कि बात तुमसे पूछूँ। पर, ऐसा कोई मौका न मिला। आज अनायास विषय निकल आया है, तो क्या तुमसे वह बात कहूँ?'

'कौन-सी बात है?' सुरेश की आवाज से अधीरता व्यक्त हुए बिना न रही।

'अपनी हेम के बारे में ही पूछना चाहता था। यदि हमारी हेम तुम्हें पसंद हो तो......'बाबा साहब ने वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया। उनके कहने का आशय समझकर सुरेश अपनी आतुरता को शक्ति भर छिपाते हुए बोला—' अपनी हेमलता के बारे में कह रहे हैं न आप? जो उन्हें नापसंद करे, उसे पागल कहना चाहिए, ।'

सुरेश के लिए यह प्रसंग, आलसी के पास स्वयं गंगाजी के आ जाने की तरह आकस्मिक न हो, फिर भी जलबिन्दु की आशा से मुँह खोलकर बैठे हुए चातक के मुख में वर्षा की बूँद टपक पड़ने की तरह आनन्ददायी अवश्य था, इसमें सन्देह नहीं। सहज ही उसके चेहरे पर सन्तोष झलक उठा।

'तो फिर क्या मैं मान लूँ कि आप राजी हैं?'

"जी हाँ, जरूर।"

बाबा साहब के मुख से यह सारा वृतान्त सुनते समय हेमलता के चेहरे पर उत्सुकता का कोई भाव न आया। हाँ, वह कुछ उदास और विचारों में खोयी-सी दिखने लगी।

और बाबा साहब ने जो प्रश्न उठाया था, उसका उन्हें कोई निश्चित उत्तर न मिला! बस, वह विषय वहीं समाप्त हो गया और बाबा साहब उठकर कार-खाने की ओर चले गए।

पर, इसके बाद हेमलता के लिए अपने मन को रोकना अवश्य कठिन हो गया। वह वहाँ से उठी और अपने कमरे में जाकर बिस्तर पर पड़ रही।

जिस दिन आखिरी बार चन्द्रकान्त उससे मिलकर गया था, वह प्रसंग उसे याद आया। उस समय उसके मन में जो विचार उठे थे, उनका भी उसे स्मरण हुआ। इस कल्पना से कि चन्द्रकान्त सदा के लिए मुझसे दूर चला गया है, उसे पहले अत्यन्त दुख हुआ था। पर, अंतमें यह सोचकर कि उसने भावनावश कुछ भी कह दिया है, और वह उसके प्रेम को याद कर, शीघ्र

ही उसके पास लौट आयगा, उसने अपने मन में सन्तोष कर लिया था। परन्तु जैसे-जैसे दिन बीतने लगे और चन्द्रकान्त के पुन: लौट आने के कोई चिन्ह दिखाई न दिए, वैसे वैसे उसे लगने लगा कि जो कुछ उसने समझा था, वह उसके मन के लिए एक भुलावा-मात्र था चन्द्रकान्त के लौट आने की बात तो दूर थी, वह सुनती थी कि वह अपने काम में अधिकाधिक उलझता जा रहा है। जब उसे मालूम हुआ कि वह यूनियन की तरफ से कारख़ाने के मज़दूरों से हड़ताल करा रहा है, तब तो वह उसके भविष्य को पूर्णरूप से समझ चुकी। उसका मन उससे कहने लगा कि हड़ताल की ओर बढ़ रहा उसका एक-एक कदम यह संकेत करता है कि वह तुझसे एक-एक कदम दूर जा रहा है।

और वह जैसे-जैसे दूर जा रहा था, वैसे-वैसे हेमलता के मन की बेचैनी अधिकाधिक बढ़ती जाती थी। चन्द्रकान्त की मनोहर मूर्ति उसके मनःचक्षु के सामने बारंबार आकर खड़ी हो जाती थी। उसकी आवेश पूर्ण बातें उसके कानों में गूँजने लगतीं थीं। उसकी मुद्रा पर खिलने वाला हास्य उसे याद आ जाता था। उसकी पानीदार आँखों की आर्द्रता उसके हृदय के अन्तरतम में प्रवेश कर जाती थी। उसके सामीप्य के सारे प्रसंग उसकी दृष्टि के सन्मुख खड़े हो जाते थे। उसे भ्रम होने लगता कि वे सब प्रसंग हाल ही में हुए हैं—नहीं-नहीं, अब भी हो रहे हैं।

परन्तु जब उसका वह सपना टूट जाता, तब उसकी दृष्टि के सामने का वह इन्द्रजाल विलुप्त हो जाता और उसकी आँखें आँसुओं से भर जातीं।

कभी उसके मन में आता कि हम दोनों के बीच जो अन्तर बढ़ रहा है, उसे क्या मैं कम नहीं कर सकती ? क्या मैं चन्द्रकान्त के विचारों से समरस नहीं हो सकती ? क्या मुझसे उसके काम में सहयोग देते नहीं बन सकता ?

जब से उसे पता चला कि श्यामला नामकी कोई तरुणी उसकी पाठशाला का काम. चला रही है, तब से ये विचार उसके मन में रह-रह कर उठने लगे। उसने श्यामला की पूरी जानकारी प्राप्त की। जब उसे यह मालूम हुआ कि वह छठवीं अंग्रेजी तक पढ़ी हुई और नर्सिंग का कोर्स पास एक साधारण लड़की है

तब उसने सोचा कि जो काम एक साधारण लड़की कर सकती है, उसे मैं क्यों नहीं कर सकती और मुझे क्यों नहीं करना चाहिए ?

बेचारी हेमलता ! वह यह क्या जाने कि श्यामला साधारण स्थिति की लड़की होने से ही उस काम को कर सकती है, और वैसी स्थिति में न होने से ही हेमलता के लिए उस काम को करना असम्भव है।

और चन्द्रकान्त के कार्य में सहयोग देने का मतलब था कि उसके द्वारा किये जाने वाले मजदूरों के संगठन कार्य से वह एकरस हो जाय। परन्तु मजदूरों के संगठन-कार्य को भी वह भली-भाँति कहाँ समझ पाई थी ? जब उससे कहा जाता कि कारख़ाने के मालिक मजदूर हैं, तो उसे बड़ा आश्चर्य होता था ! वह सोचने लगती कि जब बड़े-बड़े पूँजीपति अपने पूर्वजों द्वारा संचित पूँजी बड़े-बड़े धन्धों में लगाते हैं, कारख़ाने, मिलें इत्यादि खोलते हैं, उत्साह से अपना व्यवसाय बढ़ाते हैं, उद्योग-पति बनते हैं, हजारों आदमियों को काम देकर जीविका चलाते और उनके श्रम के बदले उन्हें उचित द्रव्य देते हैं, तब यह कहना कि वे मजदूर जो आज हैं और कल नहीं, उद्योग के मालिक हैं, सरासर अन्याय है। वह यह भी सोचती कि मजदूरी भी कौन कम मिलती है ? वह तो हर एक मजदूर को उसकी योग्यता के अनुसार ही मिलेगी। जिसे सिर्फ एंजिन पोछने और उसमें समय-समय पर तेल देते रहने का ही ज्ञान है, उसे पन्द्रह-बीस रुपये से अधिक वेतन कैसे मिलेगा ? और जिन्हें अधिक ज्ञान होता है और जिनपर मेरे पिताजी या जोशी चाचा की तरह अधिक जिम्मेवारी का काम रहता है, उन्हें उनकी योग्यता के मुताबिक कम्पनी छः-सात सौ रुपये माहवार वेतन दे ही रही है। इसके साथ ही जब कम्पनी को अधिक मुनाफा होता है, तो वह अपनी खुशी से उसका कुछ भाग बोनस के रूप में मजदूरों को प्रायः हर साल देती आई है। इतना होने पर भी यदि मजदूर लम्बे-चौड़े बोनस के लिए अड़े रहें और हड़ताल की धमकी दें, तो इसे क्या कहा जाय ? पिताजी और सुरेश की बातचीत में वह हमेशा सुनती रहती थी कि आजकल के मजदूर बहुत चढ़ गए हैं तथा उसे यह बात सच मालूम होती थी। और, चन्द्रकान्त ऐसे लोगों के पीछे पागल हो रहे हैं, यह देखकर उसे बहुत बुरा

लगता था। ऐसी विचार-सरणि के मध्य चन्द्रकान्त के कार्य में सहयोग देने की कल्पना अपने-आप डगमगा जाती थी।

वह मज़दूरों के मकानों अथवा उनमें विचरण करने वाले लोगों की ओर कुतूहल की दृष्टि से देखना भी टाल देती थी। रोज कालेज जाते समय उसकी कार, उनकी चालों के सामने से ही निकलती थी और उस समय वह अपना ध्यान किसी दूसरी ओर लगा लेती थी; क्योंकि उनके बाहर धूल में खेलनेवाले नंग-धड़ंग बच्चे देखकर उसके मन में घृणा भर जाती थी। उनके धूल से भरे गंदे शरीर, बार-बार 'खरखर' खुजाये जाने वाले रूखे बाल जिनमें कभी तेल न पड़ता था, और मैले तथा फटे हुए कपड़े देखकर उसे मतली आ जाती थी। फिर मकानों के सामने बहने वाले गंदे पानी के पनाले, जगह-जगह पर लगे हुए कूड़े कचरे के ढेर, धूप में बैठकर एक-दूसरे के सिर की जूँ मारने वाली अथवा गन्ने की जड़ों से जले बरतन माँजने वाली, अपर्याप्त वस्त्रों में लिपटी औरतें तथा चीकट कपड़ों में इधर-उधर घूमने वाले मजदूर इन सबको देखकर उसकी दृष्टि को क्या सुख हो सकता था?

उसके मन में आता—"भला ऐसे मजदूरों के मकानों में, या उनके बीच रहकर क्या मैं चन्द्रकान्त के साथ काम कर सकूँगी?"

"और अब तो चन्द्रकान्त ने हड़ताल की नोटिस देकर एक तरह, कम्पनी के साथ लड़ने की ही ठान ली है। कुछ भी हो, मेरे पिताजी कम्पनी के मैनेजर हैं, इसलिए कारखाने में हड़ताल होना उनके हित की बात नहीं है। पर, यह जरूर सच है कि चन्द्रकान्त के प्रति उनके हृदय में कोमल भाव विद्यमान हैं। उस जैसा व्यक्ति इस फंदे में पड़े, इसका उनके हृदय से दुख है।" बाबा साहब ने एक दिन बातचीत के सिलसिले में उससे (हेमलता से) कहा था—"हड़ताल रोकने के लिए हमने सरकार से सहायता माँगने का निश्चय किया है। इसलिए चन्द्रकान्त सम्भवतः गिरफ्तार कर लिए जाएँगे। पर, इसके लिए कोई उपाय नहीं है?"

"चन्द्रकान्त और हेमलता के बीच अब बहुत बड़ा अंतर हो गया है, इसकी उन्हें क्या कल्पना! उसने मन में कहा—"चन्द्रकान्त और मेरे बीच में

जो अंतर हो गया है, वह अब कम नहीं हो सकता। अंतर कम न होने से चन्द्रकान्त मुझसे दूँर चला जायगा......बहुत दूर .....”

जब बाबा साहब ने उसके सामने सुरेश का विषय निकाला, तो उसकी दशा बड़ी विचित्र हो गई। उन्होंने जैसे निर्णय ही दे डाला था कि वह चन्द्रकान्त से दूर चली जायगी।

परन्तु यह निर्णय उसके मन को जँचता न था। चन्द्रकान्त और सुरेश की तुलना करते समय उसका जो मन सीधा एकदम चन्द्रकान्त की ओर ही खिंचता था, वह अब चन्द्रकान्त को छोड़कर सुरेश की ओर आकर्षित होने के लिए तैयार नहीं होता था।

उसके मन की यह अस्थिरता सुरेश के ध्यान में आ गई होगी। उपरोक्त प्रसंग के बाद जब सुरेश एक दिन लगभग चार बजे शाम को बाबा साहब के बँगले पर आया, तो वे उसे वहाँ न दिखे। परन्तु रविवार होने के कारण हेमलता जरूर उसे वहाँ बैठी हुई दिखाई दी।

सुरेश ने उससे पूछा—“क्या बाबा साहब कारखाने गये हैं?”

“हाँ, अभी-अभी गये हैं। आफिस से चपरासी बुलाने आया था।” हेमलता ने उत्तर दिया।

वह थोड़ी देर तक वहीं चक्कर-सा काटता रहा। उसने सोचा—यह मौका अच्छा है, इसलिए हेमलता की ओर देखते हुए पूछा,—

“क्या आज-कल में बाबा साहब ने मेरे विषय में कोई बात कही थी तुमसे।”

हेमलता चौंकी। उसने सिर्फ गरदन हिला कर ‘हाँ’ कहा।

“तुमने उनसे क्या कहा फिर?”

“अभी तो मैंने कुछ नहीं कहा है; मेरे मन में बड़ी गड़बड़ी मची हुई है।”

“गड़बड़ी मचने का वास्तविक कारण क्या है? मैंने तो समय-समय पर तुम्हारे सामने अपना मन खोलकर रख दिया है। अपनी महत्वाकांक्षाओं से

भी तुम्हें परिचित करा दिया है यदि तुम हाँ कह दो, तो मेरा इरादा तुम्हें भी अपने साथ अमरीका लेजाने का है। वहीं पर तुम भी एक डिग्री ले लेना। लौटते वक्त हम दोनों सारे यूरोप का भ्रमण करेंगे। आज कई दिन से मैं ये योजनाएँ बना रहा हूँ। सारी बातें सिर्फ तुम्हारी एक 'हाँ' पर अवलम्बित हैं। बाबा साहब की भी यही इच्छा दिखती है। तो फिर......"

"आपका कहना मुझे स्वीकार है। परन्तु सच मानिए, मेरा मन बहुत व्याकुल हो रहा है-वह बहुत अस्वस्थ और अस्थिर हो गया है। क्या आप मुझे थोड़ा समय देंगे?......"

वह इस तरह बातें कर ही रही थी कि गनपत चाय लेकर आ गया। इसलिए उसकी बात वहीं रुक गई। चाय पीते समय दोनों चुप थे। सुरेश ने सोचा कि उसके मन की गड़बड़ी का कारण चन्द्रकान्त ही होगा और फिर शीघ्र ही उसके मस्तिष्क में एक विचार चमक उठा।

"क्या आजकल चन्द्रकान्तजी नहीं आते यहाँ?"—सुरेश ने पूछा।

"जबसे वह मजदूरों का संगठन करने में लग गये हैं, तबसे उन्होंने यहाँ आना प्राय: बन्द-सा ही कर दिया है। मजदूरों के प्रति उन्हें बड़ा प्रेम है।"

"प्रेम! हाँ, सच्चा प्रेम है—इतना सच्चा प्रेम कि उसने अब काम भी शुरू कर दिया है। वह सक्रिय होने लगा है।"—स्वर में किंचित उपरोध भरकर सुरेश ने कहा।

"मैं इसका मतलब नहीं समझी।"

"यदि तुमसे कहूँ, तो तुम उस बात पर विश्वास ही नहीं करोगी। मुझे भी पहले ऐसा ही हुआ था?—......" इस तरह भूमिका बाँधकर उसने चन्द्रकान्त और पार्वती के सम्बन्ध की वह बात उसे सुना दी, जो उसने बबनराव से सुनी थी।

उसे सुनकर हेमलता स्तम्भित हो गई।

"क्या यह सच है?"—उसके स्वर में आर्तता थी।

"तो क्या मैं झूट कह रहा हूँ? बबनराव के घर मंजुला नामकी एक नौकरानी काम करती है। वह भी पार्वती के घर के पास ही कहीं रहती है।

कहते हैं, उसीके जरिये यह सब पता चला है। मैं तो यह सुनकर दंग रह गया था। फिर सोचा, हाँ भई, वे एक तो कवि हैं, दूसरे मज़दूरों के हिमायती! उनके संगठन का सारा भार उन्हीं पर है। मज़दूरों के बीच विचरण करने वाले का आचरण उन्हीं के दरजे का होना चाहिए। यदि उन्होंने और किसी बात में मज़दूरों से समता नहीं की, तो कम-से-कम एक बात में तो कर ही ली!"

अब हेमलता वहाँ बैठी न रह सकी। वह कोई बहाना बनाकर वहाँसे उठी और सुरेश ने भी उससे बिदा ली। हेमलता अभी तक चन्द्रकान्त को ओर सुन्दर, परन्तु दुष्प्राप्य चन्द्र की तरह देखती थी। परन्तु उसके विषय में सुरेश ने अभी जो कुछ कहा था, उससे उसे ज्ञात हो गया कि वह चन्द्र सुन्दर नहीं, बल्कि कलंकित है और उसके मन में उसके प्रति सूक्ष्म तिरस्कार पैदा हो गया। साथ ही इस विचार से कि जिसपर मैं आसक्त हुई, जिसकी मैंने रट लगाई, जिसे दुष्प्राप्य समझकर मुझे खेद हुआ, वह वास्तव में इस योग्य नहीं है। यह सोचते-सोचते उसके हृदय को असीम वेदना हुई।

एक बार उसने यह भी सोचा—"पर, कैसे मान लूँ कि सुरेश जो कहते हैं, वह सच ही है?" परन्तु दूसरे ही क्षण उसके मन में आया—"भला वे झूठ क्यों बोलेंगे? और उन्होंने भी यह बात कौन अपने मन से बनाकर कही है।"

इसके बाद उसके मन के सामने जो प्रसंग खड़े हुए, उनसे उस बात की पुष्टि ही हुई।

उसे चन्द्रकान्त की बिल्कुल प्रथम भेंट के प्रसंग का स्मरण हुआ। रास्ते से जाते समय पार्वती और चन्द्रकान्त ने एक दूसरे की ओर देखकर जो हास्य किया था, उसका भी उसे स्मरण आया। उसने सोचा कितना भी परिचय क्यों न हो, परन्तु चन्द्रकान्त जैसा व्यक्ति रास्ते में जाने वाली एक मज़दूर की औरत की ओर देखकर हँसे यह उचित नहीं है। इस बात से जैसे उस घटना के रहस्य का स्पष्टीकरण-सा हो गया। पार्वती गर्भपात के बाद, कुछ दिन चन्द्रकान्त के घर जाकर रही थी। इसमें भी अब हेमलता को भिन्न ही अर्थ दिखने लगा।

वह अब चन्द्रकान्त और पार्वती की प्रत्येक बात को इसी संदर्भ से देखने लगी।

मनुष्य का मन चञ्चल होता है—जैसा झुकाओ, झुक जाता है। हेमलता के मन का पलड़ा जल्दी-जल्दी चन्द्रकान्त की विरुद्ध दिशा की ओर झुकने लगा।

और बाद में उसे रह-रह कर एक ही बात का खेद होने लगा कि चन्द्रकान्त कलंकित रूप में मेरे मन से उतरा, इसकी अपेक्षा यदि मुझे दुष्प्राप्य के रूप में उसका विचार छोड़ देना पड़ता, तो कितना अच्छा होता!

— —

यूनियन से सब मजदूरों की पूर्ण सहानुभूति थी। उनसे उसके कार्य को बढ़ावा मिलता था। यूनियन जो कदम रखती, कारखाने के मजदूर एक मत से उसका समर्थन करते थे। इसलिए हड़ताल की सफलता में कोई सन्देह न रह गया था। चन्द्रकान्त जानता था कि यूनियन की इस शक्ति को देखकर कारखाने के मालिक उसके कार्य में कोई-न-कोई बाधा डालने की कोशिश जरूर करेंगे। इस तरह की एक कोशिश वे पहले कर भी चुके थे, जब उन्होंने मजदूरों के सामने कम्पनी की आर्थिक स्थिति का रोना रोया था। परन्तु उस समय चन्द्रकान्त की सजगता के कारण वह कारगर नहीं हो पायी थी।

चन्द्रकान्त पर जिला छोड़ देने का, जो हुक्म जारी हुआ था, वह अवश्य कुछ अनपेक्षित था। उसने पहले ही अनुमान बाँध लिया था कि वह जो कार्य कर रहा है, उसके लिए उसपर सरकार की ओर से कुछ-न-कुछ बंधन जरूर लगेंगे—शायद वह गिरफ्तार भी हो जायगा। परन्तु यह बात इतनी जल्दी हो जायगी, इसकी उसे जरूर कोई कल्पना न थी। इसलिए उस हुक्म से वह थोड़ी देर के लिए घबड़ा गया। हड़ताल शुरू होने के लिए आठ दिन और बचे थे। उसके मन में आया—"मैं तो यह स्थान छोड़कर चला जाऊँगा, फिर मेरी गैरहाजिरी में कम्पनी, मजदूरों में फूट पैदा करने के लिए क्या-क्या कार्रवाइयाँ करेगी, इसे कौन कह सकता है? यदि मैं रहता, तो उनकी कार्रवाइयों को न चलने देता—उन्हें निष्फल करना मेरे लिए संभव हो सकता। इसमें संदेह नहीं कि मजदूरों के मन पूरी तरह से तैयार हैं, उनका असन्तोष ताजा है

और अभी धुँधला रहा है, फिर भी उन्हें बारंबार धीरज बँधाने और प्रोत्साहन देने के लिए कोई-न-कोई जरूर चाहिए। चन्द्रकान्त के हाथ के नीचे एक तो, शंकर और विश्वनाथ गायकवाड़ नामक एक फिटर तैयार हो गया था। उसी प्रकार श्यामला ने भी पाठशाला की जिम्मेवारी को बड़ी अच्छी तरह निभाया था। इसके बावजूद भी उसके मन में संदेह था और यह स्वाभाविक भी था।

उसने सोचा, यदि मैं सरकार का हुक्म न मानूँ, तो इससे कोई लाभ न होगा। उलटे मैं गिरफ्तार हो जाऊँगा।

अंत में उसने सारी जिम्मेवारी उन तीनों पर सौंप कर, कम-से-कम इस समय तो वहाँ से चले जाने का विचार पक्का किया। वैसे उसे कलापुर जिले के बाहर कहीं-न-कहीं तो जाना ही था, इसलिए उसने पूना जाने का निश्चय किया। इसमें उसका एक उद्देश्य साथी प्रकाश से मिलकर इस सम्बन्ध में उनकी भी सलाह ले लेने का था।

जाने से पहले उसने पाठशाला में एक छोटा-सा, परन्तु अत्यन्त उद्बोधक भाषण दिया। उसपर जो सरकारी हुक्म जारी हुआ था, उसका समाचार बात-की-बात में सारे मजदूरों के कानों तक पहुँच चुका था। इसलिए उस समय वे भी अधिक-से-अधिक संख्या में वहाँ आकर उपस्थित हो गए। उस दिन पाठशाला को एक अनौपचारिक सभा का ही स्वरूप प्राप्त हो गया।

चन्द्रकान्त कह रहा था—

"......मैं जा रहा हूँ, फिर भी तुम लोग अपना काम निश्चित कार्य-क्रम के अनुसार पूरा करना। अपनी यूनियन को जरा भी कमजोर न होने देना। तुम्हें अपने कार्यों से उनको दिखा देना चाहिए कि चन्द्रकान्त अकेला कोई पूरी यूनियन नहीं है। और यदि मैं तुम लोगों के बीच नहीं रहा, तो भी मेरे प्रतिनिधि शंकर, विश्वनाथ गायकवाड़ और श्यामला यहाँ हैं ही। लड़ाई में जब एक सेनापति काम आ जाता है, तो लड़ाई कभी बन्द नहीं होती। दूसरा आदमी उसकी जगह ले लेता है, और लड़ाई को जारी रखता है। उसी तरह यह भी एक लड़ाई है, जो किसी एक व्यक्ति विशेष की गैरहाजिरी के कारण

बन्द नहीं होगी। इस लड़ाई के हर एक सैनिक को इस भावना से लड़ना चाहिए कि यह लड़ाई मेरी है और इसे मैं अपने लिए ही लड़ रहा हूँ......"

इसके बाद चन्द्रकान्त ने अपने उत्तराधिकारियों का सारा प्रबन्ध कर दिया। पर वह, माँ को किस तरह सन्तोष दे, यह उसकी समझ में न आया। अन्त में उसने श्यामला से कहा—

"श्यामला, इस परिस्थिति में माँ को धीरज और साहस देना सिर्फ तुम्हारे ही हाथ में है। मेरी दूसरी जिम्मेवारियों को जिस तरह तुमने अपने ऊपर ले लिया है, उसी तरह मेरी इस जिम्मेवारी को भी तुम अपने ऊपर ले लोगी, ऐसी मुझे आशा है—मुझे विश्वास है। इस विचार से कि मैं एक महीने के लिए यहाँ से चला जाऊँगा, माँ की क्या दशा हो गई है—यह तुम देख ही रही हो। तुमने अपने प्रिय स्वभाव से उसे अपना लिया है। उसे मेरा अभाव न खटके, इतना ढाढ़स तुम उसे दोगी न?......"

"चन्द्रकान्त जी, आप इस विषय में बिलकुल निश्चिन्त रहें। आपने मुझ जैसी लड़की पर जो इतना विश्वास और स्नेह दिखाया है, उससे उऋण होने के लिए क्या मैं इतनी जिम्मेवारी भी न उठाऊँगी? आज तक मुझ जैसी साधारण लड़की के लिए किसी ने इतना हार्दिक स्नेह और प्रेम नहीं दर्शाया था। वह आपने दिखाया......" यह कहते हुए उसका कंठ भर आया और उसकी आँखों में आँसू जमा हो गए।

"हाँ, देखो श्यामा, अब आगे कभी ऐसी निर्बलता के उद्‌गार मुँह से न निकालना। मैं तुम्हारी योग्यता जानता हूँ, इसलिए तुमपर यह जिम्मेवारी डाल रहा हूँ।"

चन्द्रकान्त के इन उद्‌गारों से श्यामला को जो आन्तरिक संतोषप्राप्त हुआ, उसका वर्णन करना असम्भव है।

\+ \+ \+

आजकल शंकर को काम पर जाने का बिलकुल उत्साह नहीं रह गया था। जब से पार्वती पर वह दुर्घट प्रसंग आया था और जब से वह उसे पीपलगाँव पहुँचा कर लौटा था, तब से कारखाना और लक्ष्मीनगर दोनों जैसे उसे खाने को दौड़ते थे। किसी भी बात में उसका मन नहीं लगता था। वह हड़ताल के

एक-एक दिन को जाप की माला की तरह गिन रहा था। फिर सरकारी हुक्म के मुताबिक चन्द्रकान्त लक्ष्मीनगर से चले जाने के कारण तो उसका चित्त बिल्कुल ही ठिकाने पर नहीं था।

आज उसकी दिन-पाली थी और ठीक बारह बजे के भोंपू पर, उसे काम पर जाना था। परन्तु वह पौने बारह बजे का पहला भोंपू होने तक यों ही आराम से बैठा हुआ था। भोंपू की आवाज कान में पड़ते ही वह जैसे-तैसे उठा। उसने जल्दी-जल्दी दो कौर खाए और फिर वह एकदम कारखाने की ओर चला। रास्ते में उसे कारखाने की ओर जाने वाला कोई भी आदमी नज़र न आया। परन्तु कारखाने से लौटने वाले मज़दूर टोलियों में आते दिखाई दिए। उसके मन में कुछ शक हुआ और उसने अपनी चाल का वेग बढ़ा दिया। उसे शक यह हुआ कि कहीं देर तो नहीं हो गई है। एक-दो परिचित मज़दूरों ने उसे रोका और वह उनसे थोड़ी बातें कर फिर आगे बढ़ गया। जब वह हाजिरी लेने-वाले बाबू के दफ्तर के नज़दीक पहुँचा, तो उसकी दृष्टि वहाँ दीवाल पर लगी घड़ी की ओर गई। सवा बारह बज गए थे। उसने जिसे पौने बारह का पहला भोंपू समझा था, वास्तव में वह बारह बजे का दूसरा भोंपू था। चित्त ठिकाने पर न होने के कारण उसे इस तरह धोखा हो गया था।

हाजिरी लेने वाले बाबू ने उससे कहा—"क्यों पटेल, आज बड़ी देर कर दी! इतनी देर से आने वालों को हाजिरी का टिकट देने का हुक्म नहीं है। आज तुम्हारी गैरहाजिरी लगती, इसलिए मैं तुम्हें टिकट दिए देता हूँ। परन्तु याद रखना, आगे फिर कभी देर से आए, तो मैं ऐसी मेहरबानी न करूँगा।" बाबू ने उसे टिकट देकर फौरन कारखाने के भीतर जाने का आदेश दिया। शंकर एक तो पहले से ही कुछ विमनस्क-सा था, दूसरे, उस बाबू ने उसे इस तरह फटकारा। इस हालत में उसका दिमाग गर्म हो गया। वह क्रोध से जल उठा। पर, शीघ्र ही उसे स्मरण हुआ कि गलती उसी की है—वह काम पर इतनी देर से आया है। इसलिए उसने बड़ी मुश्किल से अपने क्रोध को रोका और वह चुपचाप कारखाने में चला गया। भीतर जाकर उसने देखा कि जिस जगह गन्ने के ढेर-के-ढेर पड़े रहना चाहिए थे, वह जगह आज बिल्कुल साफ है। वहाँ एक

गन्ना भी नहीं पड़ा है। मशीनों की घरघराहट भी उसके कान में न पड़ी। यह देखकर उसे कुछ ताज्जुब-सा हुआ और उसके पुरजे जमीन पर बिखरे हुए थे। कुछ लोग उन पुरजों को साफ करने में व्यस्त थे। यह देखकर उसे ख्याल आया कि आज मशीनों की साप्ताहिक सफाई करने का दिन है। इसलिए वह भी चुपचाप उन लोगों की मदद करने लगा। उसने काम शुरू किया ही था कि उन लोगों पर देख-रेख करने वाला एक गोरे रंग का व्यक्ति, अंग्रेजी लिबास में था और कारखाने का एक मातहत इंजिनियर था, एकदम उस पर बरस पड़ा—"क्यों रे शंकर, क्या यह काम पर आने का वक्त है? क्या कर रहा था अभी तक? किसने तुझे भीतर आने दिया? मैं यह बिल्कुल बरदाश्त नहीं कर सकता। अगर काम करना है, तो ठीक वक्त पर आना चाहिए। नहीं करना है, तो खुशी से अपने घर बैठ। हमें आदमियों की कमी नहीं है। समझा......"

इंजिनियर की गुस्ताखी से भरी ये बातें सुनकर शंकर के क्रोध का बाँध टूटा जा रहा था, परन्तु उसके साथी ने उसे आँख से इशारा किया। इसलिए फिर वह कुछ न बोला और विचारों में खोया-सा चुपचाप अपना काम करने लगा।

कुछ समय बाद उन लोगों ने उस मशीन के पुरजे जहाँ-के-तहाँ ठीक तरह जमा दिए और मशीन चलाई। थोड़ी देर तक वह ठीक तरह से चलती हुई दिखाई दी। परन्तु फिर उसमें कहीं 'खट' सी आवाज हुई और वह थम गई। तब उन्होंने उसे फिर खोलकर देखा और ठीक किया। इसके बाद वह फिर चलाई गई। अब वह ठीक तरह लयबद्ध आवाज निकालती हुई चलने लगी।

परन्तु यह क्या होगया? वह देखो, शंकर का पैर अचानक फिसल गया और गिरते-गिरते उसने आधार के लिए अपना दाहिना हाथ मशीन के तेजी से घूमने वाले पहिये पर टिका दिया। उसे गश आगया है क्या? अरे, एञ्जिन बन्द करो भाई! जल्दी-जल्दी! च्-च्-च्!!! वह देखो, पहिये ने उसका हाथ बेरहमी से काटकर अलग फेंक दिया। उधर देखो, काँधे से हाथ टूट जानेके कारण खून से लथपथ शंकर, कैसा अस्तव्यस्त पड़ा हुआ है! सीटियाँ बजीं। दौड़-धूप शुरू हो गई। सब मजदूरों ने आकर उसे घेर लिया है। शंकर ने आँखें मूँद ली हैं। क्या वह सचमुच बेहोश हो गया है, या टूटे हुए हाथ का भयानक दृश्य दिखाई न दे; इसलिए उसने अपनी आँखें जबरदस्ती बन्द कर

ली है? अथवा इस सारे वातावरण से वह ऊब उठा है और जब तक यहाँ से बाहर न निकल जाय, तब तक उसने आँखें न खोलने का निश्चय कर लिया है? शंकर, आँखें खोल! देख-देख, उस बेरहम मशीन ने तेरे हाथ की क्या हालत कर दी है। अब तू अपने सारे मनोराज्य किस तरह सफल करेगा? पारू से क्या कहेगा? और तेरी यह दशा देखकर उसे भी कैसा लगेगा?

और यह क्या, गाड़ी में डालकर उसे कहाँ ले जा रहे हैं? क्या कलापुर के अस्पताल में भरती करनेके लिए? पर, अभी तो आँखें नहीं खोली है। और, अब देखो उसके मुँह से कराहने की अस्पष्ट ध्वनि बाहर निकल रही है और वह अपनी अधखुली आँखों से इधर-उधर देख रहा है!

"आँ, कहाँ ले जा रहे हो मुझे?"—कुछ होश में आते ही शंकर ने अपने साथियों से पूछा, और उसके मुँह से एक हृदयविदारक कराह निकल पड़ी।

"कलापुर के अस्पताल में। तेरा हाथ मशीन के पहिए में फँस गया था, इसलिए।"—उसके नजदीक बैठे हुए व्यक्ति ने उत्तर दिया।

\+ \+ \+

डाक्टर ने कहा—"अभी कुछ दिनों तक शंकर को अस्पताल में ही रहना होगा।"

श्यामला ने पारू को एक पत्र लिखा और उसे तुरन्त यहाँ आ जानेकी सलाह दी। उसने दूसरा पत्र गोदावरी के पते पर चन्द्रकान्त को पूना भेजा और उसे इस दुखदायक घटना का विस्तारपूर्वक समाचार पहुँचाया।

श्यामला ने पारू को जो पत्र लिखा, वह उसने सत्यभामा बाई को पढ़कर सुनाया, तो वे बोलीं—"दुर्भाग्य जब किसीके पीछे पड़ जाता है, तो उसका पीछा अन्त तक नहीं छोड़ता। उधर पारू पर वह आफत आई और इधर शंकर का यह हाल हो गया। अभी बेचारी पीपलगाँव में चार दिन भी नहीं रह पाई और अब उसे फिर यहाँ दौड़कर आना पड़ेगा।"

और सचमुच पार्वती जैसे दौड़कर ही आई। उसकी दुर्बल देह और सूखा हुआ मुँह देखकर उसे पहचानना भी कठिन हो गया था। आते ही उसने सत्यभामा बाई के गले में हाथ डालकर जो शोक प्रकट किया, वह इतना हृदयविदारक था कि उसे संतोष देना तो दूर किनारे रहा; सत्यभामा बाई और श्यामला दोनों की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई।

२१

रात के करीब साढ़े आठ बजे थे। धीरे-से किसीने दरवाजे पर दस्तक दी और मन्द स्वर में पुकारा—"श्यामला, ओ श्यामला!" आवाज सुनते ही श्यामला ने दरवाजा खोला। सामने एक जटाधारी और दाढ़ीवाला संन्यासी खड़ा था। श्यामला चौंकी; परन्तु उस व्यक्ति के भीतर प्रवेश करते और धीमी आवाज में उसके कान में कुछ कहते ही उसने दरवाजा बन्द कर लिया। श्यामला ने उसे दीपक की रोशनी में ठीक तरह से देखा, वह सचमुच चन्द्रकान्त था।

उसे लगा, मैं कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ! उसने कहा—"आप, और इस वेष में!"

उत्तर देने से पहले चन्द्रकान्त ने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई और धीरे से पूछा,—"तुम्हारे पिताजी और माताजी कहाँ हैं?"

"दोनों रसोई में हैं। पिताजी भोजन पर बैठे हैं।"

"तब तो कोई हर्ज नहीं। बात यह हुई," वह कहने लगा—"मैं यहाँ से चला तो गया था, परन्तु पूना में मेरा मन नहीं लगता था। दिल में बड़ी बेचैनी रहा करती थी। सारा ध्यान यहीं तुम लोगों में लगा रहता था और, जब शंकर सम्बन्धी दुर्घटना के बारे में तुम्हारा पत्र पहुँचा तब तो मैं बिल्कुल बेचैन हो उठा और मुझे वहाँ एक मिनट भी ठहरना कठिन हो गया। मैं साथी प्रकाश

से मिला। मैंने उन्हें अपनी मनोव्यथा का परिचय देकर उनसे सलाह पूछी। तब उन्होंने मुझे यह उपाय सुझाया। खैर, सब ठीक चल रहा है न ?"

"हाँ, सब बातें बिल्कुल निश्चित कार्य-क्रम के अनुसार चल रही है।"

"अब मेरी जान-में-जान आई। मुझे चिन्ता हुई कि शंकर-सम्बन्धी दुर्घटना का लोगों पर न जाने, क्या परिणाम होता हो। अब एक बार जहाँ हड़ताल ठीक तरह से आरम्भ हो गई कि फिर मेरा कुछ भी होता रहे—इसकी मुझे कोई परवाह नहीं !"

"अब तो हड़ताल जरूर सफल होगी।"

"परसों ही पहली तारीख है न ?"

"हाँ।"

"मेरी माँ के पास तो रोज जाती रहती हो न ?"

"हाँ, और जब मैं नहीं जा पाती, तो वे स्वयं यहाँ आ जाती हैं।"

"यदि माँ को एक बार जी-भर कर देख लेता, तो मन को बड़ा संतोष मिलता।"

"तो क्या जाकर बुला लाऊँ ? कह दूँगी कि मेरी माँ ने बुलाया है।"

"नहीं, अभी नहीं। उसे देखते ही शायद मुझसे न रहा जायगा और फिर सारी बात ही............" इतना कहकर चन्द्रकान्त किंचित काल तक मौन बैठा रहा।

थोड़ी देर बाद वह चेहरे पर मन्द मुस्कान बिखेरकर बोला—'। थोड़े में तुम्हें अपना परिचय दे देता हूँ, जिससे आगे कोई भेद न खुले। मेरा नाम है किरण बाबू। तुम महात्मा किरण बाबू कह सकती हो। मैं एक बंगाली विद्वान हूँ। मराठी के संत-साहित्य का अध्ययन करनेके लिए खास तौर पर महाराष्ट्र का दौरा कर रहा हूँ। जब मैं पूना में था, तब पीलिया से बीमार पड़ गया था। ससून अस्पताल में भरती हुआ और वहाँ तुमसे परिचय हो गया। बंगाल जानेसे पहले इस तरफ का प्रदेश देखने और तुमसे मिलने आया हूँ। मराठी समझ लेता हूँ, परन्तु ठीक तरह से बोल नहीं सकता। हमेशा राष्ट्र-भाषा हिन्दी में बोलता हूँ। सन्त साहित्य के अध्ययन में सदा व्यस्त रहता हूँ......'

'अच्छा, अब समाप्त कीजिए अपना परिचय। पिताजी भोजन कर चुके हैं और वे अब यहीं आते होंगे। हाँ, स्वाँग खूब बनाया है आपने बिल्कुल लाजवाब! सच्चे किरण बाबू दीख रहे हैं आप। कोई नहीं पहचान सकता आपको कि आप चन्द्रकान्तजी हैं।'

और श्यामला का कहना झूठ न था। अरविन्द बाबू की तरह दाढ़ी-मूछें और सिर के बाल, विचारों में खोई हुई मुद्रा, नोकीली नाक और सुनहली फ्रेम की ऐनक से देखनेवाली तीक्ष्ण दृष्टि! वह एक पहुँचे हुए महात्मा-सा दिख रहा था, इसमें सन्देह नहीं।

'अच्छा, आज तक जो घटनाएँ हुई हैं, उन्हें संक्षेप में कह डालो और आगे भी जो मुख्य बातें होती जाएँ, उनकी भी मुझे खबर दिया करो। इसके बाद मैं भी तुम्हें उनपर अपनी लिखित सूचनाएँ दिया करूँगा। एक काम करो, यूनियन का ऑफिस ही मेरे ठहरनेके कमरे में खोल दो। मैं वहीं बैठकर सब देखता रहूँगा।'

'मतलब यह कि अब सूत्रधार का काम महात्मा किरण बाबू ही करेंगे!'—श्यामला ने विनोदपूर्वक कहा।

'हाँ, यही समझ लो! और, यह भेद विश्वनाथ को छोड़कर और किसी पर भी प्रकट न किया जाय। जब कल सुबह तुम पाठशाला जाओगी, तो लोगों से कह देना कि रात को किरण बाबू का प्रवचन होगा और उसे सुनने के लिए सब लोग जरूर आएँ।'

दूसरे दिन श्यामला ने विश्वास से भी यह बात कह दी। तब उसे ऐसा लगा, जैसे उसे बड़ा सहारा मिल गया हो। बस, उसमें बड़ी हिम्मत आ गई। 'वे हमें सिर्फ रास्ता दिखाते रहें। बाकी काम हम सँभाल लेंगे।'—उसने कहा।

रात को आठ बजे किरण बाबू का प्रवचन सुननेके लिए कारखाने के प्रायः सभी मजदूर पाठशाला के सामने वाले मैदान में आकर इकट्ठे हो गए। प्रवचन का नाम सुनकर ऑफिस के कुछ प्रौढ़ बाबू लोग भी आए। किरण बाबू ने प्रवचन का भूमिका ठीक बाँधी। कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन—'इस श्लोक के आधार पर उन्होंने गीता के तत्वज्ञान का विवेचन प्रारम्भ किया और

इतनी सरल हिन्दी का उपयोग किया, जिससे वह सब की समझ में आ जाय। विवेचन के प्रवाह को वर्तमान परिस्थिति पर लाकर उन्होंने कारखाने के मजदूरों का उदाहरण लिया। मजदूरों को फल की आशा न कर मरते दम तक काम में जुटे रहना चाहिए—ऐसा अर्थ; इस श्लोक से निकलनेवालों की उन्होंने बड़ी कड़ी आलोचना की और यहाँ तक कहा कि यदि मजदूरों को अपने श्रम का फल न मिले, तो वह अधर्म है। इसके बाद वे लक्ष्मीनगर के कारखाने में होने वाली हड़ताल का निर्देश करते हुए बोले—यहाँ आनेपर श्यामला देवी से मुझे मालूम हुआ कि अपने हक प्राप्त करनेके लिए यहाँ के मजदूर शीघ्र ही हड़ताल कर रहे हैं। मजदूर लोग रात-दिन श्रम करते हैं और उनके श्रम से जो मुनाफा प्राप्त होता है, उससे मिलवाले अपनी बड़ी-बड़ी हवेलियाँ खड़ी करते हैं अपनी जायदाद बनाते हैं। यदि उन मजदूरों से कहा जाय कि भैया, तुम केवल काम करते रहो, फल की यानी अधिक पारिश्रमिक या बोनस आदि की आशा न करो, तो क्या यह उचित होगा ? मुझे तो इसमें अन्याय दिखता है—धोखा दिखता है। ऐसी अन्याय की बातों के लिए गीता के वचन का आधार लेना उचित नहीं है। अन्याय से छीने हुए अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए पांडव युद्ध को तैयार हुए थे। उस वक्त अर्जुन ने ऐन मौके पर हिम्मत हार दी थी। तब उसे अन्याय के विरुद्ध लड़ने और उत्साह देने के लिए भगवान श्री कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया था। उन्होंने उसे "उठो—लड़ो! अन्याय पूर्वक जो राज्य तुम से छीन लिया गया है, उसे लड़कर पुनः प्राप्त करो ?" यह स्फूर्तिदायक संदेश दिया था। आज भी सब तरफ अन्याय और असत्य का ही बोलबाला है और अन्याय ही दिख रहा है। भगवान श्रीकृष्ण यदि आज होते, तो वे इस अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए किसी अर्जुन को जरूर खड़ा कर देते। तुम्हारी हड़ताल से मेरा कोई ताल्लुक नहीं है। फिर भी तुम्हारा पक्ष सत्य होने के कारण मुझे विश्वास है कि इस लड़ाई में तुम्हारी ही जीत होगी।"

किरण बाबू के यह कहते ही प्रचण्ड करतल ध्वनि से आसमान गूँज उठा। प्रवचन समाप्त होनेपर, घर लौटते समय ऑफिस के दो बाबू सड़क पर आपस में प्रवचन के सत्यासत्य पर बहस करने लगे। एक बाबू प्रवचन का समर्थन कर

रहा था और दूसरा अपने विचार के अनुसार उसका खण्डन कर रहा था।

थोड़ी देर बाद एक बाबू बोला—'हाँ, एक बात जरूर है यार, किरण बाबू के बोलने का ढंग बिल्कुल अपने चन्द्रकान्त की तरह है! क्यों, ठीक कह रहा हूँ या नहीं? तुमने "मार्क" किया था?"

"छीः! तुम भी यार पूरे चोंच हो! किसकी तुलना किससे कर रहे हो? कहाँ राजा भोज और कहाँ टूँठा तेली!'—दूसरे ने उस तर्क का खण्डन किया।

इसके बाद वे चुपचाप घर चल दिए।

\+ + +

दूसरे दिन अप्रैल की पहली तारीख थी।

बारह बजे की पाली से हड़ताल शुरू होनेवाली थी।

बारह बजे का भोंपू बजा। सुबह जो लोग काम पर आए थे, वे जल्दी-जल्दी कारखाने से बाहर निकलने लगे। परन्तु बारह की पाली का एक भी मजदूर कारखाने के भीतर जाता हुआ नहीं दिखा। उलटे, बारह की पाली के बाहर इकट्ठे हुए और सुबह की पाली के बाहर आए हुए लोग, नारे लगाते हुए अपने घर की तरफ लौटने लगे थे।

इसी तरह पहला दिन, दूसरा दिन बीता और तीसरा दिन उदय हुआ। परन्तु कारखाने की तरफ एक भी मजदूर न गया। अब कारखाने में हमेशा की तरह गन्ने की गाड़ियों की कतारों-पर-कतारें लगी हुई नहीं दिखाई देती थीं। कतारों की तो बात ही क्या, एक गाड़ी भी नजर नहीं आती थी। हड़ताल के पहले दिन मशीन के पास बचे हुए गन्नों का ढेर अब बायलर में डालने लायक हो गया था। परन्तु, अब उसे बायलर में डालने से भी क्या लाभ था; क्योंकि मानों लकड़ियाँ पेट में डाल कर लोहे के रस की तरह दहकने वाले बायलर में, अब बर्फ के ढेर की तरह राख इकट्ठा हो गई थी। वह अब इतना क्षीण-शक्ति हो गया था कि उसकी दीर्घ कर्कश चीखें भी बन्द हो गई थीं, और यदि वह अब चीखता भी, तो उसकी ओर ध्यान ही कौन देता? मिल-हाउस के भीतर की प्रचण्ड मशीन का वह दानवी पहिया, जिसने मस्ती से घूमते हुए, असावधान

शंकर का हाथ खा डाला था, अब चुप था। मशीनों और एंजनों की आवाजें बन्द थीं। लगता था, जैसे उस कारखाने के हृदय की धड़कन ही बन्द पड़ गई थी। गन्ने का रस उबालने वाली दूसरे मंजिल की टंकियाँ खाली दिख रही थीं और शुगर-हाऊस का, ढेर-की-ढेर शक्कर उगलने वाला वह बड़ा नल अपने भीतर सिर्फ अदृश्य हवा ही वहन कर रहा था। जहाँ रात-दिन मनुष्यों की खूब चहल-पहल रहती थी, वहाँ आज कैसी भयानक नीरवता दिख रही थी।

जैसे-जैसे दिन जा रहे थे, वैसे-वैसे हड़ताल अधिक सफल हो रही थी; क्योंकि जैसे-जैसे शक्कर के योग्य गन्ने की कटाई देर से होती, वैसे-वैसे मालिकों के मुनाफे पर बुरा असर पड़ने वाला था। इसलिए जिस परिमाण में मजदूरों का जीवट बढ़ रहा था, उसी परिमाण में मालिकों का धीरज खिसक रहा था।

\+ \+ \+

हड़ताल के चौथे दिन, रात की बात है। बबनराव जब सुरेश के कमरे से बाहर निकल कर अपने घर की ओर जा रहा था, तब उसने किरण बाबू को चन्द्रकान्त के घर से अकेला ही बाहर आते हुए देखा और उसे उस बाबू के कथन की याद आ गई, जिसने किरण बाबू के बातचीत करने के ढंग की, चन्द्रकान्त से तुलना की थी। उसे शक हो गया। उसने मन में कहा—"किरण बाबू इस समय चन्द्रकान्त के घर से अकेले बाहर कैसे निकले? इसका क्या मतलब? कहीं उस बाबू का तर्क सच तो नहीं है?"

दूसरे दिन करीब पाँच बजे शाम को, श्यामला का घर पुलिस वालों ने घेर लिया किरण बाबू को गिरफ्तार कर लिया। हवा की तरह यह समाचार सारे लक्ष्मीनगर में फैल गया। सब लोग और मजदूर वहाँ इकट्ठा हो गए। जब उन्हें पता चला कि किरण बाबू और कोई नहीं, हमारे चन्द्रकान्त ही हैं, तो उन्हें जितना आश्चर्य युक्त आनन्द हुआ, उतना उसकी गिरफ्तारी से खेद भी हुआ।

चन्द्रकान्त ने सबको एक ही संदेश दिया कि लड़ाई जारी रखो।

माँ से विदा होते समय वह जरूर चिन्तित हो उठा; परन्तु बड़े संयम से अपने मुख पर हास्य लाकर बोला—

"माँ, जब-जब हम बाहर जाता था, तब-तब तुम मुझसे कहने लगती थी कि मेरे लिए एक साथी ले आ और फिर तू चाहे जितने दिन बाहर रहा कर। इसलिए मैंने अब तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही श्यामला को तुम्हारे साथ रख दिया है। तो फिर क्या तुम मुझे कुछ दिन बाहर रहने की अनुमति नहीं दोगी ?"

पर इस कथन ने भी सत्यभामाबाई के आँखों में आँसू ला दिए। चन्द्रकान्त के लिए भी अपनी बनावटी मुस्कान को स्थिर रख सकना कठिन हो गया। वह श्यामला की ओर मुड़कर बोला—

"श्यामा, जो कुछ मुझे कहना था, वह मैं तुमसे पिछली बार ही कह चुका हूँ। तुम धीरज रखना और माँ को भी धीरज देना।"

और वह शीघ्र ही पुलिस वालों के हाथ प्रसन्न मुख तथा जमे हुए कदमों से चलने लगा।

२२

लोग कल ही शंकर को अस्पताल से घर ले आये थे।

इस समय वह अपने कमरे में दीवार से टीका हुआ बैठा था और उदासीनता से पार्वती की हलचल देख रहा था। उसके दाहिने हाथ में अभी भी पट्टियाँ बँधी हुईं थी पार्वती ने कमरे के सारे बरतन बटोरकर लकड़ी की सन्दूक में रख दिए थे। कपड़ों की तहें करके उनकी एक गठरी बना ली थी। उसका यह सारा काम चुपचाप चल रहा था। उसके चेहरे पर भी गहरी उदासी छाई हुई थी। कोई किसी से बात नहीं करता था। जैसे हर एक को यही लगता था कि उसके सिवा उस कमरे में और दूसरा कोई है ही नहीं।

इसमें सन्देह नहीं कि उनकी गृहस्थी अधूरी थी, फिर भी उससे उस कमरे में शोभा आ गई थी और जब सब चीजें समेटकर बन्द कर दी गईं, तो वह कमरा भी बहुत उदास दिखने लगा। पार्वती ने जब कमरे में चारो तरफ अपनी दृष्टि दौड़ाई, तब उसके मुँह से एक अस्पष्ट-सी सिसकी बाहर निकल पड़ी। कुछ भी हो, पिछले दो वर्षों से उसने उस कमरे में अपनी गृहस्थी जमाई थी और अब उसे तोड़कर वह पुनः अपने गाँव लौट रही थी।

वह यहाँ आई थी कितनी बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर, और अब लौट रही थी कितना दुख लेकर और कैसी विचित्र परिस्थिति में! उसने बड़े प्रयास से अपनी सिसकियाँ रोकीं, आँचल से आँसू पोंछे और सन्दूक में बरतन भरते समय, जो एक बरतन बाहर रख दिया था, उसे हाथ में लेकर शंकर से कहा—

"इसे लौटा आती हूँ।"

"किसका है ?"

"बाबा साहब के घर का। गाँव जाने से पहले का पड़ा है।"

शंकर कुछ न बोला। पार्वती चली गई।

× × ×

बाबा साहब के बँगले पर पहुँचकर उसने वह बरतन गनपत के जिम्मे किया। इसके बाद वह एकदम लौट आना चाहती थी। परन्तु उसने ड्राइङ्ग रूप में हेमलता को अकेली बैठी देखकर, चुपचाप निकल जाना उचित न समझा।

"हम लोग वापस जा रहे हैं अब अपने गाँव को। जान-पहचान रखना बीबीजी !"—कुछ भी कहना चाहिए, इसलिए पार्वती ने कहा।

"कब जायगी ?"—हेमलता ने रूखेपन से पूछा।

"या तो दोपहर की गाड़ी से, या फिर शाम की गाड़ी से।" कहकर पार्वती थोड़ी देर के लिए मौन हो गई। फिर उसके मन में क्या आया, कौन जाने, वह बोली—"मैंने सुरेश बाबू के साथ आपके विवाह की खबर सुनी है। क्या यह सच है ? छोटे मुँह बड़ी बात कर रही हूँ। माफ़ कीजिए! परन्तु आपका तो चन्द्रकान्त दादा पर बड़ा प्रेम था..."

"अरी, जब तुझ जैसी उन्हें प्रेम करनेवाली मिल गई, तब उन्हें मेरे प्रेम की क्या परवाह !"—हेमलता ने चुभते हुए शब्दों में कहा।

"बीबीजी, इस तरह की बातें करना आपको शोभा नहीं देता !"

"और तू कुछ भी करे या कहे, तुझे सब शोभा देता है ?"

"हेमलता पहलेकी तरह ही आवेश पूर्वक बोली और फिर उसने जो बात कही, उसे सुनकर तो पार्वती पर जैसे बज्रपात हो गया।

वह क्रोध और दु:ख से उन्मत होकर कहने लगी—

"यह क्या कह रही हैं आप ! कौन कहता है ऐसा ? आपसे किसने कहा है यह ? मुझे बता दीजिए, जिससे मैं उसे आपके सामने लाकर रूबरू पूछवा

दूँ। चन्द्रकान्त जैसे निर्मल व्यक्ति पर ऐसा लांछना लगाना.........बीबीजी, मुझे बताइए न आपसे किसने कहा है यह ?"

"मुझसे सुरेश बाबू ने कहा है।"

"क्या सुरेश बाबू ने?......"सिर्फ इतना कहकर ही पार्वती ने विलक्षण तिरस्कार का अभिनय किया। वह और कुछ आगे कहने वाली थी कि हेमलता फिर बोली—"वे झूठ क्यों कहेंगे ? उन्हें तेरे घर के पास ही रहने वाली मंजुला नामक किसी औरत से सब पता चला है। मुझे स्वप्न में भी यह कल्पना न थी........."

परन्तु उसकी बात सुनने के लिए पार्वती वहाँ न रुकी। वह बड़े ताव से चल दी और कुछ समय बाद मंजुला को साथ लेकर हेमलता के पास आई।

मंजुला बोली—"नहीं बीबी जी, चन्द्रकान्तजी गंगा की तरह पवित्र और निर्मल हैं। ऐसे मनुष्य पर इस तरह झूठा लांछना लगाने का पाप कौन करेगा ? कम-से-कम मुझसे तो ऐसा कभी न होगा, मालकिनजी ?

"फिर बबनराव ने तेरा नाम क्यों लिया ?"—हेमलता ने शंकित मन से पूछा।

"अब बबनराव के लिए क्या कहूँ मैं ? बात यह हुई थी कि एक दिन मैं उनके घर काम कर रही थी। गलती से मैंने उनकी माँ की धोती छू ली। और बस, छूआ-छूत पर उनकी माँ बिगड़ उठी तथा लगी मुझे गालियाँ देने। इस पर मैंने उनसे कहा कि "चन्द्रकान्त दादा को देखो। वे पारू के घर जाते हैं, उनके हाथ की बनी चाय पीते और बिल्कुल घर जैसा व्यवहार करते हैं। एक तुम हो जो इतनी-सी बात पर इस तरह बिगड़ रही हो ?" बस, मालकिन ! इतनी-सी बात थी और उस पर बबनराव ने इतना बड़ा कांड रच डाला। मेरे मन में जरा भी पाप न था। मैंने बिल्कुल सहज भाव से कहा था। मैं सौगंध खाकर कहती हूँ, मालकिन ?"

मंजुला यह सब कह रही थी, और हेमलता के चेहरे पर धीरे-धीरे खेद, पश्चाताप तथा क्रोध के भावों की भीड़ लग रही थी।

इसी समय गनपत भीतर आया। उसने डाक से आया हुआ एक लिफाफा हेमलता के हाथ में दिया और वह चला गया। हेमलता ने लिफाफे पर लिखे हस्ताक्षरों से जान लिया कि वह चन्द्रकान्त का है। उसने सबको बिदा कर दिया, जल्दी-जल्दी लिफाफा खोलकर उसमें से पत्र निकाला और वह उसे पढ़ने लगी—

"हेम

तुम्हें लिखा हुआ यह मेरा प्रथम और अन्तिम पत्र है। तुमने मेरे अन्तर के कवि चन्द्रकान्त से प्रेम किया। परन्तु मैं उससे श्रमिक चन्द्रकान्त को जुदा न कर सका। मेरे लिए यह संभव ही न हुआ। इसीलिए तुम मुझसे दूर रहीं··· · ख़ैर।"

"जिस कवि चन्द्रकान्त पर तुमने प्रेम किया, उसकी यह अन्तिम स्मृति मैं तुम्हारे पास भेज रहा हूँ·········

[१]

जीवन की पग-डंडी पर चलते-चलते
हम तुम मिले कि जैसे
दो यात्री मिलते ॥

[२]

आँखों ही आँखों में हँसने लगा प्रणय
और रँगीले स्वप्न, सजाने लगे हृदय
जग से एक अलग संसार हमारा था
मेरे उड़ने को आकाश तुम्हारा था ॥

[३]

किन्तु नियति की आँधी से, हम तुम बिछुड़े
आशाओं के महल एक पल में उजड़े

स्वप्न—चाँदनी बरसाने वाला आँचल
उड़ा ले गया जैसे; आगी का बादल ॥

[४]

सूना सूना पंथ अकेले चलना है
और विरह के द्वार दीप-सा जलना है
दुख दर्दों के कड़ुवेपन को; अब मन के
मीठा करना है यादों के चुम्बन से ॥

[५]

तुम पर सदा रहा है मेरा प्यार विमल,
इतनी ही आकांक्षा है मेरी केवल
सदा तुम्हारा हरा—भरा संसार रहे
और; एक कोने में मेरा प्यार रहे ॥*

···चन्द्रकान्त

पत्र पढ़ते-पढ़ते हेमलता की आँखें सजल हो उठीं और अन्तिम पंक्ति पर पहुँचते-पहुँचते उसके आँसुओं ने पत्र का अभिषेक ही कर डाला।

---

*मराठी कविता का उपरोक्त भावानुवाद मेरे तरुण कवि मित्र श्री पुरुषोत्तम खरे ने किया है जिनका मैं आभरी हूँ। अनुवादक